गृह दाह

گرہ داہ

شرط چندر چٹوپادیائی

KASHMIR BOOK CENTRE
First Bridge, SRINAGAR.

Grah Dhah

गृह-दाह

मूल लेखक Sh. Sharat Chande Chatopady

श्री शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय

के

प्रसिद्ध उपन्यास 'गृह-दाह' का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

श्री धनप्रकाश अग्रवाल, बी० ए० एल-एल० बी०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

कर्नलगंज, प्रयाग

Hindi Sahy Bundar Prayag

मूल्य चार रुपया

4/-

प्रकाशक—
श्री गुरुचरणदास अग्रवाल
हिन्दी-साहित्य-भण्डार
कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

❀ ❀ ❀

मुद्रक—
अनारकली प्रेस, कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

पहला परिच्छेद

महिम और सुरेश ने एक ही साथ एम० ए० पास किया। महिम उसी सिटी कॉलेज में बना रहा, लेकिन सुरेश डॉक्टरी पढ़ने के लिए मेडिकल कॉलेज में भर्ती हो गया। दोनों आपस में दूध-शक्कर की भाँति थे। सुरेश ने महिम को अनेक बार डॉक्टरी पढ़ने की राय दी थी और उसे बार-बार समझाया था कि योंही बी० ए०, एम० ए० पास करने से आधुनिक युग में कोई लाभ नहीं। डॉक्टरी पढ़ना ही श्रेयस्कर होगा। लेकिन महिम ने उसकी एक न सुनी; हँसकर तथा यह कहकर टाल दिया कि भाई सलाह तो उचित है, लेकिन आर्थिक समस्या बड़ी विकट है।

'आर्थिक समस्या ऐसी कौन-सी विकट है जिसे तुम हल नहीं कर सकते, और तब, जब तुम्हें छात्रवृत्ति मिल रही है?'

महिम ने मुस्कराकर सुनी अनसुनी कर दी।

सुरेश को महिम की मुस्कराहट कुछ अखर गई। झुँझलाते हुए उसने कहा—'तुमको मेडिकल कॉलेज में भरती होना ही पड़ेगा। खर्च की बात पीछे सोच-समझ ली जायगी। अब मत टालो।'

महिम—'अच्छी बात है।' कहकर फिर भी टहलता रहा।

सुरेश ने कहा—'मेरी समझ में तुम्हारी कोई बात नहीं आती। अब इस समय मुझे कॉलेज पहुँचना है, नहीं तो देर हो जायगी। मगर कुछ न परसों ही तक निश्चित करना है। मैं कल फिर आऊँगा। सवेरे घर ही मिलना।' यह कहता हुआ सुरेश कॉलेज चला गया।

महिम का मेडिकल कॉलेज में प्रवेश होना तो दूर रहा, दस-पन्द्रह दिन बीत गये, उसका कुछ पता ही न चला। रविवार को दोपहर की धूप में सुरेश उसकी खोज करता हुआ एक छात्रावास में पहुँचा। होस्टल की दयनीयता बाहर से ही झलक रही थी। वह सीढ़ियों पर सीधा चढ़ता चला गया। ऊपर जाकर उसने सामने एक सीली अँधेरी कोठरी में फटे आसनों पर बैठकर छः सात छात्रों के बीच महिम को भोजन करते हुए ढूँढ़ निकाला।

महिम ने जैसे ही मुँह ऊपर उठाया सामने मित्र को खड़ा पाया। अनायास ही उसके मुँह से सफाई के शब्द निकल पड़े—'अचानक ही स्थान बदल देना पड़ा। इसी कारण तुमको सूचित न कर सका, लेकिन आश्चर्य है, तुमने पता लगा ही लिया।'

सुरेश चौखट पर बैठकर भोजन-सामग्री का निरीक्षण करने लगा। चावल बहुत ही मोटा, पानी जैसी दाल, काशीफल की जली हुई तथा अरुई की सब्जी, जिसमें डण्ठल भी मिले हुए थे, उनके सामने परसी हुई थी। न दही था, न दूध और न मिठाई ही।

महिम सबके साथ बड़े प्रेम से उसी सारे भोजन को खा रहा था, लेकिन सुरेश उसे न देख सका। क्योंकि उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। सुरेश बड़ा ही भावुक है। छोटी सी बात पर उसका दिल भर आता है।

महिम ने भोजन करने के बाद सुरेश को अपने बिस्तर पर ले जाकर बिठाया। बिस्तर पर बैठते ही उसने कहा—'अब तो हद हो गई; अब तुम्हारी धींगा धींगी नहीं सह सकता।' उसकी भावुकता उमड़ पड़ी और गला रुँध गया।

'तुम्हारा तात्पर्य ?' महिम ने पूछा।

'शहर में भी ऐसा गन्दा, सीला मकान हो सकता है और ऐसा रद्दी खाना खाया जा सकता है, यदि मैं आज अपनी आँखों से न देख लेता तो सुनकर तो मुझे कभी विश्वास ही न होता। अब यह तो बताओ कि यहाँ

कैसे आ पड़े ? तुम्हारा पहला खाने-पीने का प्रबन्ध चाहे जैसा भी था, इससे तो अच्छा ही था। उसे तुमने छोड़ क्यों दिया ?' सुरेश ने पूछा।

महिम का भी दिल भर आया और गला रुँध गया। वह भी अपनी उमड़ती भावना को न रोक सका। उसने कहा—'सुरेश, मैं यहाँ बड़े आनन्द में हूँ। यदि तुमने मेरे गाँव का घर और खाना देखा होता तो सम्भवतः ऐसी बात न कहते और फिर मैं अकेला तो हूँ नहीं। जैसे ये सब खाते हैं, रहते हैं, मैं भी खाता और रहता हूँ।'

सुरेश अपने आवेश को न रोक सका और कहा—'आखिर तुम्हें कष्ट उठाने की आवश्यकता क्यों आ पड़ी। संसार में अच्छी-बुरी सभी चीजें हैं। पर अच्छी अच्छी ही है और बुरी बुरी ही। फिर तुम्हें उस कारण दुखमय जीवन व्यतीत करने की जरूरत क्यों है ?'

महिम शान्त और निश्चल रहा। केवल उसके ओठों पर किसी अज्ञात भाव की मुस्कान रेखा खिंच गई थी।

सुरेश ने फिर उसी आवेग में कहा—'मैं तुम्हें ऐसी दशा में नहीं छोड़ सकता। अभी नौकर को बुलाओ, जाकर गाड़ी ले आये। मैं तुम्हें यहाँ छोड़ कर न खाना खा सकता हूँ न सो सकता हूँ। मैं अभी तुम्हारा सब असबाब उठवा कर अपने घर चल रहा हूँ।' और महिम की बाँह पकड़कर उसने खींच कर उठाया और स्वयं ही बिस्तर आदि समेटने लगा।

महिम अब भी वैसे ही शान्त निश्चल बना रहा। सुरेश का विरोध करते हुए उसने सिर्फ इतना ही कहा—'पागल न बनो सुरेश।'

'तुम न चलोगे ?' सुरेश ने आँखें ऊपर उठाकर पूछा।

'नहीं।'

'आखिर क्यों नहीं चलोगे ? क्या मेरे घर में तुम्हारा सम्मान न होगा ? क्या मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं ?'

'नहीं।'

'तो फिर क्या······?'

महिम ने उसी गम्भीरता से कहा—'तुम सा और कोई मेरा मित्र नहीं, जो मेरा इतना अपना हो। मैं इतना मूर्ख नहीं कि अपने क्षणिक सुख के लिए तुम्हारे ऊपर भार बनकर तुम्हें भी खो देने की सम्भावना उत्पन्न करूँ।'

'मैं भी इतना मूर्ख नहीं कि तुमको खो जाने दूँ। मित्रता एक ओर से होती नहीं; यदि तुम मेरे ऊपर भार बनकर मेरे कष्ट की बात सोचते हो तो मैं तुम्हें खो जाने की कल्पना मात्र से विह्वल हो जाता हूँ।'

महिम के अधरों पर मुस्कान की रेखा फूट पड़ी, उसका गम्भीर चेहरा भावों की गहनता कम होने से ढीला पड़ गया और उसने कहा—'मैं हार गया। पर यह न समझो कि मैं जान-बूझ कर यह दुःख सह रहा हूँ।'

'मैं कारण नहीं जानना चाहता। तुम मेरे घर चलकर रहो। वहाँ न तुम्हारा पैसा व्यय होगा और न कोई कष्ट ही होगा।'

'अभी नहीं! जब आवश्यक समझूँगा अथवा यहाँ कष्ट होगा, तो तुम से कहूँगा।'

सुरेश महिम की आदत से परिचित था कि उसने जो बात सोच ली, वह पक्की तरह से सोच ली। उसके निश्चय से उसे डिगाना असम्भव है। वह वहाँ से अपनी व्यथा एवं भावनाओं के शूलों से स्वयं ही घायल होकर हार कर चला गया। वह महिम से मन तथा निःस्वार्थ भाव से प्रेम करता है चूँकि वह स्वयं एक धनाढ्य व्यक्ति की सन्तान है और महिम निर्धन की; अतः वह इसी प्रयास में रहता है कि वह किसी प्रकार से महिम के काम आवे। पर महिम इसकी सहायता लेने को कभी तैयार न होता और न आज ही हुआ।

दूसरा परिच्छेद

पाँच साल बाद—

सुरेश—'मैं तुम्हें कितना चाहता था, तुम्हारा कितना आदर करता

था, तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में कितना सम्मान था कि मैं उसे अपनी वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता !'

महिम—'मैं कहता भी तो नहीं कि उसे मुझे सुनाओ।'

सुरेश—'पर अब बिना सुनाये नहीं रहा जाता।'

महिम—'नहीं रहा जाता तो मैं उसके लिए तुम्हें दण्डित नहीं कर सकता।'

सुरेश—'तुम कपटी हो ! ऐसा तो तुम्हारा बड़ा से बड़ा शत्रु भी नहीं कह सकता।'

महिम—'शत्रु नहीं कह सकता तो मित्र भी नहीं कह सकता, ऐसा तो कोई विधान नहीं है।'

सुरेश—'अन्त में तुम एक ब्राह्मी लड़की के चक्कर में पड़ ही गये, पर न तो उसका सुन्दर चेहरा है न सुडौल शरीर। सूखा काठ जैसा नीरस चेहरा, बदन में काटो तो रक्त नहीं। जैसे छू देने भर की देर है कि गिरी—बोली अजीब चीं-चीं जिसे सुनने को भी मन नहीं करता। आखिर उसमें है क्या ?'

महिम—'हो सकता है।'

सुरेश—'महिम, हमारी आँखें धोखा नहीं खा सकतीं। धोखा खा सकती हैं गाँव के भोले-भाले लोगों की आँखें, जिन्होंने कभी ब्राह्मी लड़कियों को आँखों से देखा नहीं और पढ़ी-लिखी स्त्रियों की बात सुनकर ही भौचक्के हो जाते हैं और उनके प्रति आदर प्रदर्शन करने लग जाते हैं, हम गँवार नहीं जो इतनी आसानी से धोखे में आ जायँ।'

महिम—'सच मानो सुरेश ! मैं उसे यहाँ शहर में रखूँगा ही नहीं, कि तुम लोगों को धोखा देने का अवसर आवे। मैं तो उसे गाँव में ले जाकर रखूँगा। बोलो, इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं ?'

सुरेश—'एक नहीं ! अनेक ! हजारों, करोड़ों ! तुम एक अभिजात कुलीन हिन्दू की सन्तान हो। क्या तुम्हें उस स्त्री के—जो न तुम्हारे आपत्ति काल में तुम्हारे घर का छोटा-मोटा रसोई का काम कर सकती

है; न बीमारी में सेवा-टहल ही कर सकती है—मोह में पड़कर अपनी जाति, कुल, धर्म नष्ट कर देना शोभा देता है? उसके बिना तुम्हारी सिलाई और ऊनी कपड़ों का काम नहीं रुका रहेगा। नगर में अनेक दर्जी हैं। भगवान् न करे, पर सच कहता हूँ कि वह तुम्हारे बुरे दिनों में छोड़कर न चली जाय तो कहना। न जाने तुम्हारे लिए उसमें कौन-सा आकर्षण है। उसकी मेमों वाली पोशाक उतार कर अपना बङ्गाली परिधान पहनाकर देखो, उसका सब आकर्षण लुप्त हो जायगा।'

महिम चुप था, परन्तु सुरेश आवेश में था। उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—'महिम, मैंने तुम्हारा कभी अहित नहीं चाहा है। तुम्हें विवाह ही करना था तो मुझसे कहा होता। मैंने भी लड़कियाँ देखी हैं। सभी बुरी हों, ऐसा बात भी नहीं। लेकिन निश्चय ही हिन्दू घराने की लड़कियों से उनकी किसी बात में समता नहीं की जा सकती। लेकिन अब तुम्हें वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमसे वायदा करता हूँ कि तुम्हारी शादी ऐसी लड़की से करा दूँगा जिससे तुम आजीवन सुखी रहोगे। यदि एक माह के अन्दर ही न करा सका तो फिर तुम्हारा रास्ता साफ है, जो जी चाहे करना। मैं राह में न आऊँगा; फिर चाहे इसी का होकर रहना। बोलो! एक महीने का अवसर तो तुम्हें मुझे मित्रता के नाते देना ही होगा।'

महिम फिर भी निःशंक मौन रहा। लेकिन सम्भवतः सुरेश की भावनाओं ने उसकी सुप्त भावनाओं को टकराकर जागृत कर दिया था और वह सुरेश की सद्भावना का अनुभव करने लग गया था। सुरेश ने ही फिर बातचीत की गाड़ी आगे चलाई—महिम क्या मैंने तुम्हें—जब तुम उसके ब्राह्म मन्दिर में आते जाते थे—नहीं रोका था; बार-बार नहीं समझाया था। तुम्हारे लिए इतने विशाल कलकत्ता नगर में कोई हिन्दू मन्दिर नहीं था, जो तुम्हें वहाँ जाने का जाल बिछाना पड़ा? सन्देह तो मुझे तभी हो गया था कि तुम किसी-न-किसी मुसीबत में पैर अड़ा दोगे।

महिम के ओठों पर अब थोड़ी सी मुस्कान की रेखा दौड़ पड़ी और वह बोला—'मैंने किसी प्रकार का छल-कपट नहीं किया; लेकिन मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि जब तुम नास्तिक हो, ईश्वर, देवी-देवता, मन्दिर आदि पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं, फिर मैं चाहे हिन्दू मन्दिर में जाऊँ, चाहे ब्राह्म में, तुम्हें क्या, तुम्हारे लिए तो सब एक सा है।'

सुरेश—'ईश्वर को हम देखते नहीं। उसका कोई अस्तित्व भी नहीं। देवी-देवता भी उसी प्रकार मिथ्या कल्पना मात्र हैं। लेकिन जो है उसके अस्तित्व से मुकरता भी नहीं। समाज में मैं श्रद्धा रखता हूँ और मानता हूँ कि मनुष्य की सेवा करना ही इस जन्म का सबसे बड़ा कर्तव्य है। मैंने हिन्दू समाज में जन्म लिया है, उसकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। प्राणपण से कोशिश करने में तुम्हें ब्राह्म घर में विवाह नहीं करने दूँगा। क्या तुमने केदार मुखर्जी की लड़की को व्याह करने का वचन दे दिया है?'

महिम—'नहीं; वचन तो नहीं दिया है।'

सुरेश—'नहीं दिया? यह और भी अच्छी बात है। अब मैं इसी माह में तुम्हारा विवाह करा दूँगा। तुम शान्त होकर बैठो। तुम्हारा वहाँ जाने का अब कोई काम नहीं, समझे।'

महिम—'व्याह के लिए मैं इतना उतावला हूँ, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ? मैं अभी व्याह नहीं करता। अतः तुम भी चुप बैठे रहो।'

सुरेश—'क्या उस लड़की से तुमको इतना गहरा प्रेम हो गया है कि उसे भुलाना असम्भव है?'

महिम—'मुझे उससे प्रेम हो गया है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन तुम्हें एक सम्भ्रान्त महिला के प्रति आदर के शब्दों में बात करनी चाहिए।'

सुरेश—'यह मैं जानता हूँ। तुम्हें समझाने की आवश्यकता नहीं। उस सम्भ्रान्त महिला की आयु क्या होगी, बता सकते हो?'

महिम—'मुझे नहीं मालूम।'

सुरेश—'तुम नहीं जानते ! यही लगभग बीस, पच्चीस, तीस या चालीस वर्ष की, अथवा इससे भी अधिक ! इतना भी नहीं जानते ?'

महिम—'नहीं। इतना भी नहीं।'

सुरेश—'शायद यह भी नहीं जानते कि तुमसे बड़ी है अथवा छोटी ?'

महिम—'नहीं। यह भी नहीं जानता।'

सुरेश—'छोटी तो होगी नहीं, तभी तो फँसा लिया है।'

महिम—'तुम्हारे लिए कुछ भी सोच लेना अनुचित नहीं, लेकिन अब मैं जरा बाहर जाऊँगा, एक आवश्यक कार्य है।'

सुरेश—'मुझे कोई काम नहीं, खाली हूँ। चलो तुम्हारे साथ ही घूम आऊँगा।'

दोनों मित्र साथ-साथ सड़क पर घूमने निकले। थोड़ी देर तक दोनों ही चलते रहे, शान्त, निःशङ्क। लेकिन सुरेश ने स्तब्धता भङ्ग करते हुए कहा—'शायद समझाने की जरूरत न पड़ेगी कि मैंने इतनी कटु बातें कहकर तुम्हारेदिलको व्यथित किया है ऐसा जान-बूझ कर ही किया है।'

महिम—'नहीं।'

सुरेश—'अच्छा महिम ! यह बताओ कि मैंने तुम्हें क्यों व्यथित किया ?'

महिम थोड़ा हँस दिया और बोला——'यदि तुम समझते हो कि तुम्हारी पहली बात मैंने समझ ली है तो यह बात भी मुझे समझानी न होगी।'

दोनों मित्र हाथ में हाथ मिलाकर चल रहे थे। सुरेश ने प्रेम से महिम का हाथ मसक कर कहा—'संसार में बहुत से लोग मुझे गलत समझ सकते हैं; लेकिन तुम मुझे न समझोगे, ऐसी आशा है। फिर भी मैं तुम्हारे समक्ष स्पष्ट कहता हूँ कि मैं जितना तुम्हें अपना प्यार दे सका, उसका अर्धभाग भी तुमने मुझे नहीं दिया। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हें इसकी परवाह नहीं; लेकिन मैं तुम्हारे लेशमात्र कष्ट को भी नहीं

देख सकता। इस बात पर बचपन में हम न जाने कितनी बार झगड़े होंगे। अब तुम उसके कारण मुझे त्याग रहे हो महिम! इसके सम्बन्ध में एक शब्द भी मुँह से न निकालता, यदि मुझे यह विश्वास हो जाता कि तुम उसे पाकर जीवन में सुखी रह सकोगे।'

महिम—'मैं उसे पाकर जीवन में सुखी हो सकूँ या न हो सकूँ, लेकिन मैं तुम्हें तो नहीं त्याग रहा हूँ! यह भ्रम तुम्हें कैसे हो गया?'

सुरेश—'मैं त्याग दूँगा। तुम त्यागो या न त्यागो।'

महिम—'यदि मैं भी ब्राह्म होता, तो क्या तुम्हारी हमारी मित्रता न होती?'

सुरेश—'कभी नहीं। मैं ब्राह्मों की सूरत से नफरत करता हूँ।'

महिम—'उनसे नफरत क्यों करते हो?'

सुरेश—'अनेक कारणों से। उन्होंने हमारे समाज को निकृष्ट बताकर त्याग दिया है। फिर हम कैसे उन्हें अपना सकते हैं। वे हमारे समाज को देश-विदेश में बुरा बताते फिरते हैं। वे हमारे मित्र नहीं हो सकते।'

महिम के लिए भी यह असह्य हुआ जा रहा था। उसने अधीर होकर पूछा—'तो मुझे क्या करने को कहते हो?'

सुरेश—'वही जो पहले बता चुका हूँ।'

महिम—'एक बार फिर दुहरा दो।'

सुरेश—'तुम्हें उस युवती से जैसे भी हो अपना सम्बन्ध-विच्छेद करना ही होगा और कम से कम एक माह तक तुम उससे न मिलोगे।'

महिम—'अगर उसके प्रति मेरा और भी प्रेम बढ़ जाय तो?'

सुरेश—'सो मैं कुछ नहीं जानता। मुझे तुमसे स्नेह है और तुमसे अधिक समाज से है, जरा बचपन की उन घटनाओं की याद तो करो जब तुम्हें चेचक की मरणान्तक बीमारी हुई थी, मुंगेर में गङ्गा में नाव-दुर्घटना के फलस्वरूप हम दोनों साथ ही साथ परलोक सिधार रहे थे। क्षमा करना विस्मृति-स्मृति मैंने फिर से ताजी करा दी। मैं अब कुछ नहीं कहता

please see what that is on page 130

चाहता। बस अब चलता हूँ।'

यह कहकर सुरेश एकाएक तेजी से पीछे की तरफ लौट पड़ा।

तीसरा परिच्छेद

सुरेश का शरीर जितना ही हृष्ट-पुष्ट और सबल है दिल उतना ही कोमल और भावुक है। प्रत्येक के दुःख-दर्द का हाल सुनकर उसका दिल पसीज जाता है, बचपन ही में मक्खी और मछली तक की हत्या उससे न हो पाती थी, जैनियों और मारवाड़ियों की भाँति ही वह भी पहले जेब में सूजी और चीनी भरकर ले जाता और स्कूल न जाकर घूम-घूमकर वृक्षों के नीचे यहाँ-वहाँ चींटियों को खिलाता फिरता। अनेक बार वह जीवन में मांस-मछली खाना छोड़ चुका है और फिर से खाना शुरू कर दिया। जिसके प्रति उसका प्रेम हो जाता, उससे सपरता ही नहीं कि वह उसके लिए क्या-क्या और कैसे-कैसे करे। महिम उसी के साथ विद्योपार्जन करता था। श्रेणी में सबसे अच्छा लड़का था, लेकिन गरीब। उसके कपड़े, जूते फटे पुराने रहते, शरीर भी क्षीणकाय और कान्तहीन रहता। सुरेश उसकी यही दयनीय दशा देखकर उसकी ओर आकर्षित हुआ था और अल्पकाल ही में ऐसी घनिष्ठता बढ़ी कि उनकी मित्रता के विषय में सारे स्कूल के विद्यार्थी चर्चा करने लगे। महिम को चार रुपये की छात्र-वृत्ति मिलने लगी। और वह उसी चार रुपये के बल पर कलकत्ते आया था। कलकत्ते में आकर वह स्कूल में भर्ती हो गया था और अपने ही गाँव के एक मोदी की दूकान पर रहने लगा। सुरेश तभी से उसे अपने निवास-स्थान पर आने के लिए सहमत करने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन वह सहमत न हुआ और किसी दिन आधा पेट खाकर तो किसी दिन योंही निराहार रहकर वहीं रहा। इसी तरह उसने एन्ट्रेन्स पास कर लिया। इसके बाद जो कुछ हुआ वह ऊपर लिखा जा चुका है।

उस दिन के बाद लगभग एक सप्ताह तक दोनों मित्रों की फिर भेंट न हुई। अन्त में सुरेश उसके निवास-स्थान पर गया। उस दिन कोई

त्योहार होने के कारण स्कूल-कॉलेजों में छुट्टी थी लेकिन महिम वहाँ नहीं था। मालूम हुआ कि वह सवेरे से बाहर गया है, अभी तक लौटकर नहीं आया। सुरेश को अनुमान लगाते देर न लगी कि वह अवश्य पटलडाँगा के केदार मुखर्जी के घर छुट्टी मना रहा होगा।

सुरेश के हृदय में एकाएक महिम के प्रति विद्वेष की भावना उत्पन्न हो गई। जिस मित्र से बचपन ही से उसका प्रेम चला आ रहा है, वही एक साधारण स्त्री के मोह में फँसकर उसकी अवहेलना करने लगा और उसके सात दिन के वियोग को वह सहन न कर सका। उसने आव देखा न ताव, गाड़ीवाले से पटलडाँगा चलने को कह गाड़ी में बैठ गया। आवेश में उसका मन अपने आप गुनगुना उठा—अकृतज्ञ, निर्लज्ज! तू सोच तो जरा, मैंने दो-दो बार तेरी जान अपनी जान जोखिम में डालकर न बचाई होती तो आज तू उस स्त्री पर अपने को वारने के लिए कहाँ होता। क्या तेरे दिल में मेरे लिए कोई स्थान नहीं, कोई सम्मान नहीं!

सुरेश वैसे तो केदार मुखर्जी के घर का रास्ता जानता था फिर भी थोड़ी पूछ-ताछ के बाद उसकी गाड़ी ठीक केदार मुखर्जी के द्वार के सामने रुकी; गाड़ी से उतरकर वह सीधा नौकर से पूछता हुआ ऊपर की बैठक में चला गया।

नीचे फर्श पर गद्दा बिछा था। उस पर उपधान के सहारे एक वृद्ध सज्जन समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। सुरेश ने उन्हें नमस्कार कर अपना परिचय दिया—मुझे सुरेशचन्द्र बनर्जी कहते हैं और मैं महिम का मित्र हूँ।

'बैठिए!'—कहते हुए वृद्ध ने भी चश्मा उतारते हुए नमस्कार किया। सुरेश ने बैठते ही कहा—'मैं महिम के रहने के स्थान पर गया था, वहाँ पता चला कि वह यहाँ आया है। सोचा, वहीं चलकर मिल लूँ। साथ ही आपके भी दर्शन हो जायँगे।'

वृद्ध—'मेरा अहोभाग्य कि आप पधारे, लेकिन महिम तो यहाँ दस-बारह दिन से नहीं आया।'

यह सुनकर सुरेश को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'उसके साथ रहने

वालों ने तो यही कहा।'

वृद्ध—'हो सकता है कहीं और गये हों। यह जानकर कि वे कुशल-पूर्वक तो हैं जी को शान्ति मिली।

वृद्ध के सामने पड़ते ही, उसकी शान्त, गम्भीर मुद्रा तथा मधुर वचनों को सुनकर सुरेश का आवेश हवा हो गया था। वह रास्ते में आते समय जो कुछ भी निश्चित करके आया था, उसे वह ठीक से उसके समक्ष व्यक्त न कर सका। फिर भी उसका निश्चय उसे उद्वेजित करता ही रहा और वह अपने आवेश को बनाये रखने के लिए बार-बार अपने को यही समझाने लगा कि—'ये कितने भी अच्छे हों लेकिन वह सब दिखावा है, बनावट है, ब्राह्म ही जो ठहरे! इनका काम ही है अपने बनावटी शिष्टाचार द्वारा भोले लोगों को भरमाना। अतः इनके इस ऊपरी शिष्टाचार के भरमावे में न पड़कर मुझे अपने मित्र को इनके चंगुल से बचाना ही होगा। उसने वृद्ध महाशय से कहा—'महिम से मेरी बचपन की मित्रता है। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं उसके सम्बन्ध में कुछ बातें करूँ।'

'अवश्य कीजिए! मैं तो उनके मुख से आपका परिचय पा चुका हूँ।' वृद्ध ने हँसते हुए कहा।

सुरेश—'क्या आपकी कन्या का विवाह महिम के साथ तय हो चुका है?'

वृद्ध—'यही समझिए। एक प्रकार से हो ही गया है।'

सुरेश—'महिम तो ब्रह्म समाजी नहीं! फिर आप उससे अपनी कन्या का विवाह कैसे कर देंगे?'

वृद्ध ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। और वे शान्त रहे।

सुरेश—'अच्छा! इस प्रश्न को रहने दीजिए, अभी और भी बातें हैं। महिम की आयु क्या है? वह स्त्री-पुत्र को खिला-पिला भी सकता है या नहीं? गाँव के टूटे-फूटे मकानों में हिन्दू समाज के मध्य आपकी लड़की कैसे रह सकेगी? न रह सकी तो महिम क्या करेगा? आपने इन सब बातों पर गौर किया या नहीं?'

उठी। वह बोला—'वे तो परसों आकर रुपया देने को कह गये हैं।'

केदार बाबू—'और चुकाने की बात?'

अचला—'उसके बारे में तो उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।'

केदार बाबू—'उसके सम्बन्ध में लिखने वगैरह के लिए कुछ?'

अचला—'नहीं, वह भी नहीं; और इस प्रकार की तो सम्भवतः उनकी कोई इच्छा भी नहीं।'

'तो ठीक है।'—कह कर केदार बाबू ने कोच का सहारा ले, पैसे सामने की कुर्सी पर रखते हुए संतोष की साँस ली और वैसे ही आँखें मूँदे पड़े रहे। सन्तोष के आनन्द ने उनके सारे शरीर में निश्चिन्तता भर दी और वे कुछ देर योंही रह, कुर्सी पर से पैर नीचे कर तेज स्वर में बोले—'सोचो तो बेटी, क्या इसमें परमात्मा की इच्छा नहीं झलकती कहाँ क्या था और अब क्या हो गया?'

अचला निःशब्द, पिता की ओर देखती रही और केदार बाबू बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये ही बोले—'बेटी, दो वर्ष पूरे होने आये मुझे रातों नींद नहीं आई। परमात्मा के ध्यान में ही कटी है। उनकी कृपा आज मेरी आँखों के समक्ष साकार है। मैंने जब सुरेश को पहली बार देखा तभी मेरे दिल ने कहा कि यह मेरे पूर्व जन्म का अपना ही बेटा है।'

अचला चुपचाप सुनती रही। वह जानती थी कि घर की आर्थिक दशा शोचनीय है। पर उसे यह ज्ञात न था कि नौबत यहाँ तक आ पहुँची है। दो वर्ष की प्रार्थना के बाद परमात्मा की कृपा से यह अवसर आया कि आर्थिक समस्या कुछ हलकी हो। पर उसे अब ज्ञात हुआ कि आर्थिक समस्या सुलझने के बजाय और भी उलझ पड़ी है। वह अपने मन में दृढ़ सङ्कल्प कर चुकी थी, सुरेश की आर्थिक सहायता स्वीकार न करने देगी, पर अब उसकी दृढ़ता के बन्धन ढीले हो चले और उसे अपनी धारणा बदलनी पड़ी। उसे अच्छी तरह मालूम हो गया कि सुरेश से रुपये लिये बिना उसके पिताजी का निर्वाह न होगा।

केदार बाबू तो उठकर संध्याकालीन पूजा के लिए चले गये; पर अचला उसी तरह स्तब्ध बैठी रही। घटना पर गौर करती रही। उसके जीवन में दो पुरुष एक साथ आये। दोनों ही आपस में घनिष्ठ मित्र हैं, पर दोनों को अपनाना सम्भव नहीं। एक को 'ना' कहना ही पड़ेगा, पर किससे कहे। इसी समस्या को जितना ही सुलझाती, वह उतनी ही उलझती जाती। महिम का विचार आते ही अचला ने अनायास ही एक ठण्ढी साँस छोड़ी और उसका दिल भर आया, आँखें डबडबा उठीं।—महिम न जाने कहाँ है उस पर पूरा विश्वास किये हुए न जाने अपने किस कर्तव्य में निरत। महिम से भूलकर भी कोई अपराध नहीं हुआ। यदि वह उससे अपना बनाने से 'ना' भी कर दे तो बिना कुछ जाने चला जायगा। भूलकर भी वह न किसी को दोष देगा और न फिर कभी लौटकर आने का प्रयास करेगा। हो सकता है व्यथा की रेखाएँ उसके सिर पर दिखाई दें, पर उसे भी सम्भवतः उसके सिवा और कोई न देखेगा। सोचते-सोचते बिदाई के समय की महिम की गम्भीर, व्यथापूर्ण मुद्रा उसके सम्मुख साकार हो उठी। वह यह भी सुनेगा कि अचला का विवाह सुरेश के साथ हो गया है, तब उस समय वह शायद एक आह भर कर रह जायगा अथवा थोड़ा सा मुस्कराकर अपनी व्यथा को भूलने का प्रयास करता हुआ अपने काम में निरत हो जायगा। सोचते-सोचते उस सूने कमरे में अचला का चेहरा मारे व्यथा के तमतमा उठा।

नवाँ परिच्छेद

दस-बारह दिन बाद--

केदार बाबू के अन्दर युवावस्था की सी ताजगी और तेजी आ गई थी। शाम को जब वे सिनेमा देखकर लौट रहे थे तो रास्ते में ही गोल-दिग्घी के समीप गाड़ी रोककर उतरने के लिए उद्यत होकर बोले—'समाज हां मैं यहाँ से पैदल ही चला जाऊँगा, तुम दोनों घर जाओ।'—कहते

हुए हाथ की छड़ी घुमाते चले गये।

गाड़ी गली में मुड़ गई और केदार बाबू ओझल हो गये। अचला का हाथ अपने हाथ में लेकर सुरेश ने कहा—'क्या तुम जानते हुए भी कि इससे मुझे कितना दुःख होता है, यह सब कहती हो ?'

'सिर्फ बार-बार दोहराकर याद ताजी कर लेती हूँ कि कहीं आपकी इतनी बड़ी कृपा को भूल न जाऊँ। आपको दुखी करने के विचार से कभी नहीं।'—अचला ने उदास सूखी हँसी हँसकर कहा।

'इसीलिए तो मुझे और भी वेदना होती है।'—सुरेश ने अचला के हाथ को जरा दबाते हुए कहा।

अचला—'क्यों ?'

सुरेश—'अचला, मैं जानता हूँ कि मेरी इस कृपा की याद करके ही तुम मुझसे मिलने-जुलने, बात करने का साहस जुटा पाती हो, अन्यथा और तो कोई कारण नहीं। बताओ यही बात है न ?'

अचला—'और यदि न बताऊँ तो ?'

सुरेश—'तबीअत न हो तो न बताओ। पर क्या मैं अपने लिए तुम्हारे मुँह से 'तुम' न सुन पाऊँगा ?'

अचला का चेहरा उतर गया। सिर नीचा किये धीरे से बोली—'आज नहीं तो, एक दिन, कभी, कहना ही पड़ेगा, यह आप भी जानते हैं ?'

अचला का उदास चेहरा देखकर सुरेश ने एक लम्बी साँस छोड़ी और बोला—'जब एक-न-एक दिन कहोगी ही तो दो दिन पहले कहने में तुम्हें क्या आपत्ति है ?'

अचला इसका उत्तर न दे सकी। अन्यमनस्क भाव से सड़क की ओर देखती रही। थोड़ी देर बाद सुरेश ने शान्ति भङ्ग कर फिर कहा—'महिम को सब कुछ विदित हो गया, ऐसा प्रतीत होता है।'

अचला ने सुनते ही अचकचाकर सुरेश की ओर मुँह किया और अपना हाथ सहसा, जो अब सुरेश के हाथ ही में था, खींचकर बोली—

'आपको कैसे मालूम ?'

सुरेश के कानों ने अचला के स्वर की व्यग्रता का अनुभव किया और वह बोला—'नहीं वैसे ही पन्द्रह-सोलह दिन बीत गये। मालूम हुआ होता तो आता जरूर।'

अचला—'पूरे उन्नीस दिन हो गये आज का दिन भी लेकर, अच्छा। यह तो बताइए कि बाबू जी ने उनको पत्र लिखा है या नहीं ?'

सुरेश—'मेरी जानकारी में तो नहीं।'

अचला—'वे गाँव से आये या नहीं, आप जानते हैं ?'

सुरेश—'यह भी नहीं मालूम।'

अचला फिर गाड़ी के बाहर झाँकने लगी और वैसे ही झाँकते हुए उसने कहा—'तो फिर किसी दिन वे यहा चले न आयें। इसलिए पता लगाकर आप बाबू जी से उन्हें एक पत्र लिखवा दीजिए।'

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। सुरेश ने अचला का हाथ अपने हाथ में लेकर फिर धीरे से कहा—'अचला, जब मैं यह सोचता हूँ कि तुम मुझे कभी अपनी श्रद्धा का पात्र समझोगी तब मुझे बड़ी व्यथा होती है। तुम सदैव ही सोचोगी कि रुपये के बल पर मैंने तुम्हें जीता है। मेरा अपराध···।'

उसी समय अचला ने उसे रोक कर कहा—'ऐसे शब्द मुँह से न निकालिए। आपका कोई दोष नहीं।'—थोड़ा रुककर पुनः बोली—'इस संसार में तो रुपये की सर्वत्र महिमा है। पर पिता जी चाहे न भी जानें, पर मैं तो सब जानती हूँ कि मेरे साथ आपने रुपये के जोर से काम लिया। फिर भी यदि मैं आपकी श्रद्धा न करूँ, तो मुझ-सी अभागिन कौन होगी !'

सुरेश सदैव का ही भावुक रहा है। अचला की इस स्नेहसिक्त बात से वह भावुकता उमड़ पड़ी, दिल भर उठा, आँखें डबडबा गईं और वह आँसुओं को अचला के हाथों से ही पोंछकर बोला—'अचला जानता हूँ कि मैं कितना बड़ा अन्याय कर रहा हूँ। पर मेरा दिल बहुत

कमज़ोर हूँ। इस वियोग-व्यथा को नहीं सह सकता। मेरा हृदय टूक-टूक हो जायगा। महिम तो एक बार सह भी लेगा।'—कहते-कहते उसका गला रुँध गया और उसने अपने को सँभालते हुए कहा—'जब मैं यह सोचता हूँ कि तुम मुझसे नहीं, किसी और से प्रेम करती हो तो मेरा दिल छटपटाने लगता है और मैं अपने को उखड़ा-उखड़ा-सा अनुभव करता हूँ।'

सड़क की रोशनी जलाई जा रही थी। उसी समय जब गाड़ी गली में घुसी तो एक बत्ती का प्रकाश सुरेश के चेहरे पर पड़ा। प्रकाश में अचला ने स्पष्ट देखा कि सुरेश की आँखों में आँसू भरा है और अनायास व्यथा से विकृत है। देखते ही उसका दिल दयार्द्र हो उठा अनायास ही कह बैठी, जिसे वह आज तक न कह पाई थी—'बाबू जी ने मुझे तुम्हारा ही बना दिया है। मैं उनकी किसी आज्ञा को नहीं टालती।'

सुरेश प्रफुल्ल हो अचला के उस हाथ को बार-बार चूमने लगा और बोला—अचला, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए। पर कहीं ऐसा न हो कि यह भी मुझसे छिन जाय।'

मकान के सामने जाकर गाड़ी खड़ी हो गई और कोचवान ने आकर गाड़ी की खिड़की खोली। सुरेश ने अचला को उतारा। जैसे ही दोनों घर की तरफ बढ़े कि महिम को सामने खड़ा पाया। अचला और सुरेश को काठ मार गया। पर दूसरे ही क्षण अचला अपना हाथ झटका दे अलग कर अजीब-सा विकृत व्यग्र स्वर उच्चार, पीछे हट गई।

महिम आश्चर्य से चकित हो गया था। बोला—'सुरेश, तुम यहाँ!'

सुरेश पहले तो बोल ही न सका। फिर किसी तरह सूखे चेहरे पर विकृत हँसी लाकर बोला—'वाह! महिम, कब आये? घर पर इतने दिनों तक क्या करते रहे? तुम तो बिलकुल भूल ही गये। अच्छा अब ऊपर तो चलो'—कहता हुआ महिम के निकट जा, उसे हाथ से धक्का दे ऊपर ढकेलता हुआ बोला—'इनके पिता जी तो रास्ते से ही समाज चले गये। इनको पहुँचाने मुझे आना पड़ा। चलो एक तरह से

अच्छा ही हुआ कि तुम मिल गये, अन्यथा न जाने कब मिलते।'

महिम ने अपने भौंचकपन में अचला को नमस्कार भी नहीं किया और बोला—'काम में व्यस्त था।

ऊपर की ओर ढकेलते हुए सुरेश ने कहा—'हम लोग तो चिन्ता के मारे बेहाल हो गये—आपका पता ही नहीं—एक पत्र तक न लिखा। अब खड़े क्या हो! ऊपर चलो न।'—कह जबर्दस्ती ढकेलता हुआ ऊपर ले गया। बैठक में ले जाकर उसे बैठा तो दिया पर वहाँ जाते ही सुरेश की स्फूर्ति और वाकचातुर्य हवा हो गये। प्रकाश में उसके चेहरे की हवाइयाँ स्पष्ट दीख रही थीं। कमरे में दो-तीन मिनट तक निस्तब्धता छाई रही। फिर महिम ने एक बार दोनों की ओर अर्थगर्भित दृष्टि डाल पूछा—'और तो सब कुशल है?'

अचला ने वैसे ही निःशब्द गर्दन हिलाकर ही उत्तर दिया। उसकी ओर उसकी आँख भी न उठी।

महिम—'तुम लोगों का सुरेश से परिचय कैसे हुआ? मैं तो बिलकुल आश्चर्यचकित रह गया हूँ।'

अचला ने सारा साहस बटोर कर कहा—'बाबू जी का चार हजार का ऋण इन्होंने चुका दिया है।'

अचला की मुखमुद्रा को देख महिम ने व्यग्र हो पूछा—'उसके बाद?'

'बाबूजी से पूछ लेना उसके बाद की।'—कह अचला वहाँ से उठकर एकदम जल्दी से बाहर चली गई।

महिम को जैसे साँप सूँघ गया हो। थोड़ी देर चुपचाप बैठा रहा। फिर सुरेश से पूछा—'सुरेश, आखिर बात क्या है?' सुरेश ने उत्तर दिया—'मैं रुपयों को तुम्हारी तरह सर्वस्व तो नहीं समझता। बाबूजी को जरूरत थी, मैंने दे दिये। यदि वे अदा न कर सकें, तो मेरा दोष नहीं। चाहे तुम मुझे एक बार नहीं सौ बार दोषी समझो, मुझे परवाह नहीं।'

महिम सुरेश के उत्तर के ढङ्ग से कुछ समझ तो न सका, अजीब सी दशा उसकी हो गई। वह बोला—'मैं ख्वामख्वाह तुम्हें दोषी क्यों ठहराने लगा। पर मैं तो कुछ समझ ही नहीं पा रहा हूँ। जरा स्पष्ट समझाकर कहो। आखिर बात क्या है ?'

सुरेश का उसी प्रकार रूखा-सा उत्तर था। वह बोला—'इसके अतिरिक्त और है क्या जो स्पष्ट कहूँ ?'

महिम—'स्पष्ट कहने को तो बहुत कुछ है। जब मैं घर जाते समय तुमसे मिला था, तब तुम दोनों एक दूसरे से परिचित भी न थे। इसी बीच में तुम्हारा परिचय हो गया है। इतने घनिष्ठ भी हो गये, सो कैसे ? और कहाँ से, कैसे तुम्हारे दिल में एक ब्रह्म समाजी की सहायता के लिए चार हजार रुपये का त्याग करने की दया उमड़ आई ? यह तो समझाओ। मैं तुम्हारा बड़ा आभार मानूँगा।'

सुरेश—'मेरे पास इतना समय नहीं कि सब बातें स्पष्ट करूँ। केदार बाबू से सब बातें पूछ लेना। वे तुमसे भेंटकर सब बातें कहना भी चाहते थे।'

महिम—'अच्छी बात है।'—यह कह चलता हुआ बोला—'सुनने को तो मैं भी उत्सुक था, किन्तु केदार बाबू की प्रतीक्षा करने का अवकाश मेरे पास भी नहीं है।'

सुरेश अचल बैठा रहा, निःशब्द।

महिम जब कमरे से बाहर हुआ तो अचला को अँधेरे में उसी की ओर दृष्टि लगाये रेलिङ्ग पकड़े खड़ा पाया। सोचा, शायद वह उससे मिलने आगे बढ़े। पर जब उसकी धारणा निर्मूल सिद्ध हुई और अचला वैसे ही मूर्तिवत् उसकी ओर एकटक देखती रही, मिलने को बढ़ी नहीं तो महिम धीरे-धीरे चिन्तित मन से सीढ़ी से नीचे उतर गया।

दसवाँ परिच्छेद

महिम कलकत्ते तो केवल कुछ आवश्यक औषधि लेने आया था। अतः ले चुकने के बाद ही वह रात की गाड़ी से वापस चला गया। सुरेश ने जब उनके शहर के निवास स्थान पर जाकर पूछा तो पता चला कि वह वहाँ तो गया ही नहीं। इसके चार दिन बाद केदार बाबू के घर पर उसके सम्बन्ध में वर्तालाप हो रहा था। चाय पीने के बाद आज भी वे लोग सनेमा देखने जाने वाले थे। इन्तजार में सुरेश की गाड़ी नीचे खड़ी थी। सिनेमा देखने का व्यवसाय केदार बाबू के लिए नितान्त नवीन था। ठीक उसी समय न जाने कहाँ से सहसा महिम उनके आमोद में अशुभ बन आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही सबके चेहरे का रङ्ग बदल गया। बनावटी हँसी हँसते हुए केदार बाबू ने उसका स्वागत किया—'सब कुशल तो है महिम ? आओ, बैठो !'

महिम भीतर जा बैठा। जब लोगों ने पूछा कि घर पर इतने दिन लगने का क्या कारण था तो उसने नितान्त सूक्ष्म उत्तर दिया—'आवश्यक कार्य था।'—अचला ने काढ़ने में अपने को व्यस्त कर दिया और सुरेश ने मेज पर से अखबार उठाकर पढ़ने में। रह गये अकेले केदार बाबू, उन्हीं से बातचीत का सिलसिला जारी रहा। थोड़ी देर में अचानक अचला बाहर गई और तुरन्त ही लौट कर आ गई। उसके आने के बाद ही नौकर ने पङ्खा खींचना प्रारम्भ कर दिया। केदार बाबू ने जब हवा का अनुभव किया तो प्रसन्न हो बोले—'वाह खूब ! पङ्खा खींचने वाले ने इतनी देर बाद कृपा की तो। सुरेश की तीव्र आँखों ने महिम के माथे के श्रम के बिन्दुओं को देख लिया था और उसे अब यह अनुमान लगाने में तनिक भी देर न लगी कि अचला बाहर उठकर क्यों गई। जिस हवा से केदार बाबू शीतलता का अनुभव कर कर रहे थे, उसी हवा से उनके हृदय की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने जेब से घड़ी

निकाल कर देखते हुए तेज आवाज में कहा—'केदार बाबू अब और देर न कीजिए, पाँच तो बज गये हैं।'

केदार बाबू ने तुरन्त बात का सिलसिला वहीं रोक दिया और चाय लाने के लिए नौकर को आवाज दी। नौकर ने चाय सामने रख दी। अचला ने काढ़ना एक तरफ रख एक प्याला केदार बाबू को और एक सुरेश को बनाकर दे दिया। इस पर केदार बाबू पूछ बैठे—'बेटी! तुम नहीं पीओगी क्या?'

अचला ने सिर हिलाते हुए ही उत्तर दिया—'बड़ी गर्मी है बाबू जी। मैं तो नहीं पीऊँगी।'

अब केदार बाबू की नजर महिम पर पड़ गई तो व्यग्र होकर बोले—'अरे वाह! तुमने तो महिम बाबू को भी नहीं दी। तुम भी नहीं पीओगे क्या महिम?'

जब तक कि महिम उत्तर दे, अचला ही बीच में बोल उठी। अपने सरल स्वाभाविक मधुर स्वर में कहा—'तुमको तो चाय प्रिय भी नहीं और गर्मी गजब की है, तुम्हें चाय पीने की आवश्यकता नहीं।'

अचला के स्नेहाधिकार स्वर से महिम ने अपने दिल का एक भारी बोझ हलका होता अनुभव किया। उसके मुँह से किसी प्रकार के शब्द न निकले, केवल वह स्नेहपूरित नेत्रों से अपलक अचला की ओर देखता रहा।

अचला—'अच्छा, जरा ठहरो! मैं तुम्हारे लिए लेमन का शर्बत बनाकर अभी लाई।' और वह बिना महिम के 'हाँ' 'ना' की प्रतीक्षा किये कमरे के बाहर चली गई। सुरेश अन्यमनस्क-सा दूसरी ओर मुँह किये चाय पीता रहा, चाय का प्रत्येक घूँट उसे विष-सा लग रहा था।

चाय समाप्त कर केदार बाबू तुरन्त कपड़े पहन तैयार हो गये। अचला अपनी जगह पूर्ववत् बैठे फूल ही काढ़ रही थी। उसे बैठा देख व्यग्र हो बोले—'तैयार नहीं हुई तुम अभी, फूल ही काढ़ रही हो बैठी हुई?'

'बाबूजी, मैं तो नहीं जाऊँगी।'—अचला ने सरल स्वर में कहा।

केदार बाबू—'क्यों, नहीं जाओगी? आखिर बात क्या है?'

अचला—'मुझे आज कुछ सुहाता नहीं। आप ही लोग हो आइए।'

केदार बाबू अचला की दिली नाराजगी ताड़ गये; बोले—'क्या तबीअत ठीक नहीं?'

अचला—'मैं तो भली चङ्गी हूँ। तबीअत को क्या हुआ है?'

महिम की ओर पीठ कर सुरेश खड़ा था। अतः यह न देख सका कि महिम के चेहरे पर इस समय क्या भाव है। वह वैसे ही पीठ किये बोला—'खामख्वाह की जर्दबस्ती से क्या लाभ हो सकता है! घर पर उन्हें कोई विशेष कार्य हो। चलिए हम लोग चलें।'

'क्या तुम्हें घर पर कुछ काम है?'—केदार बाबू ने प्रश्न किया। उनके स्वर में कुछ सख्ती थी।

'नहीं!' अचला ने गर्दन हिलाकर उत्तर दिया।

केदार बाबू को सहसा क्रोध आ गया और वे अप्रसन्न होकर तीखे स्वर में बोले—'कहना नहीं मानती! जिद्दी कहीं की! मैं कहता हूँ चलो!'

अचला स्तब्ध रह गई, भौचक, सहमी। लेकिन विस्फारित नेत्रों से उसने बारी-बारी सुरेश और केदार बाबू को निहारा और सहसा उठकर बाहर चली गई। काढ़ना उसके हाथ से नीचे गिर गया।

सुरेश को चेहरे की कालिमा ने विकृत कर दिया था, बोला—'केदार बाबू, मुझे तो देर हो रही है, मुझे आज्ञा हो तो जाऊँ। आपकी आदत है हर बात में जबर्दस्ती करने की।'

केदार बाबू ने अपने व्यर्थ के गुस्से की अशिष्टता का अनुभव किया और मन ही मन उस पर शर्मा भी रहे थे। लेकिन सुरेश के इस व्यवहार ने उन्हें और सुलगा दिया और शिकार बन गये। महिम वह वैसे ही उठना चाहता था कि केदार बाबू ने ही पूछ लिया—'महिम, क्या तुम्हें हमसे इस समय कोई आवश्यक कार्य है?'

महिम उठ गया। बोला—'जी नहीं।'

केदार बाबू चलने को तैयार हो बोले—'अच्छा, फिर कभी आना।

आज तो जरा हमें जल्दी है।'

महिम—'कोई बात नहीं, चला जाऊँगा। वैसे क्या आज खास जरूरी ही है ?'

'मुझे तो कोई खास जरूरत नहीं। तुम्हें हो तो आ जाना—दो चार बातें ही साफ हो जायँगी।'

तीनों साथ ही बाहर निकले। सुरेश महिम की ओर विना ध्यान दिये ही केदार बाबू की गाड़ी में बैठा और चल दिया।

महिम आगे बढ़ा ही था कि किसी को अपना नाम ले पुकारते सुन खड़ा हो गया। देखा कि केदार बाबू का एक नौकर हाथ में परचा लिये आ रहा है। परचे पर पेन्सिल से सिर्फ लिखा था 'अचला।' नौकर ने हाँफते हुए कहा—'आपको याद किया है, सिर्फ एक बार।'

महिम लौट पड़ा। आकर देखा अचला सीढ़ियों पर ही खड़ी है। उसकी आँखें अब भी सुर्ख थीं। डबडबाई हुई। ज्यों ही महिम उसके पास पहुँचा, उसका व्यथा भरा स्वर फूट पड़ा—'क्या जानकर अपने अकृतज्ञ, निष्ठुर मित्र के जिम्मे छोड़ गये थे। योंहीं सन्त्रस्त कर मार डालने के लिए ? बोलो।'—कहते-कहते अचला की व्यथा दिल में न दब सकी। उसके बाँध टूट गये और वह आँसू बनकर निकली।

महिम चित्रवत् खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद अचला ही आँसू पोंछती हुई बोली—'अपना दाहिना हाथ तो देना, अब मेरे पास इतना समय नहीं कि अब भी शर्मीली ही रहूँ।'—यह कह अचला ने महिम का दाहिना हाथ स्वयं ही झुककर पकड़ लिया और अपनी ओर खींचकर अपनी सोने की अँगूठी पहना दी। बोली—'मेरे अन्दर अब इतनी शक्ति नहीं कि कुछ सोच समझ सकूँ। अब तुम्हारे जो दिल में आये, करना।' यह कह घुटने के बल बैठ महिम को अभिनन्दन कर अन्दर चली गई।

महिम के मुँह से कोई शब्द न निकला। काफी देर तक वहीं रेलिंग के सहारे चित्र खिचित्-सा स्तब्ध खड़ा रहा। पश्चात् सीढ़ी से धीरे-धीरे पैर रख चला गया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

महिम जमीन में गर्दन गाड़े व्यथित, अस्तव्यस्त-सा अपने ही अन्तर्द्वन्द्व से संघर्ष करता अपने निवास स्थान की ओर जा रहा था। किसी में उसके अन्तर को झाँक उसमें मचे संघर्ष को जानने की ताब न थी। केदार बाबू की प्रवृत्ति से वह भली-भाँति परिचित था कि धन का जहाँ प्रकाश देखा कि उधर ही मञ्जिल समझ चल देंगे। लेकिन पूरा मामला उसकी समझ में न आया था कि कैसे सुरेश का इनसे परिचय हुआ। फिर क्यों कर इतने कम दिनों में ही वह इनसे इतना घनिष्ठ भी हो गया।

महिम सुरेश के स्वभाव को तो बचपन से ही जानता था। सुरेश जिससे प्रेम करता है उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। यहाँ तक कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी जीतने की कोशिश करता है। रुपये की तो उसे कभी भी परवाह नहीं रही। वह अच्छी तरह समझता था कि उसके प्रेम में पड़कर जब उसने गङ्गा में डूबने से बचाने में अपने प्राणों का मोह तक न किया तो जब आज वह अपने उसी मित्र की परवाह न कर अपने एक अनन्य प्रेमी को पाने का प्रयास करे तो इसमें उसका दोष नहीं। वह तो स्वभावगत ही है, अतः महिम ने इसे अपना दुर्भाग्य समझ सन्तोष कर लिया, किसी को भी उसके लिए वह दोषी न ठहरा सका। लेकिन उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी कि अचला के चारों ओर जो भयङ्कर प्रतिबन्ध की प्राचीरें खड़ी हो गई हैं, उन्हें तोड़-फोड़ लाँघ वह फिर उसकी हो जायगी और इसी कारण अचला के इस आचरण को वह क्षणिक चञ्चलता और भावावेश ही सोचता रहा। उस पर उसको पूरा विश्वास न हो सका। अचला की अँगूठी भी उसे भरोसा न दिला सकी। लेकिन कुछ न कुछ फैसला तो करना ही था। इसी उधेड़बुन में वह अपने निवास स्थान पर रात में आठ बजे के बाद पहुँचा।

दूसरे दिन सवेरे ही वह केदार बाबू के घर जा पहुँचा। पता चला कि वे सवेरे कहीं बाहर गये हैं, किसी दावत में। उसके दूसरे दिन फिर पहुँचा तो पता चला कि सबके सब सिनेमा देखने गये हैं। यह भी न जानने की कोशिश की कि 'सब' से क्या अभिप्राय है। लौट आया। उस जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए दो दिन जाकर लौटना ही पर्याप्त था, उसके स्वाभिमान को पहुँचाने के लिए। पर जब उसकी निगाह अँगूठी पर जाती तो वह सब कुछ भूल फिर जाने पर विवश हो जाता। तीसरे दिन वह फिर पहुँचा तो पता चला कि केदार बाबू घर पर ही हैं; ऊपर के कमरे में चाय पी रहे हैं।

गम्भीर मुद्रा में केदार बाबू ने महिम को खड़ा देख, कहा—'आओ महिम!'

महिम ने हाथ उठाकर नमस्कार भर किया, बोला नहीं। कमरे में एक ओर खिड़की के पास एक ही कोच पर पास-पास बैठे सुरेश और अचला एक चित्रों की पुस्तक देख रहे थे। अचला तो वैसे ही आँखें गड़ा तसवीर देखने में तल्लीन रही और सुरेश ने महिम पर एक नजर भर डाली और फिर तसवीर देखने लगा। अचला के व्यवहार से पता तो ऐसा चलता था कि उसने न तो महिम के आने को ही जाना और न पिता की आवाज ही सुनी।

महिम चुपचाप कमरे में एक कुर्सी पर बैठ गया। काफी देर तक किसी में किसी से किसी प्रकार की बात नहीं हुई। केदार बाबू एक-एक घूँटकर चाय पी रहे थे। प्याले की चाय समाप्त होते होते निस्तब्धता सहनशक्ति से बाहर हो गई। वे बोले—'महिम, तुम्हारी वकालत का परीक्षा-फल तो एक महीने बाद मालूम होगा? आजकल क्या कर रहे हो?'

महिम—'जी, वह तो एक महीने में ही मालूम होगा।'

केदार बाबू—'अच्छा! पास हो गये तो!—खैर, इसमें तो किसी प्रकार का सन्देह हो ही नहीं सकता। तुम पहले तो प्रैक्टिस कर हाथ में

पूँजी करना चाहोगे; तब किसी और काम में हाथ डालोगे ? सुरेश, सुनते हैं कि इनकी आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं ?'

सुरेश ने उत्तर नहीं दिया। महिम ने हँसते हुए कहा—'यह भी तो कोई जरूरी नहीं कि वकालत शुरू करते ही आमदनी होने लगेगी।'

केदार बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा—'हाँ, यह भी ठीक ही है। ईश्वर की मर्जी पर है। वैसे तो कोशिश करने से कोई काम 'न हुआ' नहीं रह जाता। अपने शास्त्रों में भी अध्यवसायी पुरुष का उल्लेख जैसा है तुमको भी वैसा ही होना है। सब ओर से ध्यान हटा कर तुम्हें भी अपनी उन्नति करने की ओर ही शक्ति लगानी चाहिए। यही सांसारिक धर्म है और यह नहीं तो वही पाप है। पश्चात् सुरेश की ओर देख बोले—'सुरेश, हिन्दुओं के पतन का क्या कारण है ? यही न कि—वे सन्तान को भली प्रकार पाल-पोस नहीं सकते। उनकी दीक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। यदि हम ब्रह्मसमाजी भी इस अनुभव से लाभ न उठायें तो सभ्य समाज में खड़े होने का स्थान हमारे लिए नहीं।'

सुरेश ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया। महिम से न रहा गया। बोल उठा—'आपका उपदेश सर-माथे पर। पर क्या यही सब कहने को आपने मुझे बुलाया था ?'

केदार बाबू महिम का आशय समझ गये और सामने के सोफे की ओर अर्थ-भरी कनखियों से ताककर बोले—'नहीं ! इतनी ही नहीं, और भी कुछ बातें हैं।'

सुरेश उठा और अचला की गोद से तसवीर की किताब उठाते हुए बोला—'चलो ! हम दूसरे कमरे में चलकर बैठें।' परन्तु अचला अचल रही। केदार बाबू ने यह देखकर कहा—'बिटिया ! तुम दोनों उस कमरे में जाकर बैठो। मैं महिम से कुछ बात करूँगा।'

'मैं तो यहीं बैठूँगी बाबू जी।'—अचला ने और भी जमते हुए कहा।

सुरेश—'तो मैं ही जाता हूँ।'—कह गुस्से में पुस्तक को वहीं अचला की गोद में पटक बाहर चला गया।

केदार बाबू को अचला की यह जिद खल गई। यह बात क्रोध से विकृत उनकी मुख-मुद्रा से स्पष्ट झलक रही थी। फिर अचला को वहाँ से हटाने की जिद उन्होंने न की। केवल गुस्से में तमतमा थोड़ी देर चुप बैठे रहे। बाद को बोले—'महिम! अभी तो तुमको अपने सर पर किसी प्रकार का भी भार नहीं लेना चाहिए। पहले तो तुम्हें जीवन में उन्नति करनी है, अपने को योग्य बनाना है। भार उठाने को तो सारा जीवन पड़ा है। पर तुम यह न समझना कि मैं तुम्हें किसी नाराजगी के कारण यह सलाह दे रहा हूँ, बल्कि एक हितैषी के नाते ही सलाह दे रहा हूँ।'

महिम ने एक दृष्टि अचला पर डाली। अचला की आँखें झुक गईं। तब महिम ने केदार बाबू को उत्तर दिया—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य। पर इतना अवश्य जानना चाहूँगा कि क्या अचला की भी यही राय है?'

केदार बाबू अचकचा कर बोले—'हाँ'—फिर कुछ क्षण तक रुककर और बोले—'कुछ भी हो, अब मैं जानबूझ कर अपनी लड़की तुम्हारे हाथों सौंप उसे कुएँ में नहीं ढकेल सकता।'

महिम मन्द स्वर से बोला—'अङ्गरेजों में एक चलन है कि जब तक लड़के की स्थिति ठीक नहीं हो जाती तब तक दोनों एक दूसरे के इन्तजार में ही रहते हैं। तो क्या मैं आपके कथन का यही अर्थ निकालूँगा?'

इस बात से केदार बाबू का गुस्सा और भी भड़क उठा, वे बोले—'मेरा काम तुम्हारे सम्मुख गङ्गा जल उठाना नहीं। तुम्हारा आचरण ऐसा है कि यदि मेरी जगह और कोई होता तो अब तक हाय तोबा मच जाती। वह तो कहो मैं किसी से झगड़ा-झञ्झट पसन्द नहीं करता। इस लिए रार न बढ़ा सीधे-सीधे शब्दों में सारी बातें तुम्हें समझा दीं। अब मुझे जरूरत नहीं कि खुलासा करता फिरूँ कि प्रतीक्षा में रहो या नहीं

और फिर अङ्गरेज नहीं कि उनकी नकल करें। हम तो हिन्दुस्तानी हैं। जवान लड़की माँ बाप के लिए सिरदर्द हो जाती है। तुम तो खुद भी इस बात को समझते होगे।'

महिम के चेहरे पर आवेग की लाली दौड़ गई, पर उसी क्षण अपने को सँभालते हुए बोला—'मैं नहीं जानता कि मेरा कोई भी आचरण ऐसा है जिसके कारण आपको इतनी हाय तोबा करनी पड़े। अब प्रश्न आपसे नहीं, आपकी कन्या से है। क्या उनकी भी यही सलाह है?'

तत्पश्चात् महिम अचला के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—'तुम्हारी सलाह क्या है? बोलो?'

अचला चुपचाप बैठी रही।

हृदय के आवेश को अन्दर ही अन्दर दबाते हुए महिम बोला—'अचला क्षमा करना, मैं अभी तक तुमसे अपनी बात कहने का अवसर नहीं पा सका, पर उस दिन शाम को जो तुम्हारा आचरण था, यदि उसे तुमने किसी भावावेश में कर डाला है तो उसके कारण ही तुम किसी बात से बँध गईं, ऐसा न समझना। अब तुम एक बार साफ़-साफ़ कह दो—क्या मैं तुम्हें वह अँगूठी वापस कर दूँ?'

सुरेश आवेश में आकर कमरे में घूमता हुआ बोला—'क्षमा कीजिए केदार बाबू! अब मैं यहाँ एक मिनट नहीं ठहर सकता।'

सभी की आँखें उसकी ओर उठ गईं। केदार बाबू विस्मय में पड़ गये। बोले—'आखिर बात क्या है?'

सुरेश ने दोनों हाथ फैलाते हुए कहा—'मेरे घनिष्ठ मित्र को प्लेग का मरणान्तक रोग हो गया है और मैं यहाँ बैठा हूँ। नहीं-नहीं! मेरा यह अपराध अक्षम्य है।'

केदार बाबू घबड़ा गये। बोले—'प्लेग! तुम प्लेग में जाओगे क्या?'

सुरेश ने हँसते हुए कहा—'जरूर जाऊँगा। मुझे तो वहाँ कब का पहुँच जाना चाहिए था।'

केदार बाबू और भी घबड़ा गये। बोले—'वे क्या तुम्हारे अपने सगे-

अत है, मैं ठीक कह रहा हूँ न!'

अचला और सुरेश अब भी चुप रहे। ठीक, गलत किसी प्रकार की राय किसी ने भी नहीं जाहिर की! केदार बाबू थोड़ी देर मौन रह कर फिर कहने लगे—'इसका प्रमाण जुटाने का भार भी आप पर ही रहा। हम तो यह भी नहीं जानते कि महिम का मकान किस ग्राम में है, उसकी कौटुम्बिक अवस्था जानना तो दूर रहा।'

इतने ही में नौकर ने आकर सूचित किया कि नीचे विकास बाबू बैठे हैं। सुनते ही केदार बाबू सन्न-से हो गये। बोले—'कह दो आता हूँ, लेकिन आज तो उन्हें नहीं आना था। आज आने की बात तो थी नहीं। अच्छा, सुरेश बाबू मुझे पाँच मिनट की आज्ञा दीजिए। मैं जरा उससे दो बातें कर विदा कर आऊँ। बिना मिले तो वह जाने का नहीं। बेटी अचला! सुरेश बाबू अपने ही हितचिन्तक हैं, इनसे जो चाहे पूछ लो। मैं भी आता हूँ थोड़ी देर में।' यह कहकर वह चले गये।

सुरेश और अचला दोनों की आँखें एक दूसरे की ओर उठीं और एक दूसरे से मिलते ही नीची हो गईं। फिर दोनों ही थोड़ी देर चुप रहे। सुरेश ने धीरे-धीरे मौन भङ्ग की—'हम दोनों में बाल्यकाल ही से घनिष्ठता है। उसके आचरण से मैं बड़ा शर्मिन्दा हूँ।'

'उनके लिए आपको शर्मिन्दा होने की आवश्यकता नहीं।' अचला ने मधुर स्वर में कहा।

सुरेश—'उसने आपके साथ कपट किया फिर भी उसका मित्र होते हुए लज्जित न होऊँ। अब तक वह सब बातें मुझ से छिपाता चला आ रहा है। मुझे इसी से समझ लेना चाहिए कि वह आप लोगों को भी धोखे में रख रहा होगा।'

अचला—'हम ब्रह्म-समाजी हैं और आप नहीं चाहते कि आप उन्हें हमारे सम्पर्क में आने दें या स्वयं ब्रह्म-समाजी के सम्पर्क में रहें। शायद इसी कारण उन्होंने आपसे ये बातें नहीं कहीं।'

अचला से उसे ऐसे उत्तर की आशा न थी! वह यह न समझता

था कि वह उसी के समस्त महिम के दोषों का निवारण करने का प्रयास करेगी। उसको अचला की यह बात भली न लगी और उसने तीखे-शुष्क स्वर में कहा—'मेरे विचार में शायद यह सूचना भी आपको महिम ने ही दी होगी।'

अचला ने हामी भर कर कहा—'हाँ, उन्होंने एक दिन कहा था।'

सुरेश—'वह मेरे दोष की बात कहने में चूका नहीं।'

अचला जरा हँसी और बोली—'इसमें दोष क्या है? जो लोग आपका साथ छोड़कर चले गये हैं यदि उनका साथ आपको अरुचिकर हो, तो इसमें कोई दोष तो मुझे प्रतीत नहीं होता। यह तो अपनी-अपनी धारणा है।'

वैसे यदि यह उत्तर सुरेश ने कहीं अन्यत्र सुना होता तो यह निश्चय प्रफुल्लित होता, लेकिन उसे इस ब्रह्म-समाजी युवती के मुँह से उसके ब्रह्मसमाज के प्रति अरुचि की धारणा सुनकर निश्चय ही आश्चर्य हुआ; और इस प्रकार की बातें सुनने के लिए उसने वे बातें कही भी नहीं थीं। वह यह जानने को अवश्य उत्सुक था कि महिम ने उसके किन्हीं और अच्छे गुणों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहा है या नहीं! लेकिन अचला उसकी इस भावना को न समझ सकी और चुप रही।

सुरेश ने थोड़ा क्षुब्ध होकर कहा—'यदि वह मेरे सामने इसको अस्वीकार न करता तो शायद मैं उसके कौटुम्बिक विषय में कुछ कहने भी न पाता। मेरी ब्रह्म-समाज के प्रति अरुचि है, लेकिन आप विश्वास करें उसके प्रति रञ्चमात्र भी नहीं है।'

'वे कभी झूठ नहीं बोलते।' अचला ने सुरेश की ओर अपलक नेत्रों से देखते हुए कहा।

स्त्रियों के मुँह से ऐसे शान्त गम्भीर विश्वास भावना के शब्द निकल सकते हैं, उसे इसका स्वप्न में भी विश्वास न था। वह अचला का वाक्य सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपने को संयत कर लिया और तुरन्त उसने उत्तर दिया—'क्षमा कीजिएगा,

महिम मेरा बालमित्र है। मैं उसे आपसे कम पहचानता भी नहीं; परन्तु अपने को यहाँ फँसा कर अस्वीकार करना इसको मैं स्पष्टवादिता नहीं कह सकता।'

अचला ने उसी प्रकार शान्त संयत एवम् मधुर शब्दों में कहा—'लेकिन यहाँ तो उन्होंने अपने को कुछ फँसाया नहीं?'

'मुझसे आपके पिता जी ने यही बताया है और फिर अपनी आर्थिक अवस्था तथा घरेलू बातों से आप लोगों को बेखबर रहना भी तो किसी प्रकार उसकी सत्यवादिता का प्रमाण नहीं है। किसी और से न सही लेकिन आपसे तो उसे सही-सही आर्थिक कठिनाइयों को कह ही देना चाहिए था।'

अचला योंही शान्त, गम्भीर एवम् निःशब्द बैठी रही।

सुरेश ने फिर कहा—'आज आप उसके सारे दोषों को छिपाना चाहती हैं! लेकिन यदि आप पहले से सारी परिस्थितियों से अवगत होती तो क्या आप फिर उसे इस प्रकार अपनातीं?'

अचला अब भी योंही शान्त बैठी रही! सुरेश उसे उत्तर न देते देख और भी आवेश में आ गया और बोला—'उसने मुझ से स्वीकार किया है कि उसमें आपको कलकत्ता में रखने की क्षमता नहीं है और न वह ऐसा सोचता ही है। फिर क्या उसका यह कर्तव्य न था कि वह आपको अवगत करा दे कि वह आपको गाँव के अपने छोटे से मिट्टी के जीर्ण घर में ले जाकर रखेगा, जहाँ सारा हिन्दू समाज आपका विरोधी होगा। आप उस कष्ट को सहन कर सकेंगी अथवा नहीं, यह जानने की भी क्या उसे आवश्यकता न थी?' इतना कहकर उसने अचला की ओर उत्तर की आशा से देखा, लेकिन अचला आँखें नीची किये स्थिर भाव से निश्चल चिन्ता में डूबी बैठी रही। उत्तर न पाकर भी सुरेश ने अनुभव किया कि उसकी बातें अपना प्रभाव डाल रही हैं। बोला—विश्वास रखिए कि अब तक तो मैं आपके यहाँ इसी उद्देश्य से आया था कि अपने मित्र को बचाऊँगा, लेकिन यहाँ आकर उससे भी अधिक आपको बचाने का

मेरा कर्तव्य हो गया है। उसने तो आफत मोल ली है, लेकिन आप अनजाने गर्त्त में जा रही हैं। अभी-अभी आपके पिता जी ने मुझे प्रमाण जुटाने का भार सौंपा है, मैं बड़े असमंजस में था और सोच रहा था कि अपने मित्र के विरुद्ध प्रमाण जुटाने के कार्य को न करूँगा, लेकिन अब मुझे यह कार्य करना ही होगा। ऐसा मुझे जान पड़ता है। न करने से तो आपके प्रति अन्याय करना होगा।'

अचला—'क्या उनको सुनने पर दुःख न होगा?'

सुरेश—'जिसने आपके साथ कपट कर आपको इतना बड़ा कष्ट दिया, उसके दुःख की मुझे चिन्ता नहीं। मैं अभी उसके गाँव का नाम पता नहीं जानता, नहीं तो वहाँ आज ही जाकर सब प्रमाण जुटाकर कल ही आपके पिता के सामने लाकर रख देता और अपने मित्र के पाप के भार से मुक्त हो जाता।'

अचला—'पिताजी से कह दीजिए, वे ही अपने किसी विश्वासी आदमी से जानकारी प्राप्त करा लेंगे। उनका गाँव चौबीस परगने में राजापुर है, वह कुछ दूर भी नहीं है। आप क्यों कष्ट करते हैं?'

सुरेश को आश्चर्य हुआ कि अचला को महिम का गाँव मालूम है। उसने कहा—'अच्छा, तो आपको गाँव का पता भी मालूम है? तब तो और भी बातें मालूम होंगी।'

'मैं भी वही सब जानता हूँ जो कुछ आपने बताया।' अचला ने कहा। उसके कथन से सरलता एवं स्वाभाविकता टपकती थी। उसने आगे कहा—'एक मिट्टी का मकान है राजापुर गाँव के उत्तरपाड़ा में। बाहर चण्डी-मण्डप है। उसी में गाँव के लड़के पढ़ते हैं।'

सुरेश—'और उसके घर की दशा?'

अचला—'जो कुछ आपने बताया, वह सत्य है। थोड़ी-सी सम्पत्ति है, जिससे खाने पीने का खर्च निकल आता है।'

सुरेश—'तब तो आपको सब मालूम ही है।'

अचला—'एक दिन इतना ही मैंने पूछा था, वही उन्होंने सच-सच

बतला दिया, झूठ तो वे बोलते नहीं। बस, इतना ही मुझे मालूम है।'

सुरेश—'तो उसने आप लोगों के साथ कपट नहीं किया। उससे आपको सावधान करने के लिए मेरा आना भी व्यर्थ ही रहा; आपको तो सब हाल मालूम ही था।' यह कहते कहते उसका चेहरा स्याह पड़ गया।

अचला—'मैं इतना तो अवश्य जानती हूँ, पर आप जिन्हें सावधान करने आये थे वह वास्तव में कुछ भी नहीं जानते। यदि आप कहें तो उन्हें जितना मैं जानती हूँ, बता दूँ।'

सुरेश—'पिताजी को बतावें अथवा न बतावें, आपकी की मर्जी। पर अब इसी कारण मुझे महिम से जाते ही क्षमा माँगनी होगी; अन्यथा मुझे चैन न मिलेगा।' उसका स्वर उदास था।

अचला—'क्यों! क्या यह आवश्यक है?'

'मैं अनजाने में न जाने उसके प्रति क्या-क्या कह गया। क्या-क्या उस पर दोष लगा दिये—'झूठा, कपटी सब कुछ तो कह डाला। जब तक मैं उसके सामने ये सब बातें कह कर अपना दोष स्वीकार नहीं कर लेता; तब तक मुझे चैन पड़ ही नहीं सकता।'—सुरेश ने आवेश में भर कर कहा।

थोड़ी देर तक वहाँ निस्तब्धता रही। फिर मौन भङ्ग करते हुए अचला ने कहा—'मेरे विचार में तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मन में क्षमा चाहने की इच्छा, क्षमा माँगने से कम नहीं। उन्हें सुनकर कष्ट होगा। अतः उन्हें ये सब बातें सुनाने की आवश्यकता नहीं। और मैं बाबूजी से भी कह दूँगी कि आपकी बातों की चर्चा उनसे न करेंगे।'

'यदि आप यही चाहती हैं तो मैं महिम से कुछ न कहूँगा। जो कुछ और भी विचार मेरे दिल में उसके प्रति उठ रहे हैं, वे भी न कहूँगा। मैं देख रहा हूँ कि आप मुझे उस बात से रोक रही हैं, जिससे महिम को लेशमात्र भी व्यथा पहुँचने की आशङ्का है। मैं आप से एक बात कहे बिना तो अपने को नहीं रोक सकता।' सुरेश अचला की ओर एकटक

अर्थ-भरी दृष्टि से देखता हुआ बोला।

'अच्छी बात है! कहिए क्या कहना चाहते हैं?' अचला ने अपनी स्नेह-पूर्ण दृष्टि ऊपर उठाकर कहा।

'मित्र से तो क्षमा माँगने की मनाही कर दी, लेकिन आपसे मैं अवश्य क्षमा-प्रार्थी हूँ। आशा है आप मुझे अवश्य क्षमा कर देंगी।'—कहते-कहते सुरेश ने दोनों हाथ जोड़ लिये।

अचला का चेहरा मारे शर्म के लाल हो गया और उसने झट उसके दोनों हाँथों को रोकते हुए कहा—'यह आप क्या कर रहे हैं? यह तो आपका मेरे ऊपर अन्याय है।'

अचला के सहसा इस सरल स्वाभाविक स्पर्श से सुरेश सिहर उठा और उसके मुँह की सरल स्वाभाविक लज्जा-युक्त कपोलों की लाली ने उसे आसक्त करा दिया। वह अपलक नेत्रों से उसकी इस अनुपम आभा को देखता हुआ बोला—'मैंने अब तक जितना अन्याय किया उससे मेरे हृदय को तभी शान्ति मिल सकती है जब मैं आपसे क्षमा प्राप्त कर लूँ।'

अचला—'नहीं, नहीं! ऐसी बात न कहिए। आपने उनको एक एक नहीं दो-दो बार काल का ग्रास बनने से बचाया है।'

सुरेश—'तो आपको यह भी मालूम हो चुका है?'

अचला—'जी! आपही तो उनके सच्चे मित्र हैं।'

सुरेश—'आपसे बढ़कर तो कोई नहीं है। हाँ, फिर भी हम दोनों ही मित्र हैं।'

अचला के मुख पर फिर लज्जा की लाली दौड़ गई। उसने कहा—'आपने उन्हें मृत्यु के मुख से दो-दो बार बचाया है, अतः मैं आपके उनके प्रति किसी प्रकार के आचरण को अन्याय नहीं मान सकती। आप व्यर्थ दुखी न हों, यदि मैं कह सकती तो 'क्षमा' शब्द भी कह दिया होता; अगर आपको इसी में सन्तोष है तो...।'

सुरेश ने उठते हुए कहा—'अब उसकी आवश्यकता नहीं। पिताजी

के दर्शन में व्यस्त हो गये जान पड़ते हैं। अब देखिए, कभी महिम के साथ ही आऊँगा। नमस्कार !'

उन्हीं के साथ आयेंगे तो कोई मानी नहीं।' अचला ने तनिक मुस्कुराते हुए कहा।

सुरेश—क्या यह सत्य है ?'

अचला—'हाँ, सत्य ही है।'

'अहो भाग्य !' कहकर सुरेश ने फिर नमस्कार किया और चल दिया।

पाँचवाँ परिच्छेद

जिस समय सुरेश केदार बाबू के घर से बाहर निकला तब उसके पैर नशे में चूर आदमी की भाँति भूमि पर पड़ रहे थे। धूप भी ढल चुकी थी। उसने गाड़ी विदा कर दी और पैदल ही चल पड़ा। उसके मन में एक बार आया कि वह अपने को कलकत्ते की जन-पूरित कोलाहलमय सड़कों पर खो दे और फिर अपने बारे में अच्छी तरह मनन करे। बार-बार उसके समक्ष अचला का शिष्ट आचरण, उसकी मधुर वाणी, उसकी सुन्दरता साकार हो जाती थी। उसने अचला के व्यवहार में कुछ अनोखी बात नहीं देखी, न उसके सौन्दर्य और बुद्धि-कौशल ही में विशेषता पाई। पर न जाने क्यों बार-बार यही सोचता कि वह एक अनोखी वस्तु देकर आया है, जो अब तक उसने अन्यत्र न देखी थी। वह बार-बार अपने से यही प्रश्न करता कि उसमें क्या अनोखापन था, जिसमें वह इतना खो-सा गया है। यह सच है कि उसमें कोई विशेष अनोखी बात नहीं पर एक बार भी वह यह न सोच सका कि उसको प्राप्त करना किसी भी मनुष्य के लिए सौभाग्य की बात नहीं। सोचते-सोचते उसके दिल में विचार आया—हालाँकि अचला उसके मुकाबिले में शिक्षा, ज्ञान, आयु सभी में उससे छोटी है, फिर भी उसने उसे अपनी थोड़ी देर की बातचीत से ही

मुग्ध कर लिया। सम्भवतः उसका कारण उसकी सरल गम्भीरता ही है। वह तो महिम के सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या बकता गया, पर वह दृष्टि नीची किये सब सुनती रही; जरा भी उसे आवेश न आया। यही उसका बड़प्पन है। उसने एक बार भी डींग नहीं मारी कि वह महिम को कितना चाहती है। फिर भी अपने व्यवहार की सरलता से उसने महिम के प्रति प्रेम की अगाधता को जता दिया। महिम का ही यह गुण उसने अपनाया है। वह तो बालकपन से ही जरा-जरा सी बातों पर आवेश में आ जाता रहा है। इसी कारण उसका ज्ञान, बुद्धि, उम्र सभी उसके समक्ष छोटे हो गये थे।

इधर-उधर घूम फिर कर अनेक मार्गों वाली गली-कूचों का चक्कर लगाते-लगाते थकावट से चूर होकर सुरेश घर पहुँचा, तो बैठक में आँखों को हाथ से ढँके एक कोच पर महिम को पड़े देखा। उसके पहुँचते ही महिम उठ बैठा और 'सुरेश, तुम आ ही गये !' कहता हुआ एक चौकी खींचकर उस पर बैठ गया।

महिम सुरेश के घर कभी-कभी ही आता है, अतः उसके आने पर उसका विशेष स्वागत करने की सुरेश की व्यग्रता उमड़ जाती है। मगर आज वह शान्त रहा। बोल ही न सका। महिम इस अनोखे व्यवहार पर चकित होकर बोला—'जब घर गया तब सुना कि तुम आये थे, सोचा कि एक बार दर्शन तो कर ही आऊँ।'

'कुछ याद है तुम्हें ! आज कितने दिनों बाद आये हो इधर !' सुरेश ने कहा।

'समय ही न मिल पाता था।'—कहते हुए महिम ने बत्ती के प्रकाश में सुरेश के उदास, चिन्तित-म्लान मुख पर कठोरता का अनुभव किया। उसने उसकी इस कठोरता को ढीलाकर उसे प्रसन्न करने के हेतु अत्यन्त स्नेहमयी वाणी में कहा—'मैं मानता हूँ कि तुम नाराज हो; होने का कारण भी है। पर सुरेश, सच मानो मुझे समय ही न मिला

कि इधर आता। आजकल पढ़ाई भी अधिक करनी पड़ती है फिर इधर दो-एक ट्यूशन भी करनी पड़ती है।'

सुरेश—'तो तुमने फिर ट्यूशनें कर लीं ?'

महिम ने प्रश्न को टालते हुए कहा—'मुझसे कोई विशेष कार्य था ? किस कारण तलाश करने निकले थे ?'

सुरेश—'विशेष कार्य ही है। तुम आ गये अच्छा ही हुआ, नहीं तो मुझे कल सुबह फिर तुम्हारे पास आना होता।'

महिम प्रश्नसूचक मुद्रा में उसकी ओर देखता रहा।

सुरेश काफी देर तक नीचे देखते हुए चुप रहा, फिर बोला—'शायद कई दिनों से तुम केदार बाबू के यहाँ नहीं गये ?'

महिम—'नहीं तो।'

सुरेश आवेश में बोला—'मेरे ही कारण न ! मैंने तुमसे जो वहाँ न जाने का वचन लिया था, उसमें मैं आज तुम्हें मुक्त करता हूँ। तुम जब चाहो वहाँ आ-जा सकते हो।'

महिम—'मुझे तो याद नहीं कि मैंने वहाँ न जाने का तुम्हें वचन दिया है।'

सुरेश—'अच्छा ही है। नहीं याद आता तो जाने दो, फिर भी मैं किसी कारण तुम्हारे वहाँ जाने में बाधक सिद्ध होता होऊँ तो अब ऐसा मत समझना।'

महिम—'तुम्हारी इच्छा या आदेश ?'

सुरेश—'तुम क्या समझते हो ?'

महिम—'वही जो सदैव समझता रहा हूँ।'

सुरेश—'जो तुम्हारे जी में आये समझो। मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरी ओर से तुम्हें किसी प्रकार की बाधा नहीं होनी चाहिए। हो सकता है मेरा विचार स्वप्न ही हो।'

महिम—'इसका कारण क्या मुझे बता सकते हो ?'

सुरेश—'बेकार की बातों का भला कोई कारण होता है, जो तुम्हें

बता सकूँ।'

महिम की मुद्रा गम्भीर थी। उसी मुद्रा में थोड़ा शान्त रहकर बोला—'भाई सुरेश, अगर तुम्हारे चाहने और न चाहने पर ही किसी की बाधाएँ उपस्थित हो जायँ और खत्म हो जायँ तो क्या कहने हैं, लेकिन यह सम्भव भी नहीं कि जिसे तुम बाधा न समझो मैं उसे ही बाधा समझ सकता हूँ।'

सुरेश—'तुम्हारा मतलब?'

महिम—'मेरा मतलब यह कि मैंने उस दिन की तुम्हारी बातों पर गम्भीरता से गौर किया है। अब तुम यह बताओ कि तुमने जो एक महीने में मेरी शादी करा देने का बीड़ा उठाया था, उसका क्या हुआ?'

सुरेश ने स्पष्ट अनुभव किया की महिम मज़ाक कर रहा है। उसने भी अपनी उसी गम्भीरता में उत्तर दिया—'मेरा काम शादी-विवाह कराने का नहीं; न मेरा रोजगार ही है। यह मैं खूब सोचकर समझ गया हूँ कि तुमने मेरे कहने को निभाया है! इसके लिए धन्यवाद। लेकिन आज मेरा यही आदेश है कि वहाँ जाओ और कल सवेरे ही।'

महिम—'मैं तो कल घर जा रहा हूँ।'

सुरेश—'और आना कब होगा?'

'महिम—'कह नहीं सकता। हो सकता है महीना भर लग जाय या दस-पन्द्रह दिनों में ही लौट आऊँ।'

सुरेश—'यह नहीं हो सकता महिम, यह नहीं हो सकता! महीना भर तो बहुत होता है।' कहते-कहते सुरेश ने आवेश में महिम का दाहिना हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोला—'मैं बहुत बड़ा अपराधी हूँ। अब और मुझे उसका दोषी मत बनाओ। तुम कल ही सवेरे वहाँ जाओ, वे तुम्हारी बाट जोह रही होंगी।' कहते-कहते उसकी वाणी काँप उठी।

महिम के लिए यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय था, वह एकाएक ब्रह्मयुवती के प्रति सुरेश की इस सद्भावना का अर्थ ही न समझ सका और उसकी अजीब-सी हालत हो गई।

'कौन ? केदार बाबू की लड़की मेरी राह देख रही होगी ?' सुरेश के मुँह की ओर देखते हुए महिम ने पूछा।

'सम्भव है।' सुरेश ने अपनी स्थिति को सँभालते हुए उत्तर दिया। महिम चिन्ता निमग्न शान्त रहा। उसकी समझ में यह बात किसी प्रकार आ ही नहीं रही थी कि सुरेश स्वयं एक ब्रह्म-समाजी लड़की से जाकर परिचय करेगा और उसके प्रति इतनी सद्भावना रखेगा। 'सुरेश तुम्हारा इस समय का व्यवहार मेरी समझ में आना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। मेरी बुद्धि में यह विचार आ ही नहीं सकता कि तुम—वे तुम्हारी बाट जोह रही होंगी—एक ब्रह्म-युवती के प्रति सद्भावना प्रकट करोगे।'

सुरेश—'तुम यह तो बताओ कि कल वहाँ जा रहे हो या नहीं ? वह तो किसी और दिन भी समझा सकते हैं।'

महिम—'नहीं, कल तो जाना नहीं हो सकता। कल तो घर जाना है।'

सुरेश—'चन्द मिनटों के लिए भी नहीं।'

महिम—'नहीं, लेकिन यह तो बताओ तुम्हारे इस विचार-परिवर्तन का क्या कारण है ?'

सुरेश—'वह फिर किसी दिन बताऊँगा। क्या तुम्हारी तरफ से मैं यह बात जाकर कह सकता हूँ ?'

महिम को इस पर और भी आश्चर्य हुआ। वह बोला—'तुम्हारी मर्ज़ी; वैसे तो इसकी आवश्यकता ही क्या है ?'

सुरेश—'न भी हो, फिर भी मुझे परिचय देने से लोग जान तो जायँगे न !'

महिम—सब नहीं तो एक तो अवश्य ही जान जायगी।'

सुरेश—'मैं तुम्हारा मित्र हूँ। इतना परिचय पर्याप्त होगा न !'

महिम—'हाँ।'

'एक ब्रह्म-विद्वेषी मित्र के परिचय से तो अवश्य ही जान जायगी।' सुरेश ने ज़रा मुस्कराते हुए कहा।

महिम—'और यही तो तुम्हारा विशेष गौरव है !'

सुरेश—'इसमें भी क्या सन्देह है !' कहकर क्षण भर नीचे की ओर दृष्टि किये चुपचाप देखता रहा, एकाएक उठकर फिर बोला—'मुझे नींद सता रही है, अब सोना चाहता हूँ।' कहता हुआ सुरेश कमरे से बाहर चल दिया।

छठवाँ परिच्छेद

सुरेश को निःसन्देह यह विश्वास हो गया कि वैसे तो महिम उसकी बात को चाहे टाल दे, लेकिन इस बार वह अचला से इतने दिनों तक मिलने नहीं गया, वह केवल उसके मना कर देने के कारण ही नहीं गया। यदि कल तक उसे यह ज्ञात होता कि महिम को अचला से प्रगाढ़ प्रेम होने के बावजूद भी वह अपने बचपन के साथी की बात को नहीं टाल सकता, तो उसे निश्चय ही प्रसन्नता हुई होती। लेकिन आज वह अपने बिस्तर पर अकेला पड़ा हुआ, यह सब सोच रहा था, तब उसे यह विचार किसी प्रकार प्रसन्न करने में समर्थ न हो सका। उसे रह-रह यही विचार कचोटता कि किसी-न-किसी रूप में बातों-बातों में ही एक-न-एक दिन अचला के समक्ष उसकी सारी बातें आ जायँगी तो वह अपने पति की सुखमयी गोद में बैठकर उसके इस मित्र के इस द्वेष तथा ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार का कारण न जान सकेगी; और वह स्वयं भी कभी इसका कारण जानने का प्रयास न करेगी। हो सकता है, इतना तो कहे कि मित्र के कर्तव्य को निभाने के लिए उसने किस तरह का भोला रूप अपनाया था और वह उसको पूरा करने के लिए स्वयं ही अन्तर्द्वन्द्व से घायल हो रहा है।

रात को वह सो न सका। जब-जब नींद उचटती तब-तब यही विचार उसके मानस-पट पर ताना-बाना बुनने लग जाता और उसके विचार उससे प्रश्न करते—'सुरेश ! दूसरों के लिए इस प्रकार व्यर्थ का श्रम मोल लेना कभी छोड़ोगे भी ?'

सबेरे उठने पर किसी कार्य में उसका मन न लगा और वह दिन

निकलते ही गाड़ी लेकर केदार बाबू के घर जा पहुँचा। नौकर से पूछने पर पता चला कि केदार बाबू तो अलीपुर की अदालत में गये हैं। लौटते-लौटते शायद तीन-चार घण्टे लग सकते हैं। सुरेश ने लौटने का उपक्रम करते हुए पूछा—'दोनों ही गये हैं?'

नौकर की समझ में न आया। सिर हिलाते हुए उसने उत्तर दिया—'यह मुझे ज्ञात नहीं।'

सुरेश असमञ्जस में पड़ गया कि केदार बाबू की अनुपस्थिति में अचला से मिलना उसके समाज में उचित है या नहीं। वैसे तो उसे अचला से ही काम था। थोड़ा सोचने के बाद उसने कहा—'शायद केदार बाबू जल्दी आ जायँ! मैं आध घण्टा उनकी प्रतीक्षा कर ही लूँ न।'

नौकर ने सुरेश को बरामदे में बिठा दिया और पूछा—'कहिए तो दीदी जी को बुला दूँ! वे तो घर पर ही हैं।' नौकर पिछले दिन ही देख चुका था कि अचला सुरेश के सामने निकलती है। सुरेश तो चाहता भी यही था, लेकिन अपने इस भाव को दबाते हुए उसने कहा—'बुला दो उन्हीं को, तब तक उन्हीं से बातें करूँ।'

नौकर चला गया और थोड़ी देर के बाद ही पट के आवरण को हटाते हुए अचला कक्ष में प्रविष्ट हुई। उसके आते ही सुरेश उठकर खड़ा हो गया और बोला—'मैंने महिम को बहुत समझाया कि वह घर जाने के पूर्व आपसे मिलता जाय, लेकिन वह न माना और घर चला गया।'

यह सुनते ही अचला का चेहरा उदास हो गया, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को संयत कर पास की एक चौकी पर सुरेश को बैठाते हुए मधुर स्वर में नमस्कार कर कहा—'घर से किसी की बीमारी की सूचना आई होगी या फिर कोई आवश्यक कार्य रहा होगा।'

अचला के नमस्कार से सुरेश लज्जित हो गया और उसने भी नमस्कार किया और अपने आवेश तथा उसके उत्तर में अचला का वही शान्त, सरल, गम्भीर व्यवहार देखकर वह झेंप गया। उसने अपने स्वर को संयत करने का प्रयास करते हुए कहा—'पर आप से कहा तो जा

सकता था। कैसी भी भयङ्कर परिस्थिति हो, पर दो मिनट का समय तो निकाला ही जा सकता था और फिर वह तो और भी जरूरी था, उसके आने का कोई ठीक नहीं, कब और कितने दिन में लौटे। घर पर भी उसके ऐसा कोई नहीं जिसके लिए उसे इस प्रकार आपसे बिना मिले भागकर जाना पड़े। कुछ भी हो, मैं तो कभी इस प्रकार नहीं जा सकता था।' अचला के मुख पर थोड़ी-सी हँसी खिल गई और उसने कहा—'आप यह सब इसीलिए कह या कर रहे हैं, क्योंकि अभी तक आपसे किसी ने प्रेम नहीं किया। यदि किया होता तो आप भी उसकी परवाह न करते। बिलकुल उन्हीं की तरह यह मैं जानती हूँ।'

सुरेश उत्तेजित हो उठा और उसने जोर से कुर्सी के हत्थे पर घूँसा मार कर कहा—'आपने मुझे पहचाना नहीं, पहचानतीं तो ऐसा कभी न कहतीं।'

अचला—'आगे पहचान सकूँगी। और यदि कोई प्रेम करने वाली होगी तो जान भी लूँगी। है न ठीक!'

सुरेश—'एक बार नहीं सौ बार। और फिर महिम की भाँति मैं कोई बात अपने मित्र से छिपा नहीं सकता। और न मेरी दृष्टि में यह उचित ही है।' कहता-कहता वह एक बारगी आवेश में आकर बोला—'आप तो कहती हैं कोई होगी तो परीक्षा ले लेगी, मगर बगैर आपके जाने-बूझे अब यह होना भी सम्भव नहीं। अब मैं आपको और महिम को एक समझता हूँ—सर्वदा अभिन्न।'

अचला के अधरों पर हँसी खेल उठी और उसने कहा—'यह तो आपकी परीक्षा के समय देखा जायगा, पर तब तक उसके लिए आपके मित्र को दोषी कैसे ठहराया जा सकता है?'

सुरेश की मुद्रा गम्भीर हो उठी और वह बोला—'मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि मेरी परीक्षा का दिन मेरे इस जीवन में आयेगा। अब जाने दीजिए उस विवाद को। क्या आप जानती हैं कि मैं सवेरे ही सवेरे आपके पास क्यों आया हूँ? मैं कल रात सो न सका—और आज

आकर यदि मैं अपने किये सभी अपराधों को आपके सामने स्वीकार नहीं करूँगा तो आज भी मुझे नींद नहीं आयेगी।'

अचला जानती थी कि सुरेश उसका कितना विरोधी है। वह चुपचाप सुरेश की बातें सुनती रही और सुरेश बराबर कहता रहा—'जब मैं यहाँ से कल घर लौटा तो घर जाकर वहाँ महिम को बैठा पाया। मैं एक बात पहले ही बता दूँ, सम्भवतः आप जानती भी हों कि मैं ब्रह्म-समाजियों का कट्टर विरोधी हूँ, और मैं उन्हें अच्छा नहीं समझता।'

अचला—'मैं जानती हूँ।'

सुरेश—'पर वह तभी तक जब तक आपको देखा नहीं था, यह न भूलिए। मैंने महिम से आपके यहाँ एक महीने तक न आने को कहा था। मालूम है आपको यह ?'

अचला—'नहीं ! मुझे नहीं मालूम। शायद आपने सोचा हो कि एक पुरुष के लिए किसी की याद भुला देने के लिए एक महीना पर्याप्त है।'

यह चोट सुरेश पर थी। पर वह उसे सह गया और बोला—'इन बातों में मैं हमेशा से बेवकूफ रहा हूँ। उसी तरह की यह भी एक बेवकूफी थी और यही नहीं; इससे भी भयङ्कर एक षडयन्त्र में आप लोगों के विरुद्ध करने जा रहा था। मैंने तो निश्चित कर लिया था कि इसी माह कहीं अन्यत्र महिम की शादी करा दूँगा। मैंने हर प्रकार से इस सम्बन्ध से उसे दूर रखने का सङ्कल्प कर लिया था। क्योंकि मैं किसी तरह यह सहन नहीं कर सकता था कि मेरा मित्र अपना समाज छोड़कर दूसरे समाज में चला जाय।'

अचला ने आह भरते हुए कहा—'अब आगे ?'

सुरेश ने अचला के म्लान मुख की ओर देखा और थोड़ा हँसते हुए कहा—'मैंने अब वह सङ्कल्प त्याग दिया है। अतः अब कोई डर की बात नहीं। आज तो मैं आपके सामने अपने सब अपराधों को स्वीकार कर लूँगा। मैंने उससे कल ही आपसे मिलने के लिए बहुत जोर डाला,

पहले मैंने उससे आप के यहाँ न आने को कहा था, उसे तो उसने मान लिया, पर जब कल आने को कहा तो उसने नहीं माना।'

अचला—'क्या उन्होंने आने का कोई कारण नहीं बताया ?'

सुरेश—'नहीं ! सिर्फ इतना ही कहा कि जरूरी काम है।' अचला ने फिर ठण्डी साँस छोड़ी और अपने ही आपसे गुनगुनायी—'हमेशा उनके मुँह से जरूरत-जरूरत सुनती आई हूँ। इसी जरूरत के लिए उनका सब कुछ है न जाने यह जरूरत कैसी है !'

सुरेश—'आप के लिए एक पत्र तो लिख सकता था !'

अचला—'पत्र तो वे कभी लिखते नहीं।'

सुरेश थोड़ी देर चुप रहा। फिर अचला की ओर एक दृष्टि डाली और कहा—'वह अपना सुख-दुःख, अच्छाई-बुराई अपने ही आप भोगना चाहता है। वह कभी नहीं बताता कि आखिर यह जरूरत कैसी है। उसकी इन आदतों से मुझे बचपन से ही कष्ट भोगना पड़ा है। उसने महीनों निराहार ही काटे हैं। पर मुझसे कभी कुछ नहीं लिया, जिसके कारण मेरा खुद का खाना-पहनना मुझे नहीं सुहाता था। वह निष्ठुर है, पत्थर-हृदय है, मेरा दिल यही कचोटता है कि जिसने मुझे आज तक कभी सुख नहीं दिया वह आपको कैसे सुखी रख सकता है !' कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। उन्हें पोंछते हुए हँसी से अपनी व्यथा को दबाने का स्वांग रचते हुए उसने फिर कहा—'महिम और मुझमें तीन छः का-सा मतभेद है। मुझसे सर्वथा उलटा। मैं ऊपर से जितना कठोर हूँ, मेरा दिल उतना ही कोमल है और महिम का दिल अत्यन्त कठोर। फिर भी हम दोनों अभिन्न मित्र हैं।'

अचला ने वैसे ही सर झुकाये हुए मधुर स्वर में उत्तर दिया—'और वह आज भी वैसे ही बनी है। मुझे सब मालूम है।'

सुरेश की आँखों के सम्मुख बचपन की सारी स्मृतियाँ साकार हो उठीं। दिल उमड़ने लगा। गला रुँध गया। वह बोला—'मुझे केवल आपसे यह भिक्षा चाहिए कि जब आप सब बातें जानती हैं तो आप

सम्बन्धी हैं जो प्लेग में जाओगे ?'

सुरेश—'सगे-सम्बन्धी ? इससे भी कहीं बढ़कर।' फिर महिम पर व्यंग कसते हुए कहा—'महिम, कल रात ही से निशीथ को मरणान्तक प्लेग हो गया, तुमको सूचित कर देना भी मेरा कर्त्तव्य था। क्या देखने न जाओगे ?'

महिम न समझ सका कि यह कौन निशीथ है, अतः पूछा—'निशीथ कौन ?'

'पूरा सेकेण्ड इयर उसके साथ काटा और अब पूछते हो कौन निशीथ ! इतनी जल्दी भूल गये ? क्यों न हो ! अब उसकी याद क्यों रहेगी; प्लेग जो ठहरा।' यह कह, सुरेश ने अचला की ओर व्यंग-भरा कटाक्ष फेंका।

महिम सुरेश के इस व्यङ्ग को चुपचाप पी गया और सरलता से पूछा—'भवानीपुर से जो आया करते थे, वे ही क्या ?'

सुरेश के स्वर में अब भी व्यङ्ग का तीखापन था। बोला—'जी ! वही निशीथ अपने बीच में दो-चार तो थे नहीं, जो इतनी देर पहचानने में लगी। मैंने पूछा कि उससे मिलने जाओगे या नहीं ?'

महिम अब निशीथ को पहचान सका। पूछा—'तो वे आज कल कहाँ हैं ?'

सुरेश—'भवानीपुर ! और कहाँ होगा। ऐसे समय उससे मिलना क्या तुम्हारा कर्तव्य नहीं ? मुझे तो जाना ही है। मैं तो डॉक्टर हूँ और यदि मित्रता न भुला दिये हो तो चाहो तो मेरे साथ-साथ चल सकते हो।' फिर केदार बाबू से सुरेश ने कहा—'आप इन्हें कुछ देर के लिए अवकाश देने की कृपा करें। आशा है आपकी बातें तो सम्भवतः समाप्त हो चुकी हैं।'

केदार बाबू यह न समझ सके कि सुरेश के ताने का लक्ष्य कौन था। समझने का प्रयास करती हुई उनकी आँखें एक बार महिम की ओर उठीं, और फिर अचला की ओर। केदार बाबू आजकल यह रहस्य न

समझ सके थे कि भावी जमाता सुरेश का स्वाभिमान किन-किन बातों से टूट जाता है? उनके मुख से कोई शब्द न निकल सका। महिम भी टुकर-टुकर देखता ही रहा, निःशब्द।

अचला का चेहरा रक्तिम हो गया था। हाथ की किताब मेज पर रख कर बोली—'इनकी वकालत की पुस्तकों में तो प्लेग के इलाज के सम्बन्ध में कुछ लिखा नहीं, फिर इनका जाना किस लिए जरूरी है? तुमने तो डॉक्टरी पढ़ी है, तुम्हें तो जाना ही चाहिए।'

सुरेश को अचला से इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी। वह उसके उत्तर को सुनकर स्तब्ध रह गया। क्षण भर चुप रह कर बोला—'मित्रता मेरे लिए प्राणों से भी बढ़कर है। मैं तो उसकी बीमारी में देख-भाल करने जा रहा हूँ। डॉक्टरी के लिए नहीं। डॉक्टर तो वहाँ बहुत हैं।'

अचला के ओठों पर हँसी आ गई। पर उसमें कठोरता थी। वह बोली—'ये वहाँ हर्गिज नहीं जा सकते। इनके दिल में मित्र के प्रति उतनी उत्कट कर्तव्य भावना न हो तो, मैं नहीं समझती कि वह कोई लज्जा की बात है। और फिर तुम्हारी तरह सभी महान तो हो नहीं सकते।'

सुरेश के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और केदार बाबू का हृदय शङ्काकुल हो उठा। उन्होंने सहमते हुए कहा—'अचला तू यह सब क्या कह रही है! सुरेश—निशीथ—जैसे भला—ठीक तो है—इन जैसे—

अचला केदार बाबू की बात काटकर बोल उठी—'किसी और की जान खतरे में डालना क्या भला है? आप सहर्ष जा सकते हैं, आप डॉक्टर जो ठहरे। और फिर पहले तो ये निशीथ बाबू को पहचान भी तो न सके।'

जब कभी किसी बात से सुरेश के हृदय-तन्त्री के कोमल तार झन्झना उठते हैं तो फिर भावावेश में वह अपने को भूल जाता है। वेश में उसने जोर से मुक्का मारा और तीव्र स्वर में जो मन में आया कहने लगा—'प्राणों का मोह नहीं। इसी कृतघ्नी से पूछ देखो—अपने प्राण को जोखिम में डालकर मरने से इसकी रक्षा की थी या नहीं?

कायरता कैसी होती है मैंने नहीं जाना।'

अचला ने कहा—'हाँ! कृतघ्नी क्यों न हों ये। क्योंकि जब जिसे जो चाहा बचाया और इच्छा होने पर उसे मारा भी जा सकता है?'

केदार बाबू भौंचक्के से बीच-बचाव करते हुए बोले—'यह सब क्या मचा रक्खा है? शान्त हो अचला, तुम भी चुप रहो सुरेश।'

सुरेश की आँखें लाल हो गई थीं। केदार बाबू की ओर देखकर बोला—'देखा आपने केदार बाबू! मेरे प्राणों का कोई मूल्य ही नहीं। इस दुनिया में केवल महिम ही अनमोल इन्सान है। मेरे लिए प्लेग में जाना कोई माने ही नहीं रखता।'

अचला अपनी व्यथा के आँसुओं को न रोक सकी, रोती हुई बोली—'जिनको रोकने का मेरा अधिकार है उन्हें कभी नहीं जाने दे सकती। इन्हें मैं नहीं रोक सकती। इनकी जान इनकी है; चाहें गवाँ भी सकते हैं!'—यह कहकर अचला जाने लगी तो केदार बाबू ने बिगड़ते हुए कहा—'अचला! किधर चली?'

अचला खड़ी हो गई और सहमती हुई बोली—'मैं जिसे साँस रहते नहीं स्वीकार कर सकती, उसी की बात को लेकर तुम लोग मुझे रोज कलपाते रहते हो। अब मेरे लिए यह दिन-रात व्यथा-दुःख सहना असम्भव हो रहा है।' आँखों में छलकते हुए आँसूओं को रोकती हुई अचला बाहर चली गई। केदार बाबू यह काण्ड हतबुद्धि से देखते ही रह गये। अन्त में बोले—'वाह! अजीब सी बात रही। बचपन! निरा बचपन!'

बारहवाँ परिच्छेद

उस घटना के एक माह बाद—

उस दिन सुरेश का अशिष्ट व्यवहार वास्तव में केदार बाबू को बुरा लगा; इस कारण ही नहीं वरन् उस दिन से जो वह गया, तो आज तक पता ही न लगा, वह कहाँ है। सिर्फ इतना ही जाना जा सका कि वह कहीं पश्चिम में गया है। किसी को कुछ पता नहीं कि वह वहाँ से कब

तक लौटेगा। केदार बाबू अचला का ब्याह महिम से करने को सहमत हो गये और ब्याह की तिथि भी निश्चित हो गई—अगला सोमवार।

अचला के आँसुओं की बाढ़ को किसी तरह रोक, बाहर चले जाने के पश्चात् जब उस दिन म्लानमुख तीनों चुपचाप बैठे हुए थे तब भी सुरेश ने नीरवता को भङ्ग करते हुए कहा था—'मैं आपके सामने ही आपकी कन्या से कुछ बात करना चाहता हूँ, यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो?'

केदार बाबू की वाणी में व्यग्रता थी, बोले—'मुझे क्या ऐतराज हो सकता है, भला अजीब बात करते हो सुरेश। तुम लोगों का बचपन नहीं गया अभी···।'

सुरेश—बुला दीजिए एक बार, मेरे पास अब और अधिक समय नहीं है।'

सुरेश की वाणी में अजीब उद्विग्नता थी। उसे अनुभव कर केदार बाबू शङ्कित हो उठे। ऊपर से जबरन हँसी हँसकर उन्होंने अपने पूर्व कथन की आवृत्ति की—तुम सब जने लड़कपन की बातें करते हो। भाई, उसे तनिक स्वस्थ-चित्त तो हो लेने दो। तुम समझते नहीं सुरेश। आखिर लड़कियों का दिल ही जो ठहरा। प्लेग का नाम सुना नहीं, की उनका दिल घबड़ाने लगता है।'

सुरेश में इतनी ताब न थी कि वह इस प्रकार का विश्लेषण सुन सके, बोला—'मेरे पास समय नहीं किसी की प्रतीक्षा करने का।'

केदार बाबू ने कहा—'अच्छा भाई अच्छा!—वहाँ कौन है रे?'—कहते हुए महिम की ओर तिरछी निगाहों से देखा। महिम उन्हें देख, उठकर खड़ा हो गया; और नमस्कार कर चला गया।

सूरज की अरुणिम किरणों ने कमरे के पश्चिम ओर की खिड़की और दरवाजों से कमरे में आ अपनी अरुणिम आभा बिखेर दी थी। केदार बाबू स्वयं जाकर अचला को कमरे में बुला लाये। सूरज की अरुणिम किरणों ने अचला के सुन्दर गठे बदन पर पड़ उसे निखार कर स्वाभाविक लालिमा प्रदान कर और भी सुन्दर बना दिया था जिसे देखते ही सुरेश एक बार

फिर विमोहित हो रोमांच अनुभव करने लगा। लेकिन तुरन्त वह सँभल गया; किन्तु उसकी आँखें सुन्दर मुख पर से न हटीं। सूरज की रक्तिम किरणें अचला के सामने की दीवाल से टकराकर उसके चेहरे पर पड़ रही थीं। सुरेश को उसकी मुखाभा जड़वत् एवम् निष्ठुर जान पड़ी; और उसे जान पड़ा मानो किसी तीव्र तिरस्कार-भाव ने अचला के मुख की नसों को तान मुख-मुद्रा को अत्यन्त कठोर बना दिया है। एकाएक केदार बाबू ने गहरी साँस छोड़ी, जिससे सुरेश चौंक कर सीधा बैठ गया।

केदार बाबू ने अपने पूर्वकथन की पुनरावृत्ति की—'मेरी तो अक्ल काम नहीं देती, किससे क्या कहूँ, किससे क्या न कहूँ, यह सब तुम लोगों का है।'

सुरेश ने स्वर में पूरी गम्भीरता लाकर अचला से कहा—'क्या वही अन्तिम निर्णय है जो आप अभी कह गई थीं?'

अचला ने सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—'जी हाँ!'

सुरेश—'इसमें क्या अब किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना नहीं है?'

अचला ने उसी दृढ़ता से सिर हिलाते हुए उत्तर दिया—'जी नहीं।'

सुरेश का चेहरा रक्त की तेजी से लाल हो उठा, पर अपने स्वर में उसने व्यग्रता न आने दी। बोला—'समझ में तो मेरे तभी आ गया था जब आपने अपने नजदीक मेरे प्राणों की कोई कीमत न समझी।' व्यथा से उसका हृदय दग्ध हो रहा था, थोड़ा शान्त रह कर फिर बोला—एक बात का उत्तर दीजिए—क्या आपके चक्कर में पड़कर और भी कुछ लोग धोखा खा चुके हैं अथवा मैं पहला ही मूँजी फँसा हूँ?'

सुरेश की यह बात सुन अचला की आँखें विस्मय से और व्यथा के आवेश से फटी की फटी रह गईं। सुरेश केदार बाबू की तरफ देख कर बोला—'विदेशों में तो बाप-बेटी का मिल कर किसी को फँसाना नया नहीं, आम बात है। पर केदार बाबू आपको किसी न किसी दिन जेल की हवा खानी होगी, सो मैं आप को सचेत किये देता हूँ।'

केदार बाबू चीख कर बोले—'सुरेश, यह सब क्या बकते हो !'

सुरेश के स्वर की कठोरता में तनिक भी लोच न आई, वह बोला—'रहने भी दीजिए। नाटक चल लिया बहुत दिन, इसमें कोई नवीनता शेष नहीं रही। अब मैं इसके भुलावे में नहीं आने का। रुपये जो डूबे सो डूबे, पर अनुभव भी कम नहीं किया। अब तो इसका अन्त ही जरूरी है।'

अचला रो दी, बोली—'बाबूजी ! क्यों लिये इनसे रुपये तुमने ?'

केदार बाबू ने आवेश में कहा—'मैं हैण्डनोट लिख देता हूँ अभी'—और किसी सफेद कागज के टुकड़े के लिए इधर-उधर हाथ मारने लगे, अन्त में एक पुराना अखबार ही उठा लिया।

सुरेश—'जाने भी दीजिए, क्या होगा अब लिखा-पढ़ी करने से। आप ने दिये हमने पाये। मैं इन जरा-सी रुपुल्लियों के लिए आप पर दावा करने नहीं जाऊँगा।'

वैसे तो कई बार केदार बाबू के ओठ उत्तर के लिए हिले, पर उनसे बोली न निकल सकी। सुरेश अचला की तरफ घूरता ही रहा। उसकी कठोरता में अचला के आँसुओं से भी लोच न आ पाई, बल्कि अन्तरदाह और भी तीव्र हो उठा। वह बोला—'अचला ! आखिर तुम्हें किस बात पर घमण्ड है ! न सूरत, न सीरत, अजीब भद्दी सी कुरूपा। सूखी-सूखी झंखड़ देह। मैं तुम्हारी देह पर मोहित था ! कभी भूल से भी गुमान न करना।'

पिता के सामने इस बेशर्मी के साथ किये गये अपने अपमान से व्यथित होकर अचला वहीं कोच पर आँखें बन्द कर औंधी पड़ गई।

सुरेश खड़ा होता हुआ बोला—'इस घर में जब मैंने कदम रखा था, तभी ब्रह्म-समाजियों के प्रति—उन ब्रह्म-समाजियों के प्रति जिनकी परछाईं से मुझे घृणा थी, जिनका संसर्ग मैं किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता था—मेरी सारी घृणा, विद्वेष और मेरे अपने संस्कार तक मिट गये; मुझे तभी समझ लेना चाहिए था कि यह स्वाभाविक नहीं, इसमें कुछ जादू है। खैर, जो होना था सो तो हो गया। पर अब आपकी करतूतों ने मुझे सजग कर दिया, इसका धन्यवाद मैं आप लोगों को दिये

बिना नहीं रह सकता। धन्यवाद !'

वैसे ही रोते हुए कण्ठ से अचला बोली—हमें घर-घर मारा-मारा क्यों न फिरना पड़े, पर बाबूजी ! इनके जितने रुपये लिये हों सब वापस कर दीजिए, और कह दीजिए कि चुप रहें।'

सुरेश—'वह भी नसीब न होगा। उस दिन फिर मुझे याद कर लेना,—कहता हुआ वह तेजी से उत्तर का इन्तजार किये बिना ही बाहर चला गया। सुरेश के जाने के बाद कुछ देर शान्त रहने के बाद केदार बाबू बोले—'यह तो बड़ा ही विकट आदमी निकला। यह जानता होता तो क्या घर में घुसने देता इसे ?'

केदार बाबू की बात अचला ने सुनी तो वैसी ही पड़ी रोती रही अश्रुधार से आँचल भिगोती हुई। केदार बाबू भी वहीं पास ही कुर्सी पर बैठे थे, पर उसे धीरज बँधाने का मुख से एक शब्द न निकल सका। इसी तरह से दिन छिप गया, नौकर आकर बत्ती जलाने लगा; तब अचला चुपचाप उठकर कमरे के बाहर चली गई।

महिम इस घटना से अनजान बना रहा। केदार बाबू ने जब उसके साथ अचला का ब्याह कर देने की स्वीकृति दे दी तो उसे विस्मय तो अत्यधिक हुआ, उसके दिल में अनेक विचार भी उठे पर वह तब यह न जान पाया कि यहाँ उसके लिए जो स्थान रिक्त हुआ है उसका मुख्य कारण भी अपने असंयत व्यवहार के कारण उसका मित्र सुरेश ही है। उसका हृदय अचला के प्रति प्रेम और श्रद्धा से भर उठा। सरलता हमेशा से उसका विशेष गुण रहा है। भावावेश प्रदर्शन जानता ही न था। यदि कभी प्रयत्न करता भी तो वह अस्वाभाविक हो विकृत हो जाता। आज भी जब केदार बाबू ने विवाह की बात छेड़ी तब वह बात स्वयं ही तय की, यहाँ तक कि तारीख भी। तब वह यह बात कर घर वापस जाने लगा तो अचला को साधारण तौर पर किया जाने वाला नमस्कार भी न कर सका।

धीरे-धीरे ब्याह का दिन करीब आ गया।

ब्याह में किसी प्रकार धूम-धाम न होगी, पहले ही तय हो चुका

था। सब तैयारी चुपचाप कर ली गई और शादी के तीन दिन शेष रह गये थे।

हर रोज की तरह साधारण समय पर ही केदार बाबू बैठे चाय पी रहे थे। अचला पास ही कोच पर बैठी कुछ काढ़ रही थी। विपत्तियों का अध्याय समाप्त होने के बाद परिवार का जीवन शान्ति से कट रहा था, इसी कारण उनके क्लान्त चेहरों पर शान्ति की स्निग्ध आभा झलक रही थी। पर सुरेश के झगड़ा कर चले जाने के बाद अनेक समस्याओं ने केदार बाबू के मन को व्यथित कर रखा था। वह लौट कर भी क्या फायदा खड़ा कर सकता है—यही शङ्कायें उनको दुखित करती रहती थीं। और अन्त तक बार-बार सोचने के बाद भी कि सुरेश के रुपयों के लिए वे हैण्डनोट लिखें या उसके अदा करने का भार अब महिम पर छोड़ दें—कुछ निश्चित ही नहीं कर पाये। वे यह भी अनुभव नहीं करते थे कि अभी उसे चुकाना ही पड़ेगा, पर यह वे अच्छी तरह अनुभव करते थे कि सुरेश का पता नहीं, क्या विचार कर अथवा अचला की तरह अपने विचारों की धुन में मस्त रहने से समस्या का निराकरण न होगा। वे समझते थे कि हताश प्रेमी सुरेश की दशा 'मरता क्या न करता, की-सी होगी। वह प्रतिशोध के उन्माद में लौट कर अपनी अतृप्ति की सन्तुष्टि के लिए किसी प्रकार से भी प्रतिशोध ले सकता है? रुपये भी उसने चेक से दिये हैं, जिनकी स्वीकृति से किसी प्रकार भी अदालत में इन्कार नहीं किया जा सकता। लिखा-पढ़ी न हो तो क्या हुआ। अचला से इस विषय में मशविरा लेना एक आफत मोल लेना था। सुरेश का नाम सुनते ही उसकी साँस खुश्क होने लगती थी। उनका हृदय तो समस्याओं के मारे उद्वेलित था और उधर अचला अपने दिल का भार हलका समझ स्वस्थ-चित्त हो गई थी। उसकी शान्त मुख-मुद्रा को देखकर केदार बाबू में प्रतिहिंसा की भावना ने जड़ पकड़ ली। वे सोचने लगे—अचला ही उनके सारे दुःखों की जड़ है। सुरेश के साथ इसका कितना अच्छा इन्तजाम हो गया था और आगे और भी न जाने क्या-क्या होता।

पर कलह की जड़ यही है। लाख समझाने पर भी उसने अपने आप ही सारा बना-बनाया खेल बिगाड़ डाला। केदार बाबू को प्रतिहिंसा की भावना ने आगे बढ़ उसे कोसना शुरू कर दिया। वे चाहने लगे कि अचला अपनी करनी का फल भोगे और तब उसे कहना पड़े—पिताजी आपकी आज्ञा न मानने का फल भोग रही हूँ।—आज भी उनकी नजर में सुरेश महिम से अच्छा था, उसे खो देना उन्हें अखर रहा था। अब उनका उसके प्रति क्रोध भी नहीं रहा था और यदि आज भी उसे दुबारा अपना बनाने का जरिया उनकी समझ में आता तो निश्चय ही उसे करने को उद्यत हो जाते। इस ब्याह को तोड़ने में उन्हें जरा भी हिचकिचाहट न होती।

अचला ने काढ़ना जारी रखते हुए ही पूछा—'आपने सुरेश के सम्बन्ध की सूचना पढ़ी बाबू जी ?'

उसके मुँह से सुरेश का नाम सुनकर केदार बाबू चौंक पड़े। उन्हें विश्वास ही न हुआ एक बार कि अचला कह रही है। अखबार मेज पर से उठा अचला ने उसी वाक्य को फिर दुहराया। केदार बाबू उस खबर को न देख पाये थे। हालाँ कि सारा अखबार एक बार वे स्वयं सरसरी तौर पर पढ़ गये थे। उनकी मनःस्थिति इस योग्य ही न थी कि किसी भी समाचार को ठीक से पढ़ सकते। पूछा—'सुरेश कौन ?'

'संभवतः अपने ही सुरेश बाबू।' अखबार में उस खबर की तलाश करते हुए अचला ने कहा।

केदार बाबू की आँखें विस्मय से फट गई थीं, व्यग्र हो बोले—'अपने सुरेश के सम्बन्ध में ! कहाँ है वह ? उसके सम्बन्ध में क्या समाचार है ?'

अचला ने अखबार उनके हाथ पर रख समाचार पर संकेत कर दिया। बोली—'यह है बाबू जी। इसे पढ़ लीजिए।'

जेब में चश्मा तलाश करते हुए और जब न मिला तब वे बोले—'चश्मा तो मैं सम्भवतः दूसरे कमरे में छोड़ आया, तुम ही पढ़ कर

सुना दो।'

फैजाबाद से किसी संवाददाता की खबर थी। उसने पढ़ा—'नगर प्लेग से पहले संत्रस्त हो रहा था। उस पर एक गरीब मुहल्ले में आग लग गई। सुरेश नाम के एक सज्जन यहाँ पधारे हैं जो बीमारी में धन, दवा और खुद अपनी मेहनत से बीमारों की सेवा कर रहे हैं। उनको अपनी जान की भी परवाह नहीं है। जब उन्होंने सुना, कि एक गरीब मुहल्ले में आग लग गई है, और रुग्ण स्त्री आग की भयङ्कर लपटों में फँसी रह गई है; कोई भी उसकी रक्षा करने वाला नहीं है; तो स्वयं उसकी रक्षा करने के लिए वह साहसी युवक अपने प्राणों का तनिक भी मोह न कर आग की लपटों को चीरता हुआ घुस गया उसकी रक्षा के लिए। और ···।'

समाचार सुनकर केदार बाबू निस्तब्ध बैठे रहे। थोड़ी देर बाद लम्बी साँस खींच बोले—'क्या ठीक, कि यह अपना ही सुरेश है?'

अचला—'यह अपने ही सुरेश होंगे बाबू जी।'

अचला के मुँह से सुरेश के लिए अपने ही शब्द को सुनकर केदार बाबू अवाक् से हो गये। उन्होंने सोचा कि अचला के मुँह से निकला 'अपने ही' शब्द सम्भवतः सुरेश के प्रति विश्वासभावना का द्योतक है। और मरता आदमी जैसे जरा सा ही सहारा पा खिल उठता है, केदार बाबू भी 'अपने ही' शब्द के सहारे खिल उठे और वे शब्द अमूल्य जान पड़े, वे क्षण भर में ही न जाने किन-किन विचारों के ताने-बाने बुन गये, उनके दिमाग में आज इतने दिनों के पश्चात् आशा-आनन्द की लहर मुख पर दौड़ गई। बोले—'तुम्हें क्या ऐसा भान नहीं होता ···?'

अचला, पिता को एकाएक चुप होते देख उनकी ओर देखकर बोली—'क्या भान नहीं होता बाबू जी?'

केदार बाबू ने पूरी होशियारी से बात आगे बढ़ानी चाही। बोले—'यह कि सुरेश अपने किये पर पछता रहा है।'

अचला ने भी पिता के कथन की दाद दी, बोली—'सोचती तो मैं

[illegible]

[illegible]

[illegible]

नहीं आदमी ही है। एक समय में उसने जो अवांछनीय आवेश प्रदर्शन किया था, वही उसका स्थायी दोष हो जाय, ऐसा तो कोई कारण नहीं। और चाहे कोई कुछ भी समझे, पर हम ऐसा नहीं समझ सकते। क्यों अचला, ठीक है न ?—कहने को तो वैसे बहुत से बड़े आदमी होते हैं, पर कौन किसी के लिए इतना बड़ा त्याग करता है ! जरा फिर से तो पढ़ना क्या लिखा है—आग की भयङ्कर लपटों से एक स्त्री को बचा लाया गजब ! निश्चय देव तुल्य है, कह कर एक लम्बी आह भरी।

अचला ने अब भी कोई उत्तर नहीं दिया, सिर झुकाये बैठी रही।

केदार बाबू थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर बोले—'हमें उसकी खबर लेने के लिए तार भेजना चाहिए। उसके इस दुःख के समय भी हमें उससे नाराज रहना क्या उचित है ?'

अचला ने अब सिर उठाया और उत्तर दिया—'हमको उनका पता तो मालूम ही नहीं।'

केदार बाबू—'फैजाबाद में ऐसा कौन होगा जो उसे न जानता हो ? क्रोध तो मुझे उस पर बहुत आया था। पर अब उसकी तरफ से मेरा दिल साफ है। मैं उसकी कुशलता जानने के लिए अब बेचैन हूँ। तुम उसे अभी एक तार भेज दो।'

अचला ज्योंही—'अभी भेजती हूँ' कहकर तार का फारम लेने के लिए बाहर बढ़ी तो देखती क्या है कि सुरेश सामने खड़ा है।

अचला ने सोचा भी न था कि अन्तरदाह सुरेश को व्यथित कर इतना शीघ्र उसके चेहरे को इतना विकृत कर देगा। उस पर नजर पड़ते ही विस्मय से स्तब्ध रह गई। थोड़ी देर तक तो दोनों में से कोई भी न बोल सका। बाद में अचला ही पहले बोली—'फैजाबाद से कब लौट आये ?—भीतर आइए, बाबू जी यहीं बैठे हैं। और तो सब खैरियत है न ?'

उसके स्वर में कितना स्नेह माधुर्य्य था इसका अनुभव अचला स्वयं न लगा सकी। वह तो सरल स्वाभाविक ढङ्ग से कह गई, किन्तु सुरेश

की सुप्त प्रेम-भावना जाग्रत हो उठी और वह संज्ञाहीन-सा होने लगा। पर गत दिनों के संयम को उसने विफल न होने दिया और उसने अपने को प्रेमावेश में या अचला के सामने घुटने टेक अपने विगत व्यवहार के लिए क्षमा याचना न कर—सँभाल और सरल गम्भीरतापूर्वक बोला—'आपने कैसे जाना कि मैं फैजाबाद गया हूँ?'

अचला ने स्नेहपूरित मधुर स्वर में कहा—'बाबू जी ने अभी हाल में अखबार में पढ़कर आपको तार देने को कहा ही था।—वे आपके लिए बहुत बेचैन हैं। आइए, उनसे मिलिए!—उसी क्षण सुरेश ने रोक कर कहा—'बाबू जी मुझे क्षमा प्रदान कर दें यह तो सम्भव है, पर तुमने मुझे क्षमा कर दिया अचला! यह कैसे?'

अचला के ओठों पर स्निग्ध मुस्कान खेल उठी, बोली—'मैं तो आपसे एक दिन के लिए भी नाराज़ नहीं हुई, जो मुझे आपको क्षमा करने की जरूरत पड़ती। आइए, अब भीतर चलिए।'

तेरहवाँ परिच्छेद

केदार बाबू ने सुरेश से यह सुना कि महिम के पत्र से उसके विवाह के सम्बन्ध में पता चला तो वहाँ से एकदम चला आया। तब उनका मुँह मारे शर्म के झुक गया, पर अचला का चेहरा चञ्चल रहा भावहीन।

सुरेश—'वैसे तो मुझे अस्पताल में कुछ एक दिन और भी रहना था, पर महिम के विवाह में भी आना जरूरी था, अतः चला आया।'

केदार बाबू ने व्यग्र होकर पूछा—'अस्पताल में क्यों रहे? क्या कुछ हो गया था?'

सुरेश—'वैसे ही! तबीयत जरा ठीक नहीं थी।'

केदार बाबू—'परमात्मा की कृपा है। मैंने जब अचला के मुँह से अखबार में छपी तुम्हारे सम्बन्ध की सनसनीपूर्ण घटना सुनी तो मेरी आँखों में खुशी के और तुम्हारे प्रति गर्व के आँसू आ गये। ईश्वर! तेरी ही कृपा से मुझे ऐसे व्यक्ति की मैत्री का सौभाग्य प्राप्त हुआ।'—कह उन्होंने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन हेतु अपने दोनों हाथ जोड़ लिये।

फिर थोड़ा ठहरकर बोले—'पर अपनी जान को बार-बार इस प्रकार खतरे में डालना ठीक नहीं। यह मैं जरूर कहूँगा। एक स्त्री की रक्षा करने में तुम्हारे जैसे महान व्यक्ति की जान चली जाती तो संसार का बड़ा भारी नुकसान हो जाता।'

सुरेश ने कहा—'ऐसा कौन सा बड़ा नुकसान हो जाता'—कहते हुए शर्माजी हँसी हँसकर अचला की तरफ आँखें कीं तो अचला को टकटकी लगाये अपनी ही ओर ताकते पाया। ज्योंहीं उसने उधर देखा, अचला ने आँखें नीची कर लीं।

केदार बाबू—'इससे अपने आत्मीयजनों को दुःख पहुँचता है। ऐसी बात नहीं कहते।'

सुरेश हँसता हुआ बोला—'मेरा ऐसा है ही कौन जिसे दुःख होता। हाँ! एक बुआ जरूर हैं जिन्हें दुःख अवश्य होता।'

सुरेश ने यह बात हँसते हुए कही थी फिर भी उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर केदार बाबू की आँखें छलछला उठीं। बोले—'बुआ जी को ही नहीं इस बूढ़े को भी कम दुख न होता बेटा। तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। अब जो हुआ सो हुआ; पर अब मेरे जीते जी अपने को ऐसे खतरे में मत डालना। यही मेरा कहना है बेटा तुमसे।'

रात के दस बज चुके थे। सुरेश ने घर जाने को उद्यत हो हाथ जोड़ते हुए कहा—'वैसे तो महिम का विवाह भी मेरे ही घर से होगा। फिर भी मुझ पापी के घर को कल रात आप अपनी चरण-रज प्रदान कीजिएगा, यह मेरी आपसे प्रार्थना है। नहीं तो आपने मुझे क्षमा कर दिया है—मुझे विश्वास कैसे हो सकेगा। इतनी कृपा तो करेंगे न आप?' यह कह झुककर केदार बाबू की चरण-धूलि लेनी चाही। केदार बाबू ने सहसा उसे ऐसा करने से हाथ से रोकना चाहा कि सम्भवतः उनके हाथ से ही उसकी पीठ पर जले घाव पर की पट्टी खिसक गई और उसके मुँह से एक वेदना भरी आह निकल गई। जले घाव को देखते ही केदार बाबू सहसा

चौंक पड़े। अचला ने लपक कर पट्टी सँभाली, बोली—'मैं सँभाल देती हूँ। घबराइए मत!'—कह सुरेश को कोच पर बिठा उसकी पट्टी ठीक करने लगी।

केदार बाबू घबरा कर धम से कुर्सी पर गिर पड़े। थोड़ी देर तक वे बोल ही न सके। अचला पट्टी ठीक कर रही थी कि उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह निकली। सुरेश यह सब कुछ न देख सका। उसका ध्यान तो था अपनी प्रेमिका के कोमल शीतल करों के स्पर्श आनन्दानुभव में।

आँसुओं की बाढ़ को ज्यों-त्यों कर थाम अचला सानुग्रह बोली—'आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी मेरे सामने।

सुरेश जैसे सोते से जागा हो। बोला—'क्या?'

अचला—'अब आगे आप, अपने प्राण के साथ इस प्रकार खिलवाड़ न करेंगे।'

सुरेश—'अचला! वह मैं जान बूझकर तो करता नहीं। यह तो मेरा छुटपन से ही स्वभाव रहा है कि दूसरों की रक्षा में मैं अपने को भूल जाता हूँ।'

अचला ने फिर कुछ न कहा, निकलती आह को भी दबा लिया। सुरेश ने महसूस किया इस बात को। जब पट्टी बँध चुकी तब सुरेश उठता हुआ बोला—'तो फिर कल आपको मेरे यहाँ पधारना होगा।'—उसका स्वर साधा हुआ था, पर आँखें जरूर भर आईं।

अचला ने सिर नीचे झुकाये हुए—'अच्छा।'—कह स्वीकृति दी।

सुरेश ने हँसी लाते हुए कहा—'फिर देखिए कहीं निराश न कीजिएगा।'—कह मूक अनुरोध कर धीरे-धीरे चला गया।

दूसरे दिन उचित समय पर सुरेश की गाड़ी आ गई। केदार बाबू तैयार होकर अचला के साथ उस पर बैठ सुरेश के यहाँ चल दिये।

केदार बाबू जानते थे कि सुरेश धनवान है, पर ठीक तौर से नहीं। लेकिन उन्होंने आज जाना सुरेश की कोठी के हाते में घुसते ही।

सुरेश ने बढ़कर दोनों का स्वागत किया। बोला—'महिम को मैं कल दोपहर से पहले इस घर में आने पर राजी करने में आज भी विफल हुआ।'

केदार बाबू निरुत्तर रहे। जब तीनों बैठक में पहुँचे तो एक अधेड़ स्त्री अचला को अपने साथ अन्दर लिवा ले गई। उसे अपने पास बिठा, अपना परिचय देती हुई बोली—'मैं महिम की बुआ हूँ, इस नाते तुम्हारी सास लगी।'

अचला ने उनके पैर छुए और पूछा—'आप यहाँ कब आ गईं ?'

अचला को नहीं मालूम था कि महिम के कोई बुआ है। बुआ ने अचला के इस भाव का अनुभव किया और हँसती हुई बोली—'मैं सुरेश की बुआ हूँ। महिम-सुरेश दो नहीं, एक ही हैं, अतः मैं महिम की भी बुआ लगी।'

बुआ का स्वर इतना कोमल, सरल-स्वाभाविक था, उसमें इतनी आत्मीयता थी कि जिससे अचला का हृदय प्रेम-विह्वल हो उठा।

उसने कभी माँ का प्रेम नहीं जाना था। माँ के स्थान पर घर में कोई अन्य स्त्री न थी जिसका प्यार उसकी पूर्ति कर सका होता। होश सँभालते ही उसने पिता का ही प्यार अनुभव किया था और उन्हीं के लाड़-प्यार में पाल-पोस कर इतनी बड़ी हुई थी। बुआ का प्यार व्यवहार देख उसने जाना कि माँ के प्यार के बिना उसके हृदय में कितना सूनापन था। बुआ द्वारा उस 'बहू' प्यारमय मधुर सम्बोधन से पहले तो वह शरमा गई, पर देर तक उसके हृदतल पर वह गौरवमय प्यारा सम्बोधन हिलकोरें मारता रहा।

थोड़ी देर में ही दोनों घुलमिल गईं। अचला ने शरमाते हुए पूछा—'बुआ जी, आपको मेरे ब्रह्मसमाजी होने से अपने पास बैठाने में घृणा नहीं हुई ?'

बुआ ने उसकी ठुड्डी में अँगुली डाल उन्हें चूमते हुए कहा—'घृणा की क्या बात है इसमें बेटी ! हमारी बहू का धर्म दूसरा है इसी कारण

हम उससे घृणा करें ? हम हिन्दू घर की स्त्रियाँ ।'

अचला सकुचा गई । बोली—'मैंने सिर्फ सुना था कि आप लोग हम लोगों से घृणा करती हैं । कभी किसी अन्य समाज की स्त्री से सम्पर्क का अवसर नहीं प्राप्त हुआ, इसी कारण ज्ञान नहीं था । क्षमा कीजिएगा । मैंने तो यह भी सुना था कि पास उठने-बैठने पर उन्हें नहाना पड़ता है ।'

बुआ जी—'यह घृणा नहीं बेटी, एक रिवाज बन गया है । हमारे बहुत से ऐसे रिवाज हैं जिन्हें ऊपर से देखने पर बहुतों को यही धोखा हो जाता है कि हम उनसे घृणा करती हैं; पर वास्तव में हमें किसी से घृणा नहीं । मेरे अपने ही घर में आज भी मेरी ताई जी हैं 'बागदी' जाति की । मुझे उनसे बड़ा स्नेह है ।'

थोड़ा रुककर फिर बोली—'अच्छा यह तो बता कि तुझे यह विचार आया कैसे ? मुझसे आज मिलकर या सुरेश से जान कर ?'

सुरेश का नाम आते ही अचला के चेहरे पर शर्म की रेखाएँ खिच गईं, बोली—'उन्होंने भी एक बार काफी दिन हुए तब कहा था ।'

बुआ जी—'पहले उसने ब्रह्मसमाजियों से बिना मिले ही यह धारणा बना ली थी कि वे घृणा के पात्र हैं । महिम से भी इसी बात पर ही न जाने कई बार झगड़ा होते होते बचा । किसी के सम्बन्ध में जब जो उसने सोचा उसका राग अलापा, अब तुम्हीं अपने बारे में देख कर समझ लो । जब से तुम लोगों से उसका परिचय हुआ है बस तुम्हारा राग अलापता रहता है । मैं तो उसकी रग-रग जानती हूँ । स्वभाव ही ऐसा है उसका । मेरे ही हाथों तो पाल-पोस कर इतना बड़ा हुआ है । मैं खूब जानती हूँ कि उसका ऐसा दिल नहीं कि किसी से घृणा कर सके ।' कहते-कहते ही बीच में जब उनकी आँख अचला पर गई तो वे सहसा रुक गईं । अचला सही-सही नहीं जानती थी कि बुआ जी को उसके सम्बन्ध में क्या-क्या ज्ञात है । पर बुआ जी की बातों से उसे पक्का सन्देह होने लगा कि सम्भवतः बुआ जी को कुछ तो मालूम हो ही गया है । थोड़ी देर तक

दोनों मूक रहीं। बाद में अपनी शर्म को छिपाते हुए अचला बोली—'तो फिर सुरेश का पालन-पोषण आप ही ने किया है?'

बुआ जी उत्फुल्लमना हो बोलीं—'जब उसकी उमर सिर्फ दो वर्ष की ही थी, तभी उसके माँ-बाप उसे मेरे सहारे छोड़कर चल बसे। तब से मैंने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। तुमसे क्या कहूँ। किसी की मुसीबत में सहायता करने में उसे अपनी जान की परवाह नहीं रहती।'

अचला—'आपने फैज़ाबाद की घटना तो सुन ली होगी?'

बुआ जी—'सुन ली बेटी! मैं तो ईश्वर से सदैव यही मनाती रहती हूँ कि कहीं कोई दुर्दिन दिखा कलङ्क मत लगा देना। स्नेहमय मुख को देखकर रुआँसी हो उठी। बोली—'आप उन्हें ऐसा करने से रोक क्यों नहीं देतीं!'

बुआ जी—'मेरे रोके रुकता है भला और जिसके रोके से रुक सकता उसे कई वर्ष से तो तलाश कर रही हूँ, अभी तो मिली नहीं और फिर यह काम क्या हर किसी लड़की का है जो उसे रोक सके। भगवान् ने ऐसी लड़की तो इसी के लिए बनाई होगी। जब तक वह न मिले मैं क्या कर सकती हूँ?'

अचला थोड़ी देर चुप रही। बाद में बोली—'क्या कहीं भी आपकी पसन्द की लड़की नहीं मिल रही है?'

बुआ जी—'वह तो भगवान् की जब मर्जी होगी तभी मिलेगी, वैसे नहीं मिलने की। एक दिन सुरेश ने, जो इस ओर से सदैव उदास रहता है, स्वयं ही आकर कहा था कि बुआ जी मैं अब एक बहू लाकर आपको दूँगा। मैं क्या कहूँ तुमसे, मैं सुनकर फूली नहीं समाई। मन ही मन मैंने अनेक आशीर्वाद दिये। तभी से उत्सुक प्रतीक्षा में रही कि कब वह शुभ दिन आयेगा, जब मैं अपनी सुन्दर-सी बहू, इस घर की शोभा का, सुरेश के साथ स्वागत करूँगी। मैंने उससे अनेक बार कहा भी कि मुझे एक बार चलकर दिखा तो, पर बार-बार टाल देता रहा। कुछ दिन बाद आकर बोला—'बुआ जी! मामला ठीक बैठा नहीं, टूट गया। मैं

आज ही रात को पश्चिम घूमने जा रहा हूँ। बहुत पूछा—साफ-साफ कह मामला क्या है? पर उसने तो चुप्पी साध ली और चला गया।

अचला की समझ में अब आया कि वह स्वयं ही लड़की थी। उसे थोड़ा सन्तोष तो अवश्य हुआ यह जानकर कि बुआ जी और अधिक नहीं जानतीं, पर उस सन्तोष की साँस निकलने के साथ ही साथ गत घटनाओं के संघर्ष से पड़े छाले फूटकर निकले।

जब भोजन तैयार हो चुका तो बुआ जी ने अचला को अपने साथ ही बैठाकर खिलाया। खाने के बाद उन्होंने उसे मकान की हर चीज, हर कमरा घूमकर दिखाया। दिखाते समय सहसा ठण्डी आह भर कर उन्होंने कहा—'भगवान् की कृपा है! किसी बात की कमी नहीं, बस गृहलक्ष्मी की कमी है। उसके बिना यह स्वर्ग तुल्य मकान भी खाने को दौड़ता है। यह ख्याल कर मैं तो इतना रोती हूँ कि क्या कहूँ।'

नौकर ने आकर कहा कि केदार बाबू जाने को तैयार बैठे हैं। अचला ने बुआ जी की चरणरज माथे पर लगा विदा ली। उसी समय चलते वक्त बुआ जी ने धीरे से पूछा—'एक बात बताओ बेटी!'

अचला ने हँसते हुए कहा—'पूछिए।'

बुआ जी—'महिम और तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में सुरेश ने मुझे सारी बातें कही हैं। उसने यह भी कहा था कि तुम्हारे पिता की इच्छा नहीं थी कि तुम्हारी शादी महिम के साथ हो क्योंकि वह गरीब है। पर चूँकि तुम चाहती थी इसलिए...।'

अचला ने लजाते हुए कहा—'उन्होंने ठीक बताया आपको बुआजी।'

बुआजी ने प्रसन्नावेश में अचला के दोनों हाथ पकड़ कर कहा—'ठीक है बेटी। प्रेम के सामने धन-दौलत, रुपया-पैसा किसी का कोई मूल्य नहीं। महिम को खूब पहचानती हूँ। वह लड़का बड़ा योग्य है। उसके कारण अभी तुम्हें चाहे जितना कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर निःसन्देह भविष्य उज्ज्वल है। मैं तुमसे कहे देती हूँ कि भगवान् भी इस प्रेम को सराह शुभाशीर्वाद देंगे।'

अचला ने फिर बुआ जी की चरण रज ली।

अचला की ठुड्डी का प्यार लेते हुए बुआ जी ने कहा—'मेरे भाग्य में भी ऐसी बहू होती!'

सुरेश ने दोनों को गाड़ी पर बैठा दिया, पर कुछ बोल न सका। केवल नमस्कर कर विदा कर लौट आया। लौटते समय हाथ की लालटेन के प्रकाश में अचला ने सुरेश के चेहरे पर देखा—न जाने कितनी दबी व्यथा ऊपर को उफान मार रही है, जिसके कारण उसकी मुखाकृति अजीब विकृत-सी हो गई है। बग्घी ने रफ्तार पकड़ ली थी और उसके घोड़े सड़क पर तेजी से बढ़े जा रहे थे। सड़क सूनी होनी आरम्भ हो गई थी। अब अचला का ध्यान टूटा। अब तक वह विचारों की दुनिया में खोई हुई थी। वह दुनिया दुःखमय थी अथवा सुखमय, कहना कठिन है। केदार बाबू शान्त बैठे थे—सम्भवतः सुरेश का वैभव चमत्कार उनकी आँखों में छा रहा था। एकाएक ठण्डी आह छोड़ते हुए बोले—'निश्चय ही बड़ा आदमी है।'

अचला शान्त रही। बात का सिलसिला जमता न देख शेष रास्ते भर केदार बाबू भी शान्त रहे। गाड़ी उनके घर पहुँच गई और जब कोचवान ने उनके उतरने के लिए गाड़ी का दरवाजा खोला तब केदार बाबू विचार की दुनिया से लौट आये, मन ही मन उतरते समय उन्होंने फिर दुहराया, सुरेश निःसन्देह देवता है। हम सब उसे पहचान न सके।

चौदहवाँ परिच्छेद

आज अचला का विवाह हो रहा है। सुरेश केवल एक बार मण्डप के पास दिखाई पड़ा था, उसके बाद पता नहीं रात भर कहाँ रहा।

विवाह सम्पन्न हो गया। अचला के हृदय को बुआ जी की उस रात की बात विवाह के दो दिन बाद तक उद्वेलित करती रही। फिर कहीं उसे शान्ति मिली।

विवाह के बाद भी महिम के चेहरे पर आनन्द की रेखा न दिखाई

दी। सागर की तरह गम्भीर बना रहा। लेकिन विवाह के समय उसके चेहरे पर आन्तरिक प्रसन्नता की आभा प्रकाशमान थी। उसे देख अचला का हृदय एक बारगी आनन्द-विह्वल हो उठा और मन ही मन उसके अन्तर ने गुनगुनाया, तुम्हें पा मैं निहाल हो गई। तुम्हारे साथ तुम्हारे टूटे मकान में भी मुझे महलों का सुख मिलेगा।'

जब केदार बाबू अचला को बिदा कर रहे थे, उनकी आँखों में आँसू आ गये। उन्हें कुरते की बाँह से पोंछते हुए अचला को आशीर्वाद देते हुए बोले—'बेटी! जाओ, पति के साथ जीवन में पदार्पण कर हर दुख-गरीबी का सामना करती हुई निरन्तर कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहना। ईश्वर तुम दोनों का भला करेंगे।' यह कह आँसू पोंछते हुए वह दूसरे कमरे में चले गये।

अचला की पालकी पति-गृह के मार्ग पर चली। सावन की दुपहरी थी। बादल घिरे थे, पर बरस नहीं रहे थे। मार्ग में कीचड़ हो रही थी। उसी पर होकर अचला की पालकी महिम के घर जा पहुँची। रास्ते में ही अचला का विवाहोल्लसित मुख आधा क्लान्त हो गया। उसने कभी गाँव देखे नहीं थे। केवल उनके सम्बन्ध में किताबों में पढ़ा था उनकी गरीबी के साथ-साथ उनके प्राकृतिक वैभव, सुन्दरता तथा स्वच्छता का वर्णन! पालकी से उतर कर मकान में घुसते ही चारो तरफ देखकर उसकी ग्राम सम्बन्धी कवि-कल्पना निर्मूल सिद्ध हुई। उसने कभी कल्पना भी न की थी कि ग्राम-गृह ऐसे सीले, सुनसान, अँधेरे गुप्त होंगे और छोटे-छोटे दरवाजे और रोशनदान, जङ्गले, भद्दा-सा छप्पर होगा। वह विकल हो उठी यह सोचकर कि इस मकान में उसे जीवन बिताना पड़ेगा। विवाह के समय की उसकी सारी कल्पनायें काफूर हो गईं। घर में कोई नहीं था, सास, ननद, भौजाई, कोई भी न थी। केवल एक दादी जी थीं वह भी दूर के नाते से। वे किसी दूसरे मोहल्ले से वर वधू के स्वागत के लिए आ गई थीं। पर जब उन्होंने प्राचीन परिपाटीगत विवाह की पोशाक और चमक दमक न देखी तो वे विस्मय से ठिठककर खिड़की में ही खड़ी

रह गईं। पर अन्त में उन्होंने अचला का हाथ पकड़कर अन्दर बैठाया। अन्य स्त्रियाँ भी जो अचला को देखने के लिए आई थीं वे आपस में अचला की आयु को लेकर स्त्रियोचित ढङ्ग से मुँह बिचका-बिचका, हँसी-दिल्लगी कर चिउँटी काट नुक्ताचोनी करने लगीं और जब वे वहाँ से जाने लगीं तब अचला के कान में भी उनके दो चार शब्द सुन पड़े; म्लेच्छ ब्रह्मसमाजी।

पलक मारते गाँव भर में खबर फैल गई कि महिम ब्रह्मसमाजी से ही शादी करके लाया है। शादी से पहले भी एक बार इस पर काफी चख-पख चल चुकी थी। बहू को देखकर तो उस पर सच्चाई की मोहर लग गई।

गाँव की अन्य स्त्रियों के जाने के बाद दादी ने जाने की खबर दी कि मुझे भी जरा दूर जाना है, सो मैं भी अब चली। वहाँ छोटी नातिन है सो सब ठीक कर लेगी। और इतनी देर भी न रुकीं कि अचला कुछ कह भी पाती। इतनी देर भी जो वे रुकी रहीं वह केवल यह बताने को कि वे महिम की दादी हैं। यदि उन्हें पहले से मालूम होता कि महिम ब्रह्मसमाजी कन्या को विवाह करके लाया है तो वे सम्भवतः आती भी नहीं। गाँव में इन लोकाचारों का बड़ा लिहाज करना होता है। किसी में इतनी ताव नहीं कि इनकी उपेक्षा कर सके।

उनके जाने के बाद घर में केवल यदु नौकर, उड़िया महराज, अचला के मायके से आई नौकरानी हरिया की माँ के सिवा और कोई भी न रहा। पानी बरसना रुक गया था। अब फिर शुरू हो गया। हरिया की माँ धीरे से बोली—'बेटी! यहाँ तो कोई भी नहीं है, मैंने तो ऐसा घर कभी भी नहीं देखा।'

अचला मूक बैठी रही केवल 'हूँ' भर कह सकी।

हरिया की माँ—'दामाद साहब भी तभी एक बार दीख पड़े थे, फिर न जाने कहाँ गायब हो गये?

अचला निरुत्तर रही।

हरिया की माँ ने अचला को बचपन से पाला था इसीलिए अचला की प्रकृति को समझते हुए, खुद चाहे उसे उस नीरवता से कितनी ही व्याकुलता हो रही हो, पर उसे धीरज बँधाते हुए साहस के शब्द में बोली—'तो उठो, कपड़े लाये देती हूँ मैं, कपड़े बदल डालो। भय करने का कोई कारण नहीं, दामाद साहब अभी आते होंगे। सब ठीक हो जायगा।'

अचला—'अभी ठहर जाओ हरिया की माँ।'—कह कर उसी तरह गरदन नीचे झुकाये बैठी रही। उसकी सारी स्फूर्ति मारी गई थी, सारा उन्माद, हुलास जाता रहा था।

पानी जोर से बरस रहा था। बादलों ही बादलों में कब शाम हो गई, पता न चला। केवल उस मकान के कोनों में अँधेरे की गहनता बढ़ती दृष्टिगोचर हो रही थी। यदु नौकर घर के बीच में लालटेन रख चला, तो हरिया की माँ ने पूछा—'दामाद साहब कहाँ गये?'

यदु यह कह जाने लगा—'मालूम नहीं।' यदु के इस सूखन-से उत्तर ने हरिया के मन को और सन्देह में डाल दिया। बोली—'मालूम नहीं' क्या माने—वे घर में नहीं हैं क्या?'

यदु के व्यवहार से साफ़ था कि उसे इन लोगों का आना नहीं सुहाया। वह 'नहीं'—कह चला गया। हरिया की माँ डर सी गई, अचला से उसने दरवाजे को बन्द कर आने को पूछा।

अचला—'क्यों, दरवाजा क्यों बन्द करोगी?'

हरिया की माँ रहने वाली तो वैसे गाँव की ही थी, पर कलकत्ते में जाकर बस गई थी फिर कभी गाँव लौटकर नहीं गई। अब तो गाँव के चोर-डाकुओं के क़िस्सों की ही याद भर उसे बाकी रह गई थी।—बाहर आँगन के अन्धकार को शङ्काकुल आँखों से चीरती, वह अचला के अत्यन्त निकट आ धीरे से बोली—'बेटी, यह गाँव है। यहाँ का कुछ ठीक नहीं।'—और उसके रोंगटे खड़े हो गये।

उसी समय आँगन में दरवाजे के पास एक बीस वर्षीय चञ्चल लड़की

आकर खड़ी हो गई। पानी से उसके सारे कपड़े भीग रहे थे। वह बोली—'कहाँ हैं दादा जी?'—फिर अचला को देख बोली—'आपको पहले नमस्कार तो कर आऊँ तब जाकर कपड़े बदल लूँगी।'—कह उसने अचला के पैरों पर माथा टेक दिया। फिर लालटेन उठा उसके प्रकाश में अचला के चेहरे की तरफ एकटक देखती रही, सहसा चिल्ला उठी—'अरे दादा! ओ दादा!'

महिम सबको घर पर उतार, स्वयं फौरन ही इसे लेने चला गया था। यह कहीं पास ही के किसी दूसरे गाँव में रहती है। उसकी आवाज सुन दूसरी कोठरी से ही उसने उत्तर दिया—'मृणाल! क्या है?'

मृणाल—'यहाँ तो आओ। बताऊँ।'

महिम ने दरवाजे के पास आकर पूछा—'क्या है?'

मृणाल ने अचला का मुँह एक बार फिर लालटेन के प्रकाश में देखा और कहा—'दादा! तुम जीत गये। कहीं मुझसे शादी कर ली होती तो निश्चय ही ठग जाते।'

महिम ने दरवाजे पर से ही डाँटते हुए कहा—'न मानोगी मृणाल। जब देखो तब ठिठोली।'

अचला की तरफ मुस्कराते हुए बोली—'मैं और ठिठोली करूँ। सच कहती हूँ। न मानो तुम्हीं पूछ देखो अपने दुल्हा से—कभी मुझे भी चाहते थे कि नहीं?'

महिम—'मैं तो चला। तू यों ही बकती रह।'

मृणाल—'वाह! पकड़ा किसने है, जाओ न!' फिर अचला की ठुड्डी को बड़े स्नेह से पकड़ कर बोली—'कभी इस घर की लक्ष्मी मैं होने वाली थी। अब तुम्हीं बताओ दादी कि मुझे जलन होनी चाहिए कि नहीं। मेरी कम्बख्त माँ ने न जाने क्या जादू किया कि दादा का मन फिर गया मेरी तरफ से और मैं—यदु ओ यदु! घोपालजी किधर गये?'

यदु—'हाथ-पाँव धोने गये हैं, तालाब में।'

मृणाल की हँसी गायब हो गई और हँसते चेहरे पर शङ्का की

कालिमा छा गई। बोली—'तालाब में! और इस अँधेरे में। जरा भैया यदु लपक तो बत्ती लेकर। कहीं अँधेरे में पैर न फिसल जाय, हड्डी-बड्डी न टूट जाय। बूढ़े तो वैसे ही ठहरे।' फिर अचला की ओर शर्मीली निगाहों से देख बोली—'न जाने कहाँ से इस बूढ़े को मेरे मत्थे मढ़ दिया है। टहल करते ही सारी जवानी खतम हुई जा रही है। कैसी फूटी तकदीर है मेरी। अच्छा! तो कपड़े बदल आऊँ फिर बात करूँगी। मैं तुम्हारी सौत हूँ भले ही, पर तुम्हें गुस्सा न होने दूँगी।'—और सारी कोठरी को हँसी से गुँजाती हुई—'और चाहो तो बूढ़े में भी हिस्सेदार बना लूँ।'—कह दूसरी कोठरी में चली गई।

मृणाल के सारे मजाक अचला के लिए ओछे और भोंडे थे। उसे कभी ऐसे मजाकों से पाला नहीं पड़ा था। इन मजाकों को सुन उसे बड़ी शर्म लग रही है। अचला सुसंस्कृत और शिक्षित थी, और ये सारे मजाक उसकी शिक्षा और संस्कृति पर व्यङ्ग थे। उसे कभी स्वप्न में भी ख्याल न आया था कि एक स्त्री भी इतने भोंडे मजाक कर सकती है। फिर भी मृणाल के आने से उसका अकेलापन काफी हद तक दूर हो गया था और वह मृणाल का पूरा परिचय जानने के लिए लालायित हो उठी।

हरिया की माँ—'बड़ी हँसमुख लुकड़ी है यह बिटिया!'

अचला ने केवल—'हाँ'—भर उत्तर में कहा।

मृणाल कपड़े बदल, लौटकर स्वयं ही परिचय देती हुई बोली—'तब तो जरा-सी ठिठोली करके ही चली गई, अब अपना पूरा परिचय दे दूँ। वैसे तो कोई विशेष परिचय भी नहीं। तुम्हारे स्वामी मेरी माँ के बाप होते हैं, तभी मैं उन्हें दादा जी कहती हूँ।'—जरा रुक फिर बोली—तुम्हारे ससुर जी और मेरे पिता में बड़ी घनिष्ठता थी। सहसा एक दिन मेरे पिता गाड़ी से नीचे आ गये और हाथ टूट जाने के कारण उन्हें नौकरी से हाथ धोना पड़ा। तब से हम सब यहीं रहती आई हैं। इस घटना के काफी दिन बाद मेरा जन्म हुआ था। तब दादा की उम्र सिर्फ आठ वर्ष की ही थी। दादा की माँ तो उनके पैदा होते ही चल बसी थीं।

इनके दो बड़े भाई और थे जो पहले ही मर चुके थे, डिप्थीरिया की बीमारी हो गई थी उनको। मेरी माँ जब यहाँ आई थीं तो वे ही इस घर की करता-धरता बन गई थीं। फिर मेरे पिता जी भी स्वर्ग सिधार गये; और उनके बाद तुम्हारे ससुर जी भी चल बसे। हम सब यहीं रह आये। पाँच साल हुए तब दादा ने मेरी शादी कर मुझको यहाँ से भगा दिया पलासी के घोषाल घराने में। माँ भी जिन्दा नहीं रहीं तभी मेरा भी कोई जोर नहीं रहा।'

दरवाजे के पास एक सज्जन आकर बोले—'इसी कमरे में हो क्या बड़ी बहू ?' उनका कद नाटा था और रङ्ग गोरा।

मृणाल—'आओ !' फिर अचला की तरफ मुस्कराकर संकेत कर बोली—'दादी ! यही मेरे पति हैं। इन्हें देख तुम्हीं बताओ ! भला क्या मैं जँचती हूँ इन बहत्तर साल के बूढ़े के साथ, मेरा सारा जीवन, यौवन, रूप-रङ्ग सभी बर्बाद हो गया।'

अचला तो मारे शर्म के गड़ी जा रही थी, उत्तर क्या देती।

उन्होंने हँसते हुए अपना परिचय दिया—'मुझे भवानी घोषाल कहते हैं। दादी जी, आप इनकी बातों पर ध्यान न दीजिएगा। सब योंही मुझे अपमानित करने के लिए झूठ-सच मिलाती फिरती हैं। वैसे तो अभी मैं बावन याति ···।'

मृणाल ने बीच ही में उनकी बात काट दी, बोली—'चुप भी रहो। मेरे दादा ही ने भगवान् कसम मेरे साथ दुश्मनी निभाई। नहीं तो कहीं अच्छा था कि मुझे गङ्गा में डुबा देते। इस बूढ़े के पल्ले बाँधने से तो अच्छा रहता। सच है न बहन !'

अचला का चेहरा मारे शर्म के लाल हो गया था। वह वैसे ही चुप बैठी रही।

घोपाल जी अन्दर आ गये और देखते रहे निर्निमेष अचला के सुन्दर चेहरे की तरफ। फिर सहसा एक आह भर बोले—'अब इस लड़की का दर्प टूट गया। समझती थी जैसे सारे रूप-यौवन पर इसी का तो

अमलदारी है। आपने दादी जी, मेरी राज रख ली।' मृणाल की ओर उन्मुख हो बोले—'अब तक सियार ही समझता था कि जङ्गल का राजा मैं ही हूँ, अब आँखें पसार-पसार देख कि शहर की सुन्दरता कैसी होती है! अब तेरा घमण्ड चूर हो गया न!'

मृणाल—'मेरा घमण्ड! हूँ—किसमें ताव है उन्हें मिटाने का!' उसने पति की ओर अर्थ भरी तिरछी निगाह से देखा, जिसे अचला की आँखों ने भी देखा।

'दादी जी, सुना आपने।' हँसते हुए घोषाल बाबू कहने लगे—'दोनों में खूब पटती है, कह नहीं सकता आपसे कि कैसी पटती है दोनों में। ज़रा होशियारी से ही रहिएगा, मेरा क्या है, बीच सा हूँ, रहा भी तो क्या और न रहा तो क्या। बहत्तर साल का बूढ़ा हूँ। पर आप अपनी अमानत सँभाल कर ही रखिएगा। यही इस बूढ़े की प्रार्थना है।'

महिम—'मृणाल! क्या रात भर यही सब गप-शप होती रहेगी?'

मृणाल—'फिर क्या करूँ?'

महिम—'चौके की तरफ भी न देखोगी कि क्या हो रहा है?'

मृणाल चौंककर बोली—'मैं तो भूल ही गई थी दादा। वहाँ तो मुझे कब का देख-भाल आना चाहिए था। हम जाती हैं तुम सब बाहर जाओ।'

महिम—'हम से तेरा मतलब...?'

मृणाल—'हम, मैं और दादी जी और कौन। जब मैं आ गई हूँ तो सारी बातें समझा कर जाऊँगी दादी!' अचला की ओर संकेत कर उसने बात खतम की।

जब महिम और भवानी बाहर चले गये तब वह फिर बोली—'आना तो मुझे और भी पहले चाहिए था पर बूढ़ी सास के मारे आ ही न सकी। तुम उठो, कपड़े बदलो, मैं तुम्हें भी आकर बुला ले जाऊँगी।' कह वह चौके की ओर चली गई।

पानी बरसना बन्द हो गया और चाँद बादलों पर फिर अपनी

शीतल चाँदनी छिटकाने लगा था।

चौके का सारा प्रबन्ध देख-भाल मृणाल फिर अचला के पास बैठ, उसका हाथ अपने हाथ में ले बोली—'मैं तुम्हें भाभी कहा करूँगी।'

अचला ने मधुर स्वर में कहा—'हाँ।'

मृणाल—'नाते में तो तुम्हीं बड़ी हुई, पर मैं उम्र में तुमसे बड़ी हूँ। मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे मृणाल जीजी कहा करो, ठीक है न!'

अचला—'अच्छी बात है।'

मृणाल—'आज तो चौका दिखाया भर है, कल तो सारे सामान की ताली ही तुम्हें सौंप दूँगी।'

अचला—'ताली की मुझे जरूरत नहीं।'

मृणाल हँसती हुई बोली—'जरूरत नहीं। यह क्या कहती हो! सब सामान की ताली सँभालना क्या बुरी बात है? जो कहती हो मुझे जरूरत नहीं। ताली गृह-लक्ष्मी का सब कुछ है।'

अचला—'हो! मुझे नहीं चाहिए, पर तुम्हें तो छोड़ने को नहीं।'

मृणाल ने अपनी दोनों बाहों में अचला को कस लिया, बोली—'सौत को तो तुम पकड़ रखना चाहती हो! उसे तो झाड़ू मारकर घर से निकाल देना चाहिए। तुम्हारी अकल कैसी है भाभी?'

अचला जल्दी से बोली—'जीजी! तुम्हारी यह ठठोली अच्छी नहीं। क्या यहाँ सब इसी तरह की ठठोली करते हैं?'

मृणाल के ओठों पर हँसी खिल गई, बोली—'सबको क्या यह गुण मिलता है भला और कोई नहीं, यह तो मैं ही करती हूँ।'

अचला—'कलकत्ते की स्त्रियाँ तो ऐसा हँसी-मजाक करने की कल्पना भी नहीं कर सकतीं।'

मृणाल को इस पर जरा भी शर्म नहीं मालूम हुई, अचला को और भी बाहों में कसकर बोली—'कलकत्ते में, कितनी ऐसी स्त्रियाँ हैं जो इस तरह छाती से कसकर चिपटा सकें। सभी काम क्या सभी के लिए होते

हैं। तुमसे अभी थोड़ी देर ही की जान पहचान है सो मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि मेरे कोई बहन न थी सो तुम मिल गई। यह मैं बात की बात के लिए ही नहीं कह रही, इसके लिए तो मुझे सारी जिन्दगी कोशिश करते रहना होगा, रिश्ते को निभाने के लिए। इसमें भी ठिठोली करने से काम नहीं चलने का।'

अचला ने शिक्षा प्राप्त की थी, उसने इस गाँव में पैर रखते ही समझ लिया था कि अब इस विरोधी समाज में आगे का जीवन किस प्रकार का बिताना होगा। अनुभव प्राप्ति के इस अवसर को भी उसने खोया नहीं। जरा गम्भीर हो बोली—'क्या सारी जिन्दगी भर कोशिश करोगी, रिश्ते को निभाने के लिए मृणाल जीजी?'

मृणाल—'यह तो करनी ही होगी। एक बार जो कह दिया उसे जीवन भर निभानी है। कोई शहर की लड़की तो है नहीं।'

अचला बात का रुख पलटकर बोली—'अच्छा, यह तो बताओ कि यहाँ से मुझे छोड़कर भागोगी तो नहीं?'

मृणाल के हँसी फूट निकली, बोली—'तुम तो मुझे मूर्ख जानकर हर बात में बाँधना चाहती हो भाभी, अच्छी तरह, सब काम सँभलवाये बिना यहाँ से नहीं जाने की, यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ।'

अचला ने आग्रहसूचक सिर हिलाते हुए कहा—'उसकी तो मुझे जरूरत ही नहीं।'

मृणाल—'मैं तो उसे पूरा करा दूँगी, तब ही चली जाऊँगी। मेरी खुद की गृहस्थी बड़ी लम्बी-चौड़ी है, उसे ज्यादा दिन तक छोड़कर भी तो नहीं रह सकती।' अचला ने फिर आग्रहसूचक गर्दन हिला कर कहा'—यह सब मैं कुछ नहीं जानती।'

मृणाल को अचला के आग्रह से विस्मय हुआ, बोली—'क्या दादा ने मेरे सम्बन्ध में तुम्हें कभी कुछ नहीं बताया?'

अचला—'अपने घर-बार के विषय की तो उन्होंने सब बातें कही थीं, पर मुझे भी बड़ा विस्मय है, मृणाल जीजी के बारे में कुछ नहीं कहा

हालाँकि तुम्हारे बारे में सब से पहले कहना चाहिए था।'

मृणाल—'कहना तो चाहिए था।'

थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद अचला मीठी हँसी हँसती हुई बोली—'क्या तुम्हारे ही साथ पहले इनकी शादी होने वाली थी?'

मृणाल का ध्यान कहीं और था, वैसे ही उत्तर दे दिया—'हाँ।' उत्तर देने के बाद उसे खटका अचला का प्रश्न और अपना उत्तर भी। अचला के मुँह की तरफ देखकर बोली—'हुई नहीं, क्योंकि होनी नहीं थी।'

अचला—'क्यों रुक गई? कोई सगा रिश्ता तो था नहीं तुम्हारा उनका और फिर छुटपन से ही जो प्रेम होता है उसे तोड़ना भी तो उचित नहीं?'

अचला ने यह बात इस ढङ्ग से पूछी कि मृणाल विस्मय में पड़ गई। अचला की ओर देख बोली—'क्या व्यर्थ की उधेड़बुन में पड़ गई भाभी! क्या छुटपन के सभी प्रेम की यह परिणति होनी जरूरी है? अथवा शादी-ब्याह मनुष्य के हाथ में है? शादी-ब्याह तो जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। भगवान् की मर्जी थी, उनकी दासी बनाना था, बना दिया। किसी के चाहने से होता क्या है?'

अचला शर्मा गई, बोली—'यह बात तो ठीक ही है जीजी! मैंने तो वैसे ही पूछा...।' बात पूरी भी न हुई थी कि शर्म के मारे उसका सारा मुँह लाल हो गया। मृणाल की नजर उस पर पड़ी तो स्नेह उमड़ पड़ा और प्रेम से उसका हाथ अपने हाथ में ले बोली—'मेरी शादी को तो पाँच साल हो गये। तभी से पति की टहल कर रही हूँ, तुम्हारी शादी तो अभी हुई है, पर तुम्हें एक बात कहती हूँ भाभी। कभी पति पर सन्देह कर, उसके कारणों की खोज-बीन कर स्वयं उनकी ही कल्पना मत कर बैठना। पति के द्वारा प्रस्तुत धोखे में ही अपने को भुला न रखा सुखकर है, उस धोखे के बाहर जान कर जीतने में नहीं।'

यदु ने पुकारा—'बाबू लोगों के लिए खाना तैयार है, जीजी!'

मृणाल—'मैं आई! तू चल!'—कह एकाएक मृणाल ने अचला

का सुन्दर मुँह अपनी ओर खींच उस पर अपने मीठे गरम ओठों की एक प्यारी-सी छाप लगा दी, और चल दी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

मृणाल—'भाभी! ओ भाभी!'

अचला व्यग्र हो झट से पहुँच गई। मृणाल साड़ी का पल्ला बाँध एक दराज वाली छोटी मेज को अकेले ही खींच-तानकर ठीक कर रही थी। अचला के पहुँचते ही ओठों में हँसी दबाये, जो बाद में फूट भी पड़ी. अपने आप—ऊपर से गुस्सा दिखाती हुई बोली—'कम्बख्त! तू तो हाथ पर हाथ धरे, आराम करती रह और मैं तेरा कमरा सजाया करूँ! चल! उठा झाड़ू! और साफ कर उस कोने को।'

हरिया की माँ भी आ पहुँची, आवाज सुनकर बोली—'घर में इतने तो नौकर मौजूद हैं फिर यह क्या करती हो जीजी? दीदी ने क्या कभी यहाँ की औरतों की तरह झाड़ू को हाथ लगाया है? लाओ मैं साफ किये देती हूँ।'—कह उसने झाड़ू उठानी चाही कि मृणाल ने फिर डाँटा—'तू बड़ी वकालत करने आई दीदी की। मुझसे भी ज्यादा पहचानती है तू?'—कह अचला के हाथ में झाड़ू थमा दी। उसकी डाँट ऊपरी थी, ओठों पर तो स्निग्ध हँसी खिल रही थी। अब पूरी तरह से हँसती हुई बोली—'तेरी दीदी तो गाँव की औरतों के न किये काम को भी कर सकती है, बस उनके मन भर जाय।'—और अचला से बोली—'भाभी! उस कोने को तो चलकर जल्दी से साफ कर डालो।'

अचला झाड़ू लगाते हुए बोली—तुम्हें जादू आता है मृणाल जीजी?

मृणाल—'कैसे?'

अचला—'जादू नहीं तो क्या! मैंने तुम्हारे कहने से इस घर को साफ करने के लिए झाड़ू तक उठा ली।'

मृणाल—'अरे तुम न साफ करोगी तो फिर कौन साफ करने आयेगी! मुहल्ले भर की पद में मौसी? चलो-चलो! शाम होने को आई। बातों

में वक्त मत गँवाओ।'

अचला झाड़ू देती हुई हँसकर बोली—'काम कराते-कराते थका मारती हो। कुछ चैन लेती हो, न किसी को लेने देती हो। इन पाँच-छः दिनों में तुम मुझसे चाय के बगीचे में काम करने वाली मजदूरनियों से भी ज्यादा मेहनत लेती। सच कहती हूँ जीजी।'

मृणाल अचला के पास आ गई और उसकी ठुड्डी पर स्नेह की ठोके मार, बोली—'इन्हीं सब बातों से तो जाना जाता है कि घर में लक्ष्मी का पदार्पण हुआ है! अभी क्या है, जब तुम्हें लड़के-वालों और पति तथा घर-बार से नहाने-खाने की भी फुर्सत न होगी तब जानोगी कि तुम्हारा स्त्री होना सफल हुआ। तुम अभी से मेहनत-मेहनत कहती हो। मेहनत देखी तुमने! मैं तो भगवान से वह दिन शीघ्र ही दिखाने की प्रार्थना कर रही हूँ।'—कह कर वह हँसना चाहती थी, पर हरिया की माँ फूट-फूटकर रोने लगी तो उसके हँसते ओठ काँप कर ही रह गये। हरिया की माँ रोती हुई बोली—'यही असीस दो जीजी।'—कह उसका ध्यान अचला की माँ की याद में चला गया। जब वे अचला को बच्ची ही छोड़कर इस असार संसार से चल बसी थीं तभी से हरिया की माँ ने उसे पाल-पोस बड़ा किया था।

मृणाल ने हरिया की माँ के रोने पर तनिक क्रोध मिश्रित व्यंग किया—'बात-बात पर फूट-फूट कर रोने लगती है।'

हरिया की माँ—'जीजी, तुम न आती तो न जाने इस मकान में कैसे दिन कटते?'

मृणाल छः दिन हुए तब आई थी और तभी से उसने घर-बाहर, आदमी सभी की रंगत बदल डाली, हर घड़ी काम में ही लगी रहती है। पर हर घड़ी वह वहाँ से जाने की बात ताजी कर देती जिससे अचला को बड़ा दुख होता। अचला मृणाल के सरल स्वाभाविक व्यवहार से अनेक अनुभव प्राप्त कर अपने को नये घर-गृहस्थी के जीवन में ढाल रही थी और सबसे बढ़कर वह मृणाल को ही पहचानने का प्रयास कर

रही थी। उसने मृणाल के मुँह से सुना था उसकी बूढ़ी सास उसके गले का फन्दा बनी हुई है। वैसे ही उसके आभूषण-रहित हाथ-पाँव उसके घर की आर्थिक अवस्था के द्योतक थे। बूढ़ी सास की हर घड़ी की डाँट-फटकार, उसका बूढ़ा पति, घर की मेहनत, सब उसकी जान साँसत में डाले थे फिर भी वह थकना नहीं जानती। गाँव की इस मूर्ख स्त्री के लिए ठिठोली और प्रसन्नता के सिवा कुछ है ही नहीं। जैसे-जैसे कमल कीचड़ में खिल कर भी मलीनता से अपने को बचाये रख खिला रहता है, उसी तरह वह अपढ़ लड़की सब प्रकार के दुखों से घिरे होने पर भी निरापद आनन्द से जीवन बिता रही थी। न तो इसका शरीर ही थकता है और न मन ही दुखित होता है। इन्हीं सबके बीच अचला उसे पहचानने का प्रयास कर रही थी और स्वयं भी इन्हीं सब बातों की ओर खिचती जा रही थी; हालाँकि उसके संस्कार ऐसे काम करने के न थे फिर भी यह विचर कि न करने से उसे उसके सामने हेय होना पड़ेगा, इन सब कामों को करने की प्रेरणा देता रहता था। गत छः दिनों में वह उसके साथ काम में इतनी फँसी रही कि एक घड़ी का अवकाश भी न मिल पाया कि वह अपनी सारी स्थिति पर सोच-विचार कर सकती। सारा समय काम, हँसी-मजाक, बातचीत में ऐसे ढङ्ग से बीतता कि जब मृणाल के ससुराल लौट जाने की चर्चा होती तो सारा घर उसे खाने दौड़ने लगता। उसे रह-रहकर ख़याल होता कि उसके जाने के बाद वह यहाँ कैसे रह सकेगी? शाम होने पर अचला ने अवसर पा कहा—'मृणाल जीजी, बताओ तो भला अपने आप कौन बेटी इतनी जल्दी मयका भागना चाहती है कि तुम बार-बार 'जाऊँगी-जाऊँगी' की ही रट लगाती रहती हो। मैं जब तक यहाँ हूँ तब तक तुमको भी यहाँ रहना पड़ेगा।'

मृणाल—'क्या बताऊँ भाभी! बुढ़िया सास क्षण भर भी दम नहीं लेने देती। मरती भी तो नहीं कि पाप कटे! लड़के की उम्र भी साठ की होने आई। मैं तो उससे पूछती हूँ कि क्या इसे मार कर ही मरेगी? खाँसते-खाँसते बेदम हो जाती है, पर मरती नहीं।'

अचला को हँसी आ गई, बोली—'तुम अच्छी नहीं लगती क्या उन्हें ?'

मृणाल—'बिलकुल भी नहीं।'

अचला—'और तुम्हें, वे ?'

मृणाल—'मुझे भी नहीं। मैंने तो अभी से सवा रुपये का प्रसाद मान रक्खा है, जब मरेगी तब चढ़ाऊँगी।'

अचला—'क्या जाने वह बुढ़िया ही तुम्हें सबसे अधिक प्रिय हो। तुम किसे चाहती हो किसे नहीं, तुम्हारी बातों से कभी कोई कुछ नहीं समझ सकता।'

मृणाल हँस दी और स्नेह से अचला के कपोल मसल कर कहा—'हो सकता है'—कहकर किसी काम से उठकर चली गई।

मृणाल और कुछ दिन नहीं गई। कहती तो जरूर रही, जाऊँगी। अचला ने महसूस किया कि जितना वह जाने को कहती है वास्तव में उतना जाने के लिए उत्सुक नहीं। अचला मृणाल के द्वारा अपने नये जीवन का अनुभव करना चाहती थी, पर वह बड़ा महँगा रहा। पहले तो जब वह मृणाल को महिम के साथ ठठोली करते देखते तो मन-ही-मन जल मर जाती, पर अब तो वह जलन निरन्तर रहने लगी थी। अपने मन को वह समझाती कि उसका शक निर्मूल है। मृणाल की ठिठोली में कोई रहस्यमय सत्य नहीं, उसका मन ज्यों-ज्यों व्यर्थ की ही शङ्का करता है त्यों-त्यों उसकी बुद्धि उसके हृदय में एक द्वन्द्व पैदा कर शङ्का को और भी मजबूत करती जाती। महिम की गम्भीरता अब उसे खलने लगी थी। महिम मृणाल द्वारा जब-तब किये गये व्यङ्ग का उत्तर स्वाभाविक व्यङ्ग से ही न दे, शर्मा जाता। यदि कोई रहस्य नहीं है मृणाल के व्यङ्ग में तो ऐसा क्यों होता? वह आँख बचाकर अवसर टालना क्यों चाहता है? इसमें अवश्य कुछ रहस्य है। रह रहकर अचला के हृदय में भी द्वन्द्व होता रहता। अचला की यह धारणा कि जब वह स्वयं मृणाल के प्रति द्वेष, डाह और जलन रखते हुए भी उसकी ओर आकृष्ट है उसे

छोड़ने की इच्छा नहीं होती तो फिर वर्षों तक ही खेल-कूद पल भर महिम इसे प्यार न करे। असम्भव !

अचला नहीं जानती थी कि मृणाल सदैव आने पर स्वयं ही रसोई बना कर महिम को खिलाती है, महाराज को छुट्टी मिल जाती है। इस बार भी वही हुआ था। आज सवेरे अचला ने चाहा कि वह रसोई बनाये और सरलता से कहा—'आज तो रसोई मैं बनाऊँगी मृणाल जीजी।' तुम आराम करो।'

मृणाल असमंजस में पड़ गई, बोली—'आराम किस लिए करूँ ?'

अचला—'इसलिए कि आज मैं रसोई बनाऊँगी।'

मृणाल—'रसोई बनाओगी तुम ? फूट गये करम !'

अचला ने आग्रहसूचक सर हिलाते हुए कहा—'घर पर मैं न जाने के बार बना चुकी हूँ। भला क्या पकाना जानती नहीं ! आज तो मैं ही बनाऊँगी मृणाल जीजी।'

मृणाल का चेहरा उतर गया, बोली—'नहीं ! भला मेरे रहते तुम धुएँ में दम घुटाओगी ?'

अचला ने भी हठ पकड़ लिया, बोली—'मैं तो बनाऊँगी ही इस बेला। तुम भी रसोइया के रहते क्यों कष्ट करती हो भला ?'

मृणाल, अचला के हठ का कारण न समझ सकी, फूटती हँसी दबाते हुए गर्व के स्वर में बोली—'एक के बाद एक सभी अधिकार ही लेते हो ! खूब ! सब तो छीन लिया मेरा ! यह भी नहीं सुहाता अब कि दो-चार दिन खाना ही पका खिला जाऊँ। जान पड़ता है कि अब तुम सौत से जलने लगी। मृणाल के इस कथन से अचला और भी जल-भुन गई। उसकी व्यथा के फफोले मसल कर वह चले। उसने और भी गम्भीर हो कर कहा—'मैं तो अवश्य पकाऊँगी।'

अब मृणाल की समझ में आया कि अचला नाराज हो गई। बहस करना ठीक न जाना सिर्फ ऊपरी दिल से बोली—'चलो सब चीजें दिखा, समझा दूँ। तुम बनाना ही चाहती हो तो बनाओ।'

दोनों में से किसी को विदित न था कि महिम अन्दर ही है। अचानक ही वह सामने आ गये। उसे देख दोनों ही भौंचक्की हो गईं। महिम मृणाल के हृदय की बात समझता था; पर स्पष्ट कह नहीं सकता था; बोला—'जब तक मृणाल यहाँ है, उसी को बना लेने दो।'

अचला के मर्म को महिम के इस वाक्य ने और भी मसल दिया। पर अपने क्षोभ को जाहिर न होने दिया। उसने सिर्फ कहा—'मैं बनाने जा रही हूँ।' किसी की प्रतीक्षा किये बिना ही जल्दी से चौके की तरफ चली गई।

वैसे तो अचला भी खाना पकाने में पूरी कुशल थी, पर चूँकि ज़िद में खाना पकाने गई थी, अतः उसका खाना पकाने में मन न लगा। रह-रहकर गत दिनों की सारी बातें उसके मर्म को मसलती रहीं। उसे शङ्का होने लगी, सम्भवतः महिम उसे इतना कभी भी नहीं चाहता था, और सुरेश के साथ हुई घटना की याद का इस घटना से मेल बैठाने पर तो उसकी शङ्का ठीक ही जँचने लगी कि महिम सदैव ही उससे खिचा-खिचा रहा है। जब पिताजी ने महिम के ब्याह न करने का निश्चय कर लिया था उस समय की उसकी उदासीनता भी इसी बात की द्योतक है। और शनैः-शनैः गत स्मृतियों के आधार पर उसकी शङ्काएँ दृढ़ होती गईं।

खाना खाने के समय अचला ने हरिया की माँ को मृणाल को खाना खाने के लिए बुलाने भेजा क्योंकि शुरू से ही वे दोनों खाना साथ-साथ ही बैठ कर खाती थीं पर मृणाल ने कहला दिया—मैं नहीं खाऊँगी, बुखार-सा हो आया है।

अचला सुनते ही मृणाल के कमरे में गई, मृणाल आँखें बन्द कर बिस्तर पर पड़ी थी। अचला ने अनुरोध किया—'खा लो चलकर मृणाल जीजी।'

मृणाल ने उसकी ओर देख चेहरे पर मुस्कराहट लाते हुए कहा—'मुझे तो बुखार सा हो आया है, तुम जाकर खा लो।'

अचला—'क्या बुखार हो आया?'

मृणाल—'हाँ ! शायद आज खाना न खाऊँगी तो ठीक हो जायगा।'

अचला ने मृणाल के सर पर हाथ रख बुखार की गरमी देखनी चाही। देखकर बोली—'चलो उठो भी ! खाओ चलकर, मुझे मूर्ख समझ रखा है क्या ?' मृणाल ने सहारा देते हुए कहा—'मैं नहीं खाने की तुम्हारी सौगन्ध भाभी, क्यों बेकार में बुलाने का कष्ट किया। नहीं मानती तो चलकर तुम्हारे सामने बैठ जाऊँ, चलो।'

अचला का चेहरा गम्भीर हो गया, बोली—'यह हम लोगों ने नहीं सीखा कि भूखी बहिन सामने बैठी रहे और हम खाना खायें।'

मृणाल जरा हँस दी, बोली—'और यदि बहिन के खाने का कोई हल ही न हो !'

अचला ने उसी गम्भीरता से उत्तर दिया—'मैं जानती हूँ तुमको बुखार-उखार कुछ नहीं हुआ है, सिर्फ गुस्सा हुआ है। स्पष्ट कहो कि तुम यही चाहती हो कि स्वयं भी न खाओगी और मुझे भी न खाने दोगी।—तुम्हार उत्तर पाकर फिर न कहूँगी। बोलो ?'

मृणाल झटके से बैठी और तपाक से बोली—'ऐं··! मुझे तो जरा भी नाराजगी नहीं भाभी ! सौगन्ध खाती हूँ अपने पति की। चलो ! तुम्हें गोद में बैठा कर खिलाऊँ पर मैं नहीं खाने की।'

अचला—'सिर्फ ढोंग ही है फिर बुखार-उखार कुछ नहीं हुआ है।'

दोनों ही फिर चुप रहीं। थोड़ी देर बाद अचला ही एक गहरी साँस छोड़ती हुई बोली—'मेरे हाथ का पकाया नहीं खाओगी। समझ में आया। यदि पहले ही स्पष्ट कह दिया होता तो काहे को मैं बेकार ही इतनी जिद कर तुम्हें भूखा रहने का कारण पैदा करती और स्वयं भी नौकरों के सामने क्यों शर्म उठाती। मुझे क्षमा करो अब। सम्भवतः दूध में छूत नहीं मानते, वही पी लेना और यदु से थोड़े सन्देश मँगवाये देती हूँ। ला दूँ ?'

मृणाल चुप हो गई।

अचला ने उसे हाथ से हिलाते हुए कहा—'बोलो, क्या इच्छा है?'

मृणाल की आँखों में आँसू आ गये थे, उन्हें पोंछकर कहा—'अभी नहीं।'

अचला कुछ देर तक तो वहाँ खड़ी रही, फिर चली गई। मृणाल बैठी रही। वह जानती थी कि उसकी बूढ़ी सास छुआछूत बहुत मानती है और उन्हें कहीं जरा भी भनक पड़ गई कि मैंने अचला के हाथ का बनाया भात खाया है तो आफत ही समझो, फिर उसके हाथ का पानी भी न पीयेगी पर मृणाल ने अपनी इस कमजोरी को अचला पर जाहिर नहीं होने दिया।

अचला चौके में जा वहाँ का सारा सामान ठीक ठिकाने से रख, अपना मुँह हाथ धो, बिना खाये ही कमरे में जा पड़ी रही। अचला को भी सन्देह न रहा था कि मृणाल के खाना न खाने का एकमात्र कारण उसकी उसके प्रति घृणा ही है। कारण मुख्यतः वही है जिस पर रसोई बनाने के सम्बन्ध में ही जिद्दम-जिद्दा हो गई थी। इसे अचला ही नहीं, मृणाल भी समझती थी।

दिन का तीसरा पहर बीतते पालकी भी दरवाजे के पास आ गई और मृणाल जाने को उद्यत हो अचला के पास जा बोली—'भाभी जी, मैं जा रही हूँ। इच्छा हो तो फिर याद कर लीजिएगा।'—थोड़ा ठहर कर—'क्या जाते समय एक शब्द भी मुँह से न बोलोगी भाभी!'—वह आग्रह सूचक दृष्टि से अचला की तरफ देखती रही। अचला निःशङ्क बैठी रही। मृणाल अन्त में नमस्कार कर बाहर चली गई, तो सामने महिम पड़ गया। बोली—'दादा ठहरो, तुम्हारी भी चरण-रज ले लूँ।'

महिम—'अरे चल दीं! बिना खाये-पीये ही। कल जाती न!'

मृणाल के ओठों पर मन्द हँसी बिखर गई, बोली—'यदु पालकी ले भी आया, अब तो दादा, पर एक दिन फिर बुलाना।' झुककर उसने महिम के पैर छुए और फिर एक बार दुहराया—'मेरी कसम दादा तुम्हें, मुझे एक बार फिर बुलाना।'

महिम को हँसी आ गई, बोला—'क्या सदैव ऐसा चिखिल्ला स्वभाव ही रहेगा तेरा ?'

मृणाल—'हाँ ! बस मरने के बाद नहीं।' और हँसती हुई पालकी पर जा बैठी।

अचला उस अकेली कोठरी में बैठी सोच रही थी कि उसने न तो खुद खाया ही और उसे भी भूखा रखा। इसके लिए वह सोच रही थी कि किस ढङ्ग से उससे इसका बदला लिया जाय। अचला ने निश्चय किया कि रह रहकर उस पर घृणा की ताड़ना दी जाय। पर उसके सारे मंसूबे बेकार गये।

उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मृणाल इस भाँति एकाएक चल देगी।

बिना खाये पीये ही जब मृणाल उससे बिदा लेने पहुँची थी तब उसकी भी आँखें छलछला उठी थीं। पर महिम से मिलते ही मृणाल खिल उठी थी और उसकी हँसी की आवाज उसके कानों में पड़ी तो व्यथा की गर्मी ने उसके आँसू सुखा कर दिये। किवाड़ की ओट से उसने उनकी बिदाई का जो दृश्य देखा था उससे उसके तन में आग फूट गई थी।

जब थोड़ी देर बाद महिम भी कोठरी में आया तब तक अचला अपने आप से बाहर हो चली थी। फिर भी अपनी शिक्षा तथा संस्कृति के संस्कारों के बल पर उसने अपने को संयत का प्रयास करते हुए कहा—'हालाँकि वह अस्वाभाविक ही रही, शहर वालों का दुर्भाग्य है कि गाँव में आकर रहना पड़े। क्यों, ठीक कहती हूँ न ?'

महिम अचला की तरफ एकटक देखता रहा, फिर थोड़ी देर बाद बोला—'शुरू शुरू में तुम्हें यहाँ रहना जरूर खलेगा यह तो मैं भी जानता था, पर यह कभी न सोचा था कि तुम्हारीमृ णाल से न पट सकेगी। इससे तो कभी किसी का झगड़ा होते देखा नहीं।'

अचला—'तुमने कैसे जाना कि मेरे साथ पास-पड़ोस का झगड़ा

होता रहता है।'

महिम—'दिन भर से उपवास ही जो कर रखा है। खैर, रहने भी दो इन बातों को।'

अचला के मर्म पर और भी चोट पहुँची, बोली—'उनके साथ तो हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। वे भी तो बिना खाये पिये भूखी प्यासी ही ससुराल चली गईं।'

महिम भौचक्का रह गया, बोला—'क्या कह रही हो अचला?'

अचला—'तुमने मेरा इस तरह अपमान मेरे किस अपराध के दण्ड में कराया है?'

महिम—'आखिर इन बातों से तुम्हारा मतलब क्या है? कहती क्या हो?'

अचला का स्वर तीव्र हो उठा, बोली—'मैंने कौन-सा अपराध किया है, जो इस तरह मुझे अपमान सहना पड़ा?'

महिम व्यथा से कसमसा उठा, बोला—'मैंने किया है तुम्हारा अपमान?'

अचला—'हाँ, तुमने ही।'

महिम—'नहीं! मैंने तो नहीं किया।'

अचला स्तब्ध थी। कण्ठ संयत कर बोली—'मैंने कभी झूठ नहीं बोला—खैर, जाने भी दो इसे। तुम्हें यदि अपने सत्यधारी समझते हो तो सच-सच कहोगे?'

महिम व्यग्र दृष्टि से प्रश्न के इन्तजार में रहा।

अचला—'आज मृणाल जीजी का मेरे प्रति जो व्यवहार था, क्या उसे तुम्हारे गाँव के समाज में अपमान नहीं समझा जाता?'

महिम—'लेकिन इसमें मेरा क्या दोष!'

अचला—'पहले तो मेरे प्रश्न का उत्तर दो।'

महिम—'अच्छा! मान लिया फिर···।'

अचला—'मानना-वानना नहीं 'हाँ-ना' में सीधा उत्तर दो।'

महिम—'हाँ, उस व्यवहार को यहाँ भी अपमान माना जाता है।'

अचला—'माना जाता है। तुम्हें तो पहले से मालूम था कि उन्हें मेरे हाथ का खाने में एतराज है। बोलो, मालूम था कि नहीं?' वह दृष्टि गड़ा कर महिम के हृदय में घुसकर उसके भाव जानना चाहती थी। महिम जड़वत् स्तब्ध खड़ा रह गया।

'अरे महिम! कहाँ हो भाई?'—सुरेश ने बाहर से पुकारा।

सोलहवाँ परिच्छेद

महिम—'आओ सुरेश! कुशल से तो रहे?'

सुरेश हाथ का वेग धरती पर रखकर बोला—'अचला सहसा किधर गईं जो अकेले ही खड़े रह गये। मुझे तो चौराहे पर से अचला की वाणी सुनकर तुम्हारे घर का पता चल गया था।'

सुरेश ने अचला का अन्तिम क्रोध-भरा वाक्य सुना था। बोला—'महिम! समझदार बहू मिलने पर लाभ ही लाभ है। अभी इनको यहाँ कुछ दिन भी नहीं हुआ कि गाँव में प्रेम वाली कैसे होती है सीख लिया इन्होंने। वहाँ की औरत भी क्या त्रुटि लेगी!'

महिम का मुँह शर्म से लाल हो उठा; वह चुपचाप खड़ा रहा। सुरेश ने कमरे के भीतर झाँक अचला से कहा—'महिम, मैंने आकर बड़े बेमौके रङ्ग भङ्ग किया, क्षमा कीजिएगा। वाह महिम! तुम तो खड़े रह गये, मुझे बैठने को भी नहीं कहा। चलते-चलते अञ्जर-पञ्जर ढीले हो गये, बैठें चलकर। तुमने रहने की कैसी जगह पसन्द की है। चलो तुम चलकर कलकत्ते ही रहो।'

महिम ने बाहर की बैठक में सुरेश को लेजाकर बैठाया। बैठकर सुरेश ने कहा—'भाभी जी क्या यहाँ आकर परदे में रहने लगी हैं जो मेरे सामने ही न निकलेंगी?'

महिम उत्तर न दे पाया कि अचला स्वयं बगल का दरवाजा खोल अन्दर आ गईं और हँसते हुए बोली—'यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है,

लेकिन अचानक आ कैसे गये ?'

सुरेश बोला—'समझता हूँ इस तरह मेरा अचानक आ जाना ठीक नहीं रहा। लेकिन अभी-अभी यह क्या हो रहा था ? आपसी सङ्घर्ष का यह पहला अवसर है अथवा आरम्भ से योंही चल रहा है ?'

अचला ने हँसते हुए उत्तर दिया—'बोलिए ! आपको कौन-सी बात सत्य जानकर प्रसन्नता होगी ! दूसरी ! तब उसकी बात यह मेहमान का मान रखना ही ठीक होगा।'

सुरेश के चेहरे पर गम्भीरता आ गई, बोला—'घर की स्त्री को तो यही सुहाता है। आपसे किस ने कह दिया कि मेहमान का मान ही रखना ठीक है।'

अचला—'मैं तो यही सोच रही हूँ कि आज की रात हमारी इस गरीब कुटिया में कैसे कटेगी, लेकिन मैं आपको धन्य कहूँगी कि आप जानते हुए भी तकलीफ की परवाह न कर आये।'—फिर महिम की ओर उन्मुख हो बोली—'चन्द्र बाबू का मकान भी पक्का है, वहाँ तो इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो सकेगी। क्या वहाँ नयन बाबू के द्वारा एक रात को सोने का प्रबन्ध नहीं हो सकता ?'

सुरेश और अचला दोनों ही व्यङ्ग के तीखे बाण महिम पर छोड़ रहे थे जिससे महिम का हृदय विदीर्ण हो उठा था; पर विवश था। सुरेश ने हाथ जोड़ते हुए कहा—भाभी जी ! जरा चाय-पानी तो कराओ, पहले तो थकावट दूर हो फिर चाहे जिससे कह प्रबन्ध कराती रहना। लेकिन आपका इस मकान पर इतना लगाव हो गया है, निश्चय ही महिम यह खुशी की बात है।

महिम चुप रहा, अचला ने ही हँसते हुए उत्तर दिया—'यह घर मेरे ससुर साहब का है, इससे लगाव होना ही स्वाभाविक है, लाट साहब की कोठी से नहीं। और फिर खुश होना न होना भी अपने ही हाथ की बात है। पानी पीने के बाद ही स्वचिन्त हो फिर और बात करने तक जरा आराम कर लो।'— हँसती हुई वह मचला कर चली गई।

उसके जाने के बाद ही सुरेश की व्यथा बढ़ गई। उसके स्वभाव में सदैव ही अस्थिरता रही है और वह समझकर भी उससे लज्जित नहीं होता था। जब बचपन में महिम तथा अन्य मित्र के स्वभाव को लेकर ही उसे खयाली 'लहरी' आदि विशेषणों से सम्बोधित करते तो मन ही मन प्रसन्न होता। वह सोचता—माना दृढ़व्रती नहीं भावुकता के अधीन हूँ। लेकिन मेरा हृदय इतना विशाल है कि मेरे किये कभी ओछा काम नहीं हो सकता। मुझे नहीं आता कि पहले जेब देखूँ तब व्यय करूँ और मुझसे कौन योग्य है और कौन नहीं इसी का ध्यान रहता है। जब जिसके प्रति भावुकता उमड़ पड़ती है तो फिर शरीर के कपड़े उतारकर देने में भी पीछे नहीं हटता। पर अचला के सम्बन्ध में पिछले अन्तिम दिनों में उसने कठोर संयम किया था, जिससे वह स्वयं अपने अन्दर एक संयम शक्ति पर विश्वाश के गर्व से फूल उठा। अचला का विवाह हो जाने के बाद भी दो दिन तक वह यही कहता रहा, वह नितान्त भावनाओं का दास ही नहीं, उसमें संयम करने की भी शक्ति है जिसे अवसर पाने पर वह भावना को निभा सकता है। उसने यह भी सोचा कि महिम और अचला दोनों समझेंगे कि मैं मित्र के लिए भी कितना बड़ा त्याग कर सकता हूँ।

लेकिन सुरेश का यह संयम अधिक नहीं चला। अपने विचार से उसने अपने ही को धोखे में रखा था। पूरा एक सप्ताह भी न बीता कि यह विचार कि—मैंने व्यर्थ ही त्याग क्यों किया? इससे मुझे क्या मिला? हृदय का सूनापन! अब मेरा कौन सा सहारा है, जिसके सहारे खड़ा हो सकूँ?

उसे खयाल आ रहा था'''।

बुआजी—'अब मुझे भी एक ऐसी हां बहू आनी चाहिए।'

एक दिन ब्रह्मसमाज के दरवाजे पर ही केदार बाबू मिल गये थे। बोले—'महिम से अचला का ब्याह करने की उनकी इच्छा तो आरम्भ से ही नहीं थी। वह तो अकस्मात् कहीं चले जाने और इधर से उदासीन

हो जाने के कारण से ही उन्हें ऐसा करना पड़ा, पर यह अच्छा नहीं हुआ।'

उसे रह-रहकर यही विचार कचोटता कि इस विवाह से कोई सुखी न हो सका और न वह चाहता ही है कि कोई हो सके। वह तो चाहता है कि महिम अनुभव करे कि उसने अपनी शक्ति से बाहर बढ़कर अचला से शादी की, और अचला भी महसूस करे कि उसने भूल की और अपनी ग्लानि में ही जलती रहे। पर वह विचार सुरेश किसी नीच मनोभावना के कारण कर रहा हो, सो नहीं। वह विवश था। अपनी भावनाओं पर संयम रखने की कोशिश करता, लेकिन विफल रहता। और उससे वह जितना छूटना चाहता उतना ही उसका सारा उत्तर उस भावना के जाल में फँसता जाता और महीना भी न बीता था कि आवेशवश वेग से महिम के यहाँ आ पहुँचा।

सुरेश—'महिम! अब देख, मैंने सच कहा था कि नहीं!'

महिम—'क्या?'

सुरेश—'यही कि अचला का गाँव के समाज में निवाह न हो सकेगा। शहर में रहता हूँ तो क्या, मूर्ख नहीं, सब समझता हूँ। मैंने तो तुमको पहले ही चेता दिया था।'

महिम ने कहा—'ऐसी तो कोई विशेष बात भी नहीं हुई।'

सुरेश—'तुम्हारे घर का खाना-पीना भी विरोध मोल लेना है।'

महिम—'मैंने किसी को खाने पर बुलाया भी नहीं।'

सुरेश—'किसी को नहीं? और मुझे भी बहू ने भात का निमन्त्रण नहीं दिया था?'

महिम—'वह तो हुआ ही नहीं!'

सुरेश—'क्यों? हुआ क्यों नहीं? लेकिन इस तरह कहाँ तक बचोगे? घर-गृहस्थी का मामला है। लड़के-बालों का काम-काज होगा अभी तो और न जाने क्या-क्या। मैं कहता हूँ...।'

अचला ने थाली में नाश्ता और यदु के हाथ की चाय लेकर आ

बातचीत का सिलसिला तोड़ दिया, लेकिन सुरेश के अन्तिम शब्द उसने सुन लिये थे। सुरेश न जान पाया था। जब नाश्ता खतम हो गया तो महिम कन्धे पर दुपट्टा डाल गाँव के मुसलमान जमींदार के लड़कों को अङ्गरेजी पढ़ाने चलने को तैयार हो गया। जमींदार पढ़े-लिखे नहीं हैं, पर उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं और महिम के प्रति तो उनके भाव बड़े उदार हैं। इस कारण भी गाँववाले महिम को अन्य समाज में विवाह करने की धृष्ठता का मज़ा चखाने का मौका पा सके।

अचला—'अगर आज पढ़ाने न जाते तो अच्छा रहता।'

महिम—'क्यों?'

अचला जैसी भी दृढ़मना और मजबूत हृदय की हो, लेकिन सुरेश के गत व्यवहार के कारण उसके साथ अकेला रहने में वह क्या कोई भी स्त्री हो सहमेगी ही। सुरेश की प्रकृति को उसने पहचाना था। वह कितना भी उदात्त हृदय हो, पर आवेग पर उसका वश नहीं रहता। अचला को उससे भय लगने लगा था। जब महिम उस शाम की बेला में भी उसे सुरेश के पास अकेला छोड़ कर जाने को तैयार हो गया तो वह सहसा घबरा उठी। पर घबराहट को किसी और पर प्रकट नहीं होने दिया, हँसकर कहा—'मित्र घर पर मिलने आया है और तुम उसे छोड़कर जाते हो, यह भी कोई तरीका हुआ!'

महिम—'मेरे जाने पर तुम तो यहाँ रहोगी हो, उसके आदर-सम्मान में किसी प्रकार की त्रुटि तो रहेगी नहीं।'

अचला असमञ्जस में पड़ गई। इधर-उधर ताक सुरेश को संकेत कर बोली—'हमारे महाराज हरफन मौला हैं। जब तक उसके पास बैठकर काम न कराया जाय तो फिर उसका बनाया खाना ही कठिन है। अतः मैं तो बैठ नहीं सकूँगी।'

महिम—'अरे, केवल दो घपटे की तो बात है। मेरा रुकना तो मुमकिन न हो सकेगा।'—कह छड़ी उठा बाहर चला गया। अचला को वैसे ही शर्म मालूम हो रही थी कि महिम ने बार-बार कहने पर भी नहीं

माना, लेकिन इससे भी अधिक भय उसे इस बात का होने लगा कि कहीं सुरेश समझ गया हो कि उसके भय के कारण ही वह उसके पास अकेली रहना टाल रही है। इससे तो वह और शर्म से गड़ जायगी।

महिम के बाहर जाते समय ही सुरेश ने उसे सुनाकर कहा—'मुझे तो एक किताब ला दो भाभी, मैं तो उसी से अपना समय बिता लूँगा। तुम जाकर फिर अपना काम करना। इनसे तो कुछ भी कहना व्यर्थ है, तु जो ठान ली सो ठान ली। यह उनकी पुरानी आदत है।'

महिम ने अचला का कभी कोई आग्रह नहीं माना था, पर आज तो जब सुरेश के मुँह से ही अपने पति की कर्तव्य-परायणता का गुणगान सुना तो वह उसे व्यङ्ग के रूप में काँटे की तरह चुभने लगा और चुपचाप वहाँ से चली गई और जाकर नौकर के हाथ ही एक किताब भिजवा दी।

महिम ने काफी रात बीते सोने के लिए पहुँचकर अचला से पूछा—'तुमसे सुरेश ने कुछ कहा—कब तक यहाँ रहेगा?'

एक तो वैसे ही सवेरे अचला महिम से जली-भुनी बैठी थी, इस व्यङ्ग भरे प्रश्न से और भी भभक उठी—'तुम्हारा मतलब?'

महिम ने तो अपने जाने कोई व्यङ्ग न कर साधारण तौर पर ही बात पूछी थी केवल इसीलिए कि वह स्वयं सुरेश से न पूछ सका था, पर उसे यह उम्मीद थी, कि शायद अचला से कहा हो। अचला के इस अप्रत्याशित प्रश्न से वह स्तब्ध रह गया। कुछ बोल न सका।

उसे चुप देख वह स्वयं ही बोली—'तुम समझते हो कि मैं जानती हूँ कि सुरेश बाबू के यहाँ आने का क्या प्रयोजन है और वह कब तक पूरा होगा? तुम्हारा मतलब यही है न?'

महिम दङ्ग रह गया। कुछ देर चुप रहकर सहज स्वकारण हरा—शायद आज तुम मृणाल के व्यवहार से क्षुब्ध हो, इसी कारण हर बात उलटी-पलटी समझती हो। मेरा तो कोई किसी प्रकार का विशेष अभिप्राय न था। वह सब बातें कल करना, इस समय सो जाओ।' कहकर वह करवट बदल कर सोने का प्रयास करने लगा।

अचला भी लेटी रही, लेकिन उसकी आँखों में नींद नहीं थी। उसका मन क्षुब्धता से विह्वल हो उठा था और अन्दर व्यथा में पड़ी घुमड़ रही थी। मन ही मन महिम से प्रश्नोत्तर कर अपने हृदय को काफी रात गये तक विदीर्ण करती रही।

सवेरे जागने में उसे देर हो गई। जब अचला उठकर बाहर आई तब यदु चाय लेकर चौके की तरफ जा रहा था। उसने उससे पूछा—'क्या बाबू कुछ कह गये हैं?'

यदु—'एक पहर दिन चढ़े लौट आने को भी कह गये हैं।'

महिम सवेरे ही उठकर खेत देखने चला जाया करता था और सदैव दोपहर होने पर लौट आता था।

अचला—'नये बाबू जागे?'

यदु—'जग गये और उन्होंने चाय बनाने को भी कहा।'

अचला ने जल्दी से हाथ-मुँह धो डाला और फिर कपड़े बदलकर सुरेश के पास बाहर गई तो देखा कि सुरेश कमरे के सारे दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर एक दरवाजे के पास बैठा वही कल वाली पुस्तक पढ़ रहा है। अचला की पद-चाप उसके कानों में पड़ी तो उसने ऊपर आँख उठाई और अचला के मुँह पर रात में जागते रहने की रेखाएँ साफ देखीं। चेहरे पर सुस्ती और आँख में फीकापन है। उसके चेहरे को देख उसे जलन होने लगी और निनिमेष उस ओर देखता ही रहा। अचला उसके इस एकटक देखने का मतलब न समझ सकी, पर उसे विस्मय अवश्य हुआ, पूछा—'कितनी देर हो गई? मैं तो आज जरा देर से ही उठी हूँ।'

सुरेश ने धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा—'यह तो दिखाई ही पड़ रहा है।'—अचला की दृष्टि जैसे ही सामने की दीवार पर टँगे शीशे पर पड़ी उसने सुरेश के उक्त कथन का आशय समझ लिया और सहसा अपनी उस विकृत मुख-मुद्रा से शर्म के मारे गड़ गई। उसे कुछ रास्ता ही न सूझा कि आखिर इस मुरझाये मुँह को कहाँ ले जाय, और सुरेश ने अपने मन में जो विचार पैदा कर लिया है, उसको कैसे खतम किया जाय।

जब कुछ न सूझा तो—'आपके लिए चाय ले आऊँ?'—कह जल्दी से बाहर चल दी।

सुरेश चुप रहा, केवल अचला बैठी रहकर आकाश के सूनेपन को अपनी अर्थहीन दृष्टि से देखती रही, दस मिनट बाद जब अचला चाय का सामान लेकर आई तब तक सुरेश ने अपने को संयत कर लिया था। चाय पीते समय उसने अचला से पूछा—'तुम नहीं पीओगी?'

अचला—'मैंने अब चाय छोड़ दी है।'

सुरेश—'क्यों?'

अचला—'यहाँ गर्मी बेहद है। पीने से नींद ठीक तरह से नहीं आती। कल तो रात भर जागती रही, नींद न आई।'—फिर हँसी और बोली—'एक रात में ही जागने से चेहरा विकृत हो जाता है, किसी को वह विवर्ण मुँह दिखाया ही नहीं जाता। और फिर अब सुहाता भी नहीं।'

थोड़ी देर चुप रहकर सुरेश बोला—'महिम आग्रह नहीं करता? तुम तो बचपन की चाय पीने की आदी थीं!'

अचला हँस दी, बोली—'आग्रह करें भी तो उसकी परवाह है किसे, फिर चाय से कोई लाभ भी तो नहीं।'

कुछ देर बाद उसने पूछा—'तुम तो मेरे स्वभाव से परिचित हो कि मैं सीधी बात कहना जानता हूँ, ज्यादा घुमा-फिरा कर कहना आता नहीं। तुमसे कुछ साफ साफ पूछूँ तो कुछ एतराज तो न होगा?'

अचला—'भला मुझे एतराज क्यों होगा!'

सुरेश—'क्या यहाँ तुम्हारा जीवन सुख से कट रहा है?'

सहसा अचला का हँसता चेहरा गम्भीर हो आरक्त हो उठा, बोली—'यह ठीक नहीं कि आप ऐसी बात पूछें!'

सुरेश—'क्यों?'

अचला—'नहीं! ठीक नहीं कि आप यह भी विचार करें कि मुझे यहाँ सुख है अथवा नहीं।' सुरेश उदास हँसी हँसकर बोला—'सिर्फ

दो ही माह पूर्व मुझे यह सब सोचने का अधिकार था, आज क्या वह छिन गया। यदि ऐसी ही बात है तो जाने दो, न पूछूँगा। मन पर मेरा अधिकार नहीं, मन में आया पूछ बैठा। सच-सच जानना चाह कर ही लौट जाता। जब से यहाँ आया हूँ तभी से मन में उधेड़बुन लगी है।' कभी तो समझता हूँ कि पराजित हो गया और कभी इसके विपरीत जान पड़ता है कि विजय हुई। सत्य है क्या एक बार बता देती अचला?'

अचला रुआँसी हो उठी, मगर उसेउसने किसी तरह दबा दिया और पूरी दृढ़ता से कहा—'मैं सुखी हूँ!'

सुरेश—'तो ठीक ही है।'

दोनों ही शान्त रहे। सहसा नींद से जागते से सुरेश ने कहा—'एक बात और। मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या सहा, कभी तुम्हें···?'

अचला ने दोनों कानों में अँगुली दे ली—'क्षमा कीजिए, मुझे इन बातों के लिए···।' और व्यथित हो भागना चाहा। पर सुरेश ने राह रोककर कहा—'तुम्हें बताना ही होगा। क्षमा तो मैं कर नहीं सकता।'

सुरेश की चितवन ऐसी थी, अचला उसकी याद आते आज भी रोमाञ्चित हो जाती है। वह सहम कर थोड़ा पीछे हट गई और बोली—'पूछिए।'

सुरेश—'मैं अभी तो होश में हूँ। डरो मत, तुम्हें पकड़ूँगा नहीं।' कह वह कुर्सी पर बैठ गया और बोला—'मेरा तुम पर अब अधिकार नहीं रहा, वह मैं खो चुका, पर मेरे ऊपर तो तुम्हारा अधिकार आज भी है···।'

अचला ने बीच में ही बात काटकर रोक दिया—'मेरे वह किसी काम का नहीं।'—उसने सुरेश के चेहरे से साफ अनुभव किया कि उसके वाक्य ने सुरेश के अन्तर को विदीर्ण कर दिया, और स्वयं को भी उसका शिकार होते अनुभव किया। थोड़ी देर की निस्तब्धता के बाद उसने कोमल स्वर में कहा—'आपकी ऐसी बातें छेड़ना उचित नहीं, मेरे लिए तो उनका सुनना भी पाप के बराबर है, मुझे उनसे दुःख होता है।'

सुरेश ने कहा—'अचला, तुम्हें कष्ट होता है ?'

अचला सहसा कह बैठी—'मेरा दिल पत्थर का तो है नहीं।'

सुरेश उसके चेहरे पर दृष्टि जमाये रहा। पर अचला ने आँखें झुका लीं।

सुरेश—'यही मेरे सारे जीवन का धन है, मुझे इससे अधिक और किसी बात की कामना नहीं।'—कह चुप हो गया। फिर बोला—'तुम्हारा दिल पत्थर नहीं तो यह मेरी तुमसे अन्तिम प्रार्थना है, तुम्हारे कारण मैंने कष्ट-ही-कष्ट झेले हैं तो अब मैं यह चाहता हूँ कि मेरे ही ऊपर तुम्हारे समस्त दुखों का भी भार हो। यह मेरी भीख है तुमसे अचला। इससे मुझे वञ्चित मत करना।'—कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया। गत व्यथा से उद्गारित अचला के आँसुओं का स्रोत भी बह निकला।

महिम ने उसी समय आकर पूछा—'चाय-वाय पी ली सुरेश ?'

सुरेश से उत्तर ही न बन पड़ा। उसने आँखें नीची कर आँसू पोंछा और अचला तो वहाँ बैठी न रह सकी, पल्ले से मुँह ढक तेजी से अन्दर चली गई। महिम स्तब्ध खड़ा रहा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

महिम स्वस्थचित्त हो एक कुर्सी पर बैठ गया। जो परिस्थिति सुरेश के सामने आई थी उससे अपनी स्थिति की सफाई स्वरूप अवश्य ही झूठ गढ़ लेता है, इस आशा में कि वह अपनी सफाई में सफल हो जाय, यह मनुष्य का मनोवैज्ञानिक स्वभाव होता है। सुरेश ने भी वैसा ही किया। पलक मारते ही उसने इस स्थिति की सफाई गढ़ डाली और चेहरे पर हँसी लाकर कहा—'मैं बड़ा भावुक होता जा रहा हूँ।'

महिम शान्त रहा, किसी प्रकार की अधीरता व्यग्रता उसके चेहरे पर न आई, न उसने कुछ पूछा ही। सुरेश स्वयं ही अपनी सफाई का विस्तार करने लगा—'न जाने क्यों महिम! जब मैं अचला को रोते देखता हूँ तो अनायास ही मेरी भी आँखें भर आती हैं। आँसुओं

की धार रुकती ही नहीं। केदार बाबू बहुत बीमार हो गये थे। मैं न जाता तो उनका बचना ही दूभर था। लेकिन उनका मिज़ाज इतना सख्त है कि अपनी एकलौती लड़की को भी बीमारी की सूचना न दी। ब्याह के समय नाराज़ होने का गुस्सा अब तक शान्त नहीं हुआ। मैं अपनी तरफ़ से तो बहुत समझा हारा…।'

महिम—'तुमने चाय तो पी ली?'

सुरेश—'हाँ, पी ली। मैं कह रहा था किसी का पिता ऐसी उदासीनता दिखाये तो किसका हृदय न भर उठेगा। पुरुष तक नहीं सह पाते, फिर ये स्त्री ठहरीं!'

महिम—'ठीक है तुम्हारा कहना। तुम रात में ठीक तरह से सो तो सके न! शायद नई जगह होने के…।'

सुरेश—'नहीं! बड़े आराम से रात कटी। महिम! बड़े आश्चर्य की बात है कि केदार बाबू ने अपनी बीमारी की खबर तक भी न दी।'

महिम—'सो तो है ही।'—हँसकर कहा—'कहीं घूमने चलने का इरादा है? हाँ, फिर झट हाथ-मुँह धो तैयार हो लो। मैं भी घण्टे भर बाद कहीं बाहर जाऊँगा। अभी तक सवेरे का काम ही पड़ा है।'

सुरेश ने पुस्तक की ओर देखकर कहा—'मुझे यह कहानी अच्छी जँची, इसी को खतम कर लूँ।'

महिम—'तुम्हारी मर्ज़ी, दो घण्टे में मैं भी आता हूँ।' और वह चला गया। सुरेश, जिधर महिम गया था लज्जा भाव से एकटक देखता रहा। उसने महिम को सन्तोष देने के लिए सफाई गढ़ कर दी थी। महिम ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया और यह असफलता उसके सारे हृदय को क्षोभ और लज्जा से विदीर्ण किये डाल रही थी।

अचला ने दोनों की बातें किवाड़ की ओट में खड़े होकर सुन ली थीं। जब महिम कमरे में कपड़े बदलने गया तो वह भी ओट से हटकर उसके पीछे हो गई। महिम ने जैसे ही उसकी ओर दृष्टि की, अचला

ने पूछा—'क्या मेरे पिता से कोई बड़ा अपराध बन पड़ा है ?'

महिम इस प्रश्न का मतलब न समझ सकने के कारण उत्सुक दृष्टि से उसकी तरफ समझने का प्रयास करता-सा देखता रहा ।

अचला—'शायद मेरी बात समझे नहीं ।'

महिम—'नहीं ! समझना तो निश्चय ही कठिन है, लेकिन कटु होते हुए भी अस्पष्ट नहीं ।'

अचला को क्रोध तो आया, लेकिन वह उसे पी गई । समझना तो कठिन नहीं जितना उसको स्वीकार करना है । सुरेश बाबू पर जो तुम अपनी बातों से उदासीनता प्रकट करते रहे वैसा करने का सम्भवतः मेरे सामने साहस नहीं होता, मुझे स्पष्ट रूप से कहिए कि वास्तव में तुम मेरे पिता की बीमारी की खबर पर इस प्रकार की उदासीनता ही प्रकट करोगे ?'

महिम—'नहीं । उदासीनता तो नहीं । पर कर ही क्या सकता हूँ ?'

अचला—'क्यों नहीं कर सकते ?'

महिम अचला की यह बात सुनकर बोला—'सुरेश को भी क्या जरूरत थी अभी यह बात कहने की और तुमको भी क्या जरूरत थी कि मुझे इस तरह कुरेदकर सख्त बात कहने की ।'—महिम का स्वर सख्त था—'मैं व्यर्थ में गँदले पानी को उलीचना पसन्द नहीं करता ।'—कह कर बाहर जाने को उद्यत हो गया । पर अचला तपाक से रास्ता रोक खड़ी हो गई । क्षण भर दाँतों से ओठों को दबाकर अपने आवेश को दबाने का प्रयास करती रही । फिर बोली—'क्या किसी विशेष कार्य से बाहर जाना है ? दो मिनट बात करने के लिए नहीं ठहर सकते ?'

महिम—'क्यों नहीं !'

अचला—'तो फिर साफ ही कर दीजिए । गँदले पानी में कीचड़ हो तभी वह गँदला हो जाता है । उसे ही उलीच देने पर कीचड़ निकल आती है न !'

महिम—'हाँ ।'

अचला—'मैं भी नहीं चाहती कि व्यर्थ में पानी उलीचा जाय। पर उसे उलीच कीचड़ साफ करना भी तो जरूरी है। और जब एक-न-एक दिन सफाई करनी होगी तो फिर क्यों आज ही न कर डालो। अच्छा है जितनी जल्दी गन्दगी से छुटकारा मिल जाय।'

महिम—'वैसे तो मुझे कोई एतराज नहीं; पर आज तो मुझे उससे भी जरूरी काम है। फिर कभी।'

अचला—'अच्छा, तब तक मैं प्रतीक्षा करती रहूँगी। इस काम के बाद तो कर सकने का अवकाश मिल जायगा न!'—कह उसने महिम को रास्ता दे दिया। महिम चला गया और जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया तब तक अचला उसे देखती रही। बाद में किवाड़ बन्द कर लिये।

जब अचला घण्टे भर बाद उदास चेहरे से सुरेश के पास स्नान करने को कहने गई तब सुरेश अपने सूटकेस में कल के उतारे कपड़े रख रहा था, उसने अचला के चेहरे को देखते ही समझ लिया कि निश्चय ही अभी महिम से किसी कारण कलह हो गया है। यह अनुभव कर उसका मन सङ्कोच से भर उठा। न कुछ अपनी कह सका और न उसी से पूछने का साहस कर सका।

अचला—'क्या कर रहे हो?'

सुरेश—'एक बजे की गाड़ी से जाने की तैयारी।'

अचला को विस्मय हुआ, पूछा—'क्या आज ही जा रहे हैं?'

सुरेश—'हाँ।'

अचला—'क्या बात हो गई जो इतनी जल्दी ही चल दिये?'

सुरेश—'तुम लोगों की खैर-खबर लेने आया था, मिल गई। बस, चल दिया।'

थोड़ी देर की शान्ति के बाद अचला बोली—'तो फिर लाइए मैं ठीक से रख देती हूँ, आप वहाँ से उठ जाइए। यह तो हम लोगों का काम है, आपका नहीं।'

सुरेश—'आप कष्ट न कीजिए, सब कर लूँगा···।'

बात पूरी भी न कह पाया था कि अचला ने आगे बढ़कर सूटकेस उसके हाथ से ले लिया और उसमें से सारी चीजें निकाल डालीं और फिर सरिया सरिया कर बक्स में रखने लगी। सुरेश सहमा-सा पास ही खड़ा कहता रहा—'आप क्यों तकलीफ करती हैं! मैं तो खुद ही कर लेता···।'

अचला ने कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर बाद कहा—'आपके न तो बहिन है न स्त्री वर्ना यह काम आपको न करने देकर स्वयं ही करती। सम्भवतः आपको भय हो कि कहीं आपके मित्र न आ टपकें। क्यों? ठीक कह रही हूँ न! पर हर दशा में यह काम तो औरतों के ही करने का है।'

सुरेश चुप खड़ा रहा। वह नहीं जानता था कि उसमें और महिम में अभी जो बात हो चुकी है उसे अचला जानती है। अतः वह अपनी तरफ से उन्हें कह अचला के मन को और भी व्यथित नहीं करना चाहता था। और साथ-साथ डर भी रहा था कि कहीं वास्तव में महिम आ न जाय।

कपड़े ठीक से रखने का काम समाप्त कर अचला बोली—'पिता जी की बीमारी की चर्चा बेकार में क्यों कर बैठे! उन्होंने उस पर कहा तो पिता जी का अपमान ही हुआ।'

सुरेश चौंक उठा, बोला—'तुमसे किसने कहा, महिम ने?'

अचला ने बगल के दरवाजे की तरफ संकेत कर कहा—'वहीं खड़े-खड़े मैंने अपने कानों से स्वयं ही सुना था।'

सुरेश सकुचा गया, बोला—'अचला, इसके लिए मुझे क्षमा करो।'

अचला ने मुस्कराते हुए पूछा—'काहे के लिए! आज मेरे आचरण के कारण तुमको और पिता जी दोनों ही को अपमानित होना पड़ा इसके लिए आपको क्षमा की आवश्यकता नहीं, आपने जो भी गढ़कर कहा वह केवल मुझे लज्जा से बचाने के लिए ही न किया। मैं इतनी नीच

नहीं कि इसी कारण आपको अपने से ही माफी मँगवाऊँ।'

अचला का आशय सुरेश समझ न पाया, यह अचला ने उसकी ओर देखकर, सुरेश की जिज्ञासु आँख से अनुमान लगा लिया। थोड़ी देर बाद उसने कहा—'आप आज रुक जाइए। आज आप मेरे ही कारण लज्जित होकर जा रहे हैं। घर पर मेरा भी कुछ अधिकार है। इसी अधिकार से आप से यहाँ और थोड़े दिन तक रहने का आग्रह करती हूँ!'

अचला का आग्रह देख सुरेश गद्‌गद्‌ हो गया। पर क्या कहे क्या न कहे यही सोच रहा था कि उसने महिम को लौटते देखा। अचला सूटकेस के सामने उसकी ओर को पीठ किये बैठी थी। सुरेश डरा कि कहीं अचला महिम का आना न जान और कुछ न कह बैठे। अतः उसे सचेत करने के लिए कह उठा—'काम पूरा कर आये महिम?'

'पूरा कर आया।'—कह कमरे में घुसते अचला को सूटकेस के पास देख विस्मित भाव से पूछा—'यह क्या हो रहा है?'

अचला ने घूमकर महिम को देख लिया, पर उसका कुछ भी उत्तर न दे सुरेश से बोली—'आप तो हमारे भी घनिष्ठ हैं और जो कुछ आपने हमारे लिए कष्ट सहे हैं उससे तो आप हमारे बिलकुल अपने ही हो गये हैं। यदि आप इस तरह सहसा चले गये तो मुझे बड़ा दुःख होगा।'

सुरेश ने ऊपरी हँसी हँस कहा—'भला देखो इनकी बातें महिम! अरे भाई आया था तुम लोगों की खैर-खबर लेने, अब चल दिया, नाहक में रोकने से क्या लाभ और मुझे भी इसमें कष्ट होगा।'

महिम ने सरलता से कहा—'शायद गुस्सा होकर जा रहे होगे। इस तरह ये जाने नहीं देना चाहतीं।'

अचला ने तीखे स्वर में कहा—'शायद तुम तो चलते ही होगे।'

सुरेश इससे क्षुब्ध हो उठा और इस कटु सिलसिले को समाप्त करने के उद्देश्य से हँसते हुए बोला—'क्यों ख्वामख्वाह का गुस्सा होने का दोष मुझ पर लगाते हो। भाई, मेरे रुकने से ही तुम्हें खुशी है तो मैं कुछ दिन और रुका जाता हूँ। भाभी! फिर कपड़े रखने की आवश्यकता

नहीं।'—और महिम की ओर उन्मुख होकर बोला—'चलो तुम्हारे तालाब में चलकर नहाया जाय। जरूरत पड़ने पर बाद में एक शीशी कुनैन ही खा लेंगे।'

अठारहवाँ परिच्छेद

सुरेश ने उस वेदना, क्षोभ और कटुता को ज्यों-त्यों सहन कर ऊपर से प्रसन्नता का प्रदर्शन कर दिन बिता दिया। लेकिन अचला को गहरी वेदना पहुँची थी, वह उस प्रकार दिन न बिता सकी।'

महिम इन सारी घटनाओं के दौरान में अत्यन्त गम्भीर, धीर, शान्त रहा। पर अचला और सुरेश को इसी बीच अपने व्यवहार पर बनावटी आवरण डालना पड़ा था जिसके कारण अचला का हृदय स्वयं के आचरण पर आत्मग्लानि से भर उठा और उसे जीवन भारस्वरूप हो गया। उसने अब तक महिम का दिल न जान पाया था, निस्सन्देह उसकी बुद्धिमत्ता का उसे खूब अच्छी तरह ज्ञान हो गया था, और वह खूब समझ रही थी कि यह बनावटी आवरण महिम की तीक्ष्ण बुद्धि की पकड़ से बचा नहीं रहा। उसके दिमाग में ज्यों-ज्यों यह धारणा जड़ पकड़ती जा रही थी, त्यों-त्यों वह और भी विदीर्ण हृदय होती जा रही थी, क्षोभ और व्यथा बढ़ती जा रही थी और ऊपर से यह कि महिम आज दिन भर घर से कहीं गया नहीं। सुबह घर में दाल-चावल बनते थे, उसे खाकर भी वह वहीं रहा और रात को घर में पूड़ी साग बनती थी, उसे खाकर भी वहीं ही रहा। इस कारण अचला का सारा दिन इसी तरह अन्तर-जलन में ही बीता।

काफी रात बीते तक दोनों ही बिस्तर पर पड़े पढ़े जागते रहे। अचला रह-रहकर करवटें बदल दिल की बेचैनी का सामना कर रही थी। महिम पढ़ रहा था। जब अन्त में अचला से नहीं रहा गया तब उसने कहा—'अब रोशनी बन्द कर दो। रोशनी में मुझे नींद नहीं आती।'

'क्षमा करो। मुझसे भूल हुई।'—अचला के कहने से उसने झटपट

रोशनी बन्द कर किताब रख दी, और चुपचाप बिस्तर पर आ सो रहा। अचला ने धन्यवाद तक न दिया। रोशनी बुझ जाने के बाद अचला को नींद कहाँ? उलटे रात की दौड़ के साथ-साथ अन्धकार की निस्तब्धता उसको और काटने लगी। जब उसकी सहन शक्ति सीमा से बाहर हो गई तब उसने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—'यह तो बताओ जरा कि कोई भी मनुष्य गलती करे चाहे वह जाने में हो अथवा अनजाने में, पर उसने गलती की है, उसे उसका दण्ड तो भोगना ही पड़ता है न? मैं झूठ तो नहीं कह रही हूँ!'

महिम—'जिन लोगों ने दुनिया देखी है, उनका मत तो यही है।'

फिर थोड़ी देर की शान्ति के बाद अचला बोली—'हम दोनों की गलती का परिणाम अभी से फल लाने लगा। कहाँ जाकर उसका अन्त होगा, सो क्या तुम अनुमान लगा सकते हो?'

महिम—'नहीं।'

अचला—'लगा तो मैं भी नहीं सकी। पर हाँ, इतनाजरूर सोच सकी हूँ कि गलती करने वाले स्त्री पुरुष हैं तो अधिक दण्ड का भागी पुरुष को ही होना चाहिए।'

महिम—'जरा और गहरे में जाकर सोचो तो समझ सकोगी कि स्त्री का दण्ड-भोग पुरुष से किसी प्रकार कम नहीं होगा। लेकिन तुम्हारे इस प्रश्न का तात्पर्य क्या है? सुरेश अथवा मैं?'

अचला काँप गई, अँधेरा था फिर भी महिम से वह छिपा न रहा। थोड़ी देर बाद फिर अचला ने ही निस्तब्धता भङ्ग की, बोली—'तुम मेरे ही मुँह पर एक न एक दिन मेरा घोर अपमान करोगे यह मैं जानती थी। बात शुरू होने पर उसका अन्तिम फल क्या होगा किसी के अनुमान की बात नहीं। मुझसे कलह नहीं हो सकता और न कलह के बीच तुम्हारी गृहस्थी ही सँभल सकती है। मैं तो कल नहीं तो परसों बाबूजी के पास वापस चली जाऊँगी।'

महिम—'बाबूजी को अचम्भा तो होगा ?'

अचला—'उन्होंने तो मुझे बार-बार सचेत किया था कि इस सम्बन्ध का फल अच्छा न होगा। वे पहले ही से ये सब बातें समझते थे। कलकत्ते की बात दूसरी है, पर गाँव में अपने सगे-सम्बन्धियों से अलग हो केवल स्त्री का ही होकर रहे सो अधिक दिन सम्भव नहीं। उन्हें मेरे लौट आने पर अचम्भा तो न होगा और चाहे वे कुछ भी सोचें।'

महिम—'फिर तुमने उनका कहा माना क्यों नहीं ?'

अचला ने उमड़ती व्यथा को रोककर कहा—'मेरा विश्वास था कि तुम जो काम भी करते हो उसे खूब सोच समझ कर करते हो।'

महिम—तो क्या, अब यह विश्वास जाता रहा ?'

अचला—हाँ।'

महिम—'शायद तभी तुमने सोचा कि अब साझे के कारोबार में लाभ की आशा नहीं, इससे नाता तोड़ देना ही अच्छा है।'

अचला—'हाँ।'

थोड़ी देर बाद महिम बोला—'यही बात है तो जाओ और यदि तुम्हारी समझ में यह सब एक कारोबार के ही बराबर है तो फिर हमारे तुम्हारे मतों में एकता भी नहीं हो सकती, पर हर बात और कारोबार को तो और भी समझने में समय लगता है। यदि कभी तुम महसूस करो कि तुमने समझने में भूल की थी तो निःसङ्कोच लिख देना, मैं तुरन्त लिवा लाऊँगा।'

अचला के आँसू बह रहे थे। उन्हें पोंछ कण्ठ को साफ कर बोली—'एक बार अनुभव कर मनुष्य बार-बार गलती नहीं करता। आशा है तुम्हें मुझे बुलाने का अब कष्ट न करना होगा।'

महिम—'आगे की बातें भविष्य ही जानता है, तब की तब देखी जायगी, अब आज तो मुझे क्षमा करो।'

अचला महिम के इस कटु-वाक्य से दुखित हो उठी, बोली—'हँसी मत समझो। मैं तो निश्चय ही कल परसों चली जाऊँगी।'

महिम—'और मैं रोकना भी नहीं चाहता।'

अचला और भी आवेश में बोली—'तुम मुझे मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं रोक सकते।'

महिम आवेश में नहीं आया, बोला—'पर अभी से यह ऊधम क्यों मचा रखा है। कल परसों जाओगी! अभी काफी समय है, सोच समझ लिया जायगा।'—यह कह वह करवट बदल सोने का उपक्रम करने लगा।

दूसरे दिन प्रातः चाय पर अचला और सुरेश की बातचीत हो रही है।

सुरेश—'जान पड़ता है आज भी महिम सुबह तड़के ही उठकर खेती बाड़ी का निरीक्षण करने चला गया।'

अचला—'उनके कार्यक्रम में भला उलट-पुलट हो सकती है! चाहे दुनिया भले ही पलट जाय।'

सुरेश ने प्याला मेज़ पर रखकर कहा—'महिम के जीवन का एक क्रम है, उसी क्रम की गति में निरन्तर उसका जीवन यन्त्रवत् चलता रहता है। हम से तो वह लाख अच्छा ही है।'

अचला—'यन्त्रवत् चलता रहता है, क्या इसी कारण उसकी तारीफ कर रहे हैं?'

सुरेश—'उसके क्रम में एक स्थायित्व है जो मेरे जीवन में सम्भव नहीं जान पड़ता। यही मेरी कमजोरी है, यह मैं भी अनुभव करता हूँ। इसी कारण उसकी तारीफ किये बिना नहीं रह सकता। अचला, मैं चाहता था कि आज घर चला जाऊँ।'

अचला—'अवश्य जाइए। कल तो मैं भी जा रही हूँ।'

सुरेश को अचला के कहने पर विस्मय हुआ, उसने पूछा—'कहाँ?'

अचला—'कलकत्ता।'

सुरेश—'अचानक ऐसी क्या बात हो गई! कल तक तो कोई विशेष बात नहीं थी?'

अचला—'पिताजी अस्वस्थ हैं, उन्हें देखने।' सुरेश आशङ्कित स्वर में बोला—'अस्वस्थ पिता को देखना चाहती हो, यदि यह सत्य है तो

जाना उचित ही है, पर मुझे भय है कि कहीं मेरे ही कारण तुम दोनों में कुछ कहा सुनी ······।'

अचला चुप रही। सुरेश ने सामने से जाते हुए यदु को बुलाकर पूछा—'क्या तुम्हारे बाबू खेत से लौट आये?'

यदु—'वे आज तो गये ही नहीं। पढ़ने के कमरे में पड़े सो रहे हैं।

अचला ने लपक कर देखा कि महिम कुर्सी के सामने की मेज पर पैर रख सो रहा है। अचला महिम के कार्य-क्रम में इस प्रकार अनायास का परिवर्तन देखकर भौंचक रह गई। यह उसके लिए महिम के सम्बन्ध में बिलकुल नया ही अनुभव था। वह चुपचाप कमरे में घुस गई। सामने की खुली खिड़की से सवेरे की सूर्य-किरणों ने आकर महिम के चेहरे पर उसके व्यथित, चिन्तित और उद्विग्न हृदय-स्थिति की रेखाएँ स्पष्ट उभार दी थीं, जिन्हें अचला की आँखों ने आज ही देख पाया था। मुख-मुद्रा व्यथा-वेग से विकृत हो गई थी। यह सब देख उसे बिना जगाये ही वह लौटी जा रही थी कि राह में रखे पीकदान से टकरा जाने के शब्द से महिम की नींद टूट गई। अचला सहम गई, बोली—'इस समय क्यों सो रहे? क्या तबीअत ठीक नहीं?'

महिम उठ बैठा। बोला—'आश्चर्य ही है जो अब तक बीमार नहीं पड़ा, वरना ऐसी दशा में बीमार हो जाना असम्भव नहीं।'

अचला यह सुनकर चुपचाप कमरे के बाहर चली गई।

सुरेश खाने के बाद अपने जाने की तैयारी में लगा था और महिम उसके पास बैठा था। दोनों ही आपस में बातें करते जा रहे थे।

अचला ने दरवाजे के पास आकर कहा—'यदि सम्भव हो तो जाकर पिताजी से मिलकर कह दीजिएगा, कल मैं भी आ रही हूँ।'

सुरेश को अचम्भा हुआ। महिम से उसने पूछा—'क्या यह सचमुच ही कलकत्ते जा रही हैं और तुम इन्हें भेज रहे हो!'

अचला की इस बात से महिम व्यथित हो गया था, पर ऊपर से हँसता हुआ बोला—'कल क्यों, आज भी तो तुम्हारे साथ भेज सकता

हूँ। हमारे गाँव में व्यर्थ में नाटक खड़ा करने की चलन नहीं। यही एक रुकावट बन सकता है।'

सुरेश का चेहरा लाल हो गया, वह झेंप गया था, लेकिन अचला ने तुरन्त ही हँसते हुए उत्तर दिया—'आप आज और ठहर जायँ तो फिर कल मैं आपके ही साथ चली चलूँगी। इसमें लज्जा का कोई कारण नहीं। पिता जी की बीमारी में जाना है और फिर हम शहर के रहने वाले ठहरे।'

सुरेश अचला की इस बात से और भी झेंप गया और उसका चेहरा उतर गया। उसने सिर झुकाये ही कहा—'मैं तो अब बिलकुल नहीं ठहर सकता। आप को आना है तो आप कल आती रहिएगा।'—कह वह अपना बक्स ले सहसा जाने को खड़ा हो गया।'

एक बार तो अचला भी सुरेश की इस जाने की झेंपपूर्ण आतुरता को देख ऊपर से नीचे तक सिहर गई और उद्विग्न हो बोली—'पर अभी तो गाड़ी जाने में काफी देर है। थोड़ी देर और रुककर मेरी दो बातें सुनने का और कष्ट कीजिए।'—उसके स्वर में व्यथा थी और उसे व्यक्त करने का व्यग्र आग्रह जिसे देख सुरेश और महिम दोनों ही सहसा चकित हो गये।

अचला ने उनकी तरफ ध्यान ही न दिया, बोली—'सुरेश बाबू! तुम्हीं हम लोगों के दुःख के साथी हो, तभी आपसे कहती हूँ कि मैं तो आपके किसी काम न आ सकी, पर आप कृपाकर पिता जी से जाकर यह जरूर कह दीजिएगा कि यहाँ मैं कैद में हूँ। ये लोग मुझे कहीं नहीं जाने देते। इनकी कैद में योंही मर जाऊँगी, अगर मुझे योंही डाले रखा गया। मैं इनकी गृहस्थी नहीं चला सकती, जिनसे मुझे प्रेम नहीं। मुझे बुला लें।'

महिम स्तब्ध खड़ा सुनता रहा। सुरेश के तेवर चढ़ गये और तीव्र स्वर में बोला—'महिम, तुम्हें यह अधिकार नहीं कि तुम इनके साथ जानवर का-सा दुर्व्यवहार करो। ये स्त्री हैं तो क्या हुआ?'

महिम ने अपने को संयत कर कहा—'मैंने तो कभी किसी से किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया और अचला तुम जरा सोचो तो! तुम कह क्या रही हो? सुरेश यह उचित ही होगा कि तुम आज ठहर कर कल इन्हें अपने साथ ही लेते जाओ। मैं चलकर स्टेशन तक पहुँचा आऊँगा, जिससे गाँव वालों को भी व्यर्थ का नाटक खड़ा करने का अवसर न मिलेगा।' फिर थोड़ी देर तक शान्ति रही। महिम फिर बोला—'अब तो तुम दोनों ही कल जाओगे। कपड़े उतार कर बैठो, मैं जरा काम से जा रहा हूँ, एक घण्टे में लौटूँगा।' वह विना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये धीरे-धीरे बाहर चला गया।

अचला चौखटे पर निस्तब्ध खड़ी रही। सुरेश भी थोड़ी देर तक सिर झुकाये शान्त रहा। फिर एकाएक खिलखिला कर हँस पड़ा, बोला—'यह भी खूब रहा! अच्छा खासा नाटक ही बन गया था, और अपना-अपना पार्ट हम दोनों ने निभाया भी खूब! मियाँ के घर में ही उसी की स्त्री के सामने और उसी की स्त्री के सम्बन्ध में डाँट बता दी उसको और वह भी अभिनय पर शाबाशी दे गया। मुझे पूरा विश्वास है कि महिम पूरे नाटक पर खिलखिला कर हँसेगा, इसीलिए हम लोगों के सामने से चला गया है।' फिर हँसते हुए अचला से बोला—'भाभी, जरा शीशा ला दो, चेहरा तो देखूँ, कैसा लगता है। पर अचला खड़ी रही निस्तब्ध। उसके चेहरे का रङ्ग उड़ गया था। सुरेश के शीशा माँगने पर एक ठण्डी साँस छोड़ वहाँ से चली गई।

मनोवैज्ञानिक को अचला की उस समय की मनोदशा का अनुमान लगाने में जरा भी कठिनाई न होगी, जब वह रात को उसी बिस्तर को ठीक करने के लिए गई जिससे आज नफरत होनी चाहिए थी वह चूँकि नित्य का बँधा काम था, अतः उसे यन्त्रवत् कर लौट रही थी कि बगल के कमरे में रखे मेज पर पड़े एक सोख्ते के टुकड़े पर सिर्फ एक ही पंक्ति की चिट्ठी पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस पर न तो तारीख थी और न दिन का ही हवाला था। सिर्फ लिखा था—'तीन दिन हो गये तुम्हारी

प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बैठी हूँ। तुम कहाँ हो दादा जी? पत्र मृणाल का था। पत्र को पढ़ अचला स्तब्ध रह गई, उसकी ओर एकटक देखती रही। वह तो कुछ नहीं जानती थी कि इसे कब और कौन दे गया था। पत्र का क्या विशेष अभिप्राय है? मृणाल का घर किधर है? कैसे कैसे जाना होता है? आदि जानने को वह व्यग्र हो उठी, पर कुछ चारा न था। वह तो अपने दिल में बार-बार उसी एक लाइन पर घुमड़ती रही। सन्ध्या के आगमन स्वरूप झुलमुला हो चला था और घर में तो वह और भी गहन प्रतीत होकर नीरवता का सञ्चार कर रहा था, जिसमें अचला अपने ही शङ्काकुल हृदय के उत्पीड़न से विदीर्ण हो, अपने अन्तर को छलनी किये डाल रही थी। जब घनीभूत व्यथा के भार से उसका अन्तर फूट निकला तो वह स्वयं ही उस स्वर से चौंक उठी और उसे अपनी अवस्था का भान हुआ तब उसने देखा कि आँगन में भी अँधेरा हो गया है, नौकर बाहर के कमरे में रखने को रोशनी लिये जा रहा है।

अचला—'यदु! क्या बाबू आ गये?'

यदु—'अभी तो नहीं, माँ जी।'

अचला समझ गई कि महिम दोपहर के कलह के बाद से ही घर वापस नहीं लौटा है। महिम की गतिविधि पर उसके सन्देह ने गहरा होकर सत्य रूप धर लिया था। जबसे सुरेश आया है तभी से तो कलह का अनवरत क्रम चलता ही जा रहा है। वह सोचने लगी थी कि उसने महिम से ब्याह कर भूल की। उसे उससे प्रेम नहीं है। और अब जो एक बार भूल वह कर बैठी, है उसमें जकड़ी, कलह और दुख से भरा जीवन व्यतीत करने की धारणा के प्रति वह इधर निरन्तर विद्रोह करती रही है अपने आप में ही। अपने इस कलह-पूर्ण जीवन में मृणाल की बात उसे ध्यान से उतर गई थी, कि उसके इस पत्र ने बुझती चिनगारी को फिर दहका दिया। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्री के लिए यह विचार ही कि उसका पति किसी पर-नारी को प्रेम करता है

उसकी प्राणघातक चिन्ता का कारण बन जाता है और यही अचला का हाल था।

सोचते-सोचते उसे सारा संसार झूठा, एक छलना-सा जान पड़ा। चिन्ता के आगे सोने, खाने, कपड़े का सुख कुछ भी अर्थ नहीं रहता। सारा जीवन ही माया है। गाँव, शहर, झोपड़ी हो, चाहे राजप्रसाद, पति-पत्नी, माँ-बाप, भाई-बान्धव-बहन सब व्यर्थ झूठ। और यह कलह-कलह भी सब व्यर्थ। बेकार में वह क्यों सोच-सोच जान दे—महिम को उससे प्यार नहीं, वह कलह के बाद भी उसे योंही छोड़ घर से चला गया—आखिर वह क्यों जान दे? मृणाल के पत्र ने उसके सामने अँधेरा कर दिया था। दुनिया सूनी-सूनी जान पड़ती थी और उसे दुनिया के सारे काम, नाते-रिश्ते, झूठ, धोखा जान पड़ने लगे। यदि वह मृणाल के उस पत्र के भ्रम में न पड़ कर मृणाल के सदा सरल जीवन को ही याद कर उस पर विचार करती तो शायद उसका मन इतना कलुषित न होता।

यदु ने आकर पूछा—'चाय तैयार है क्या? बाबू पूछ रहे हैं।'

अचला चौंक पड़ी, पूछा—'कौन से बाबू?'

यदु—'अपने। अभी बाहर से लौटकर आये हैं। माँ जी, आपका पानी तो काफी देर हुए गरम हो चुका।'

अचला चौके की तरफ बढ़कर बोली—'तू चल, मैं आई।' और कुछ देर में चाय और नाश्ता नौकर से लिवा कमरे में जा पहुँची, तो देखा कि महिम बाहर के दलान में टहल रहा है और सुरेश कमरे में रोशनी में अखबार पढ़ रहा है—शायद दोनों ही एक दूसरे की स्थिति से अनभिज्ञ हैं।

अचला ठिठक गई। दो बाल-मित्रों के बीच साधारण सभ्यता के व्यवहार का रास्ता भी बन्द हो गया—सोच उसके पैर आगे न बढ़ सके। जब वह लौट रही थी तब महिम ने पूछा—'चाय में इतनी देर क्यों हो गई, सुरेश के लिए?' अचला थोड़ी देर निरुत्तर रही, फिर धीरे-धीरे कमरे

में चली गई। यदु चाय का सामान रख चला गया। सुरेश ने अखबार रख पूछा—'महिम नहीं आया क्या ?'

उसके पूछते ही महिम कमरे में घुसा और कुर्सी पर बैठ गया। लेकिन उसने यह न बताया कि वह तो दस मिनट से यहीं उसके सामने बरामदे में ही चक्कर काट रहा था। कमरे में फिर निस्तब्धता छाई रही। अचला ने भी दो प्याले चाय तैयार कर एक महिम की ओर, दूसरा सुरेश की ओर बढ़ा दिया और जाने को तैयार हो गई, महिम ने उसे रोक दिया तो वह सहम कर खड़ी हो गई।

महिम—'थोड़ा रुको।'—और उठकर दरवाजे की कुण्डी लगा दी। सुरेश को उसी समय उसकी छः नली पिस्तौल की याद ताजी हो गई और वह सिहर उठा, हाथ का प्याला काँप गया, चाय छलक कर जमीन पर गिर पड़ी, चेहरा एकदम सफेद पड़ गया। उसने महिम से पूछा—'कुण्डी क्यों लगा दी ?'—सुरेश के स्वर में भी कम्पन था, सहम थी। अचला के रोंगटे खड़े हो गये और वह सुरेश के स्वर का कम्पन देख और भी घबरा उठी। उसकी चीख निकलते-निकलते ही गले में रुँध कर रह गई। महिम ने अचला पर नजर डाली, और बोला—'मैंने कुण्डी लगा दी इसलिए कि कहीं नौकर बीच में न आकर कूद पड़े। नहीं तो सदैव की तरह आज भी मेरी पिस्तौल बक्स में पड़ी रह जाती। मैं नहीं जानता था कि तुम लोग इतना भय खाओगे नहीं तो कुण्डी भी न लगाता।'

सुरेश ने हाथ का प्याला मेज पर रख दिया और जबर्दस्ती अपने को संयत कर हँसने का प्रयास करते हुए कहा—'क्या खूब कहा तुमने! मैं—और डरने लगूँ।—और तुम चलाओगे पिस्तौल, और वह भी मुझ पर! प्राण का मोह कब किया है मैंने ? देखा है कभी तुमने ?'

महिम ने बीच ही में कहा—'मैं समझता था कि वास्तव में तुम्हें प्राणों का मोह नहीं। डरना किसे कहते हैं तुमने नहीं जाना, पर सुरेश मेरा हृदय आज विदीर्ण होकर भी मुझे जितना कष्ट नहीं दे रहा है, उससे कहीं अधिक मुझे तुम्हारे घोर पतन को देखकर मर्मान्तक पीड़ा हो रही है,

जिसके कारण तुम जैसा आदमी भी पतित हो सकता है···सुरेश ! तुम कल घर अवश्य ही चले जाओ। अब यहाँ देर करना उचित नहीं।'

सुरेश गरदन झुकाये चुप रहा।

'अचला ! भीतर जाओ।'—कह कुण्डी खोल सहसा अन्धकार में विलीन हो गया।

अब सुरेश की गरदन उठ सकी और थोड़ा सा स्वर भी फूटा। बोला—'लो, इसकी भी सुनो, जैसे सारे जीवन भर बन्दूक पिस्तौल ही चलाते रहे हों। मैं डर कर मर जाऊँगा उसकी पिस्तौल से ! एक ही रही !—और जबरदस्ती अस्वाभाविक विकृत हँसी हँसने लगा। उसके अलावा उस कमरे में अचला ही भर थी, पर वह उसके हँसने में साथ न दे उसी तरह काठवत् उदास स्तम्भित खड़ी रही। और फिर बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई।

एक घण्टे के बाद महिम लौटकर आया। कमरे में गया तो वहाँ कोई नहीं था। बगल के कमरे में गया तो देखा अचला चटाई पर औंधी पड़ी है। महिम के भीतर आते ही वह उठ बैठी, पास ही पड़े तकिये पर महिम भी बैठ गया और पूछा—'तो फिर कल मायके जा रही हो न?'

अचला ने कुछ जवाब न दिया, नीचे को मुँह किये बैठी रही। कुछ देर बाद महिम ने ही कहा—'मैं तुम्हारा पति हूँ तो क्या हुआ, मैं कभी भी तुम्हें जिसे तुम चाहती नहीं उसकी घर-गृहस्थी सँभालने पर बाध्य नहीं कर सकता।'

अचला मूर्तिवत् निःशब्द रही, महिम ही बोला—'लेकिन मुझे तुमसे शिकायत है, और सिर्फ यह कि तुम ब्याह के पहले से ही मेरा स्वभाव भली-भाँति जानती हो कि मैं अपनी सीमा के बाहर कुछ भी पाने की तृष्णा नहीं करता और न उसकी आशा ही करता हूँ, पा जाता हूँ तो उसे स्वीकार नहीं करता। प्रेम दिल का सौदा है, बस की बात नहीं। मुझसे प्रेम नहीं यह मेरे लिए दुःख की बात है, इसके लिए तुम लज्जित मत हो, इसका बिलकुल भी तुम्हें खयाल नहीं करना चाहिए। नाहक ही इतने

दिनों से कष्ट पा रही थीं। पहले ही मुझसे खुलासा सब बातें कह दी होतीं तो मैं तुम्हें हर्गिज़ जबर्दस्ती न रोकता। तुमने यह क्यों सोच लिया कि मैं तुम्हें तुम्हारी मर्ज़ी के विरुद्ध रोकूँगा। सुरेश या तुम्हारे पिता जी ही आकर तुम्हारा निस्तार करें तभी तुम बचोगी ऐसी बात नहीं। मैंने तो कभी किसी बात में जबर्दस्ती नहीं की। और फिर तुम्हारा मूल्य वे ही जानते हैं। क्या मुझसे कहने से काम न चलता!'

अचला का गला आँसुओं के मारे रुँधा हुआ था, उसे संयत कर बोली—'पर तुम भी तो मुझ से प्रेम नहीं कर सके।'

महिम विस्मय से चौंककर बोला—'यह धारणा तुमने कैसे जमा ली? मैंने तो कभी ऐसी कोई बात नहीं कही।'

अचला—'न कहने से ही क्या होता है। मुँह से कहते तभी बात जानी-समझी जाती! और फिर मेरे मुँह से भी गुस्से में जो कुछ निकल गया, क्या उसी को सच समझ, अब तुम अपनी धारणा बना लेना चाहते हो। मैं हर बात तुम्हारी तरह सोच-समझकर संयत भाषा में नहीं कह पाती, मुझे जोश आ जाता है, पर क्या उसी कारण मुझे बिलकुल ही डुबा देना चाहिए।' कहते-कहते उसका गला रुँध गया और फिर आगे न बोल सकी।

महिम कुछ भी न समझ सका, पूछा—'इससे तुम्हारा आशय?'

अचला की आँखें बहने को उमड़ रही थीं, उन्हें संयत कर बोली—'तुम भी यह मत समझना कि तुम्हारी पूरी सावधानी रखने पर भी भूल सामने नहीं आयेगा, भूल तो तुमसे भी हुई ही होगी। जरा अपनी मेज पर जाकर देखो तो सिर्फ औरतों का ही तो···।'

महिम स्तब्ध रह गया, बोला—'मेज पर मेरी क्या?'

अचला तो इतना कह उमड़ते आँसुओं की बाढ़ को आँचल से रोक मुँह के बल औंधी पड़ उतराने लगी थी, उत्तर क्या देती। महिम थोड़ी देर इन्तजार के बाद स्वयं ही अपनी मेज पर देखने गया। पढ़ने के कमरे में मेज पर कुछ किताबें तो जरूर बिखरी मिलीं, उसे दस मिनट तक उन्हें

उलट-पुलट कर तलाश करता रहा और घर में अचला के कथन सम्बन्धी भयङ्कर दोष की कोई भी चीज़ न पा अपने सोने के कमरे में गया तो वहाँ उसकी नजर छोटी मेज़ पर पड़े मृणाल के पत्र पर पड़ी। उसे पढ़ते ही सारी स्थिति उसकी समझ में आ गई कि अचला का संकेत उसकी किस गलती की तरफ था। वह उसे हाथ में ले धम्म से बिस्तर पर बैठ निर्निमेष बाहर के शून्य को घूरता रहा। सारा-का-सारा भूत—मृणाल आई थी और आते के साथ ही उसने अचला का सौत कह उसका मखौल उड़ाया था—साकार हो उठा उसकी नजरों में। और अचला का अपने ऊपर सारा सन्देह एक कड़ी में गुथ गया—कैसे उसने कभी मृणाल के उस व्यवहार की सफाई नहीं की और अचला प्रति दिन जलन में जलती हृदय को विदीर्ण करती रही। वह उलटा मृणाल से लज्जित हो जाता था, कभी उसका प्रतिवाद उसने नहीं किया, और आज यही सब बातें अचला के हृदय में उसके प्रति सन्देह का मूल कारण है, अब कैसे उन्हें दूर करे, जब उन्होंने जड़ जमा ली हैं इतनी गहरी। सोचते-सोचते सारी तसवीर सामने स्वयं आ गई—अचला इसी कारण धीरे-धीरे उससे दूर होती चली गई और अब नौबत यहाँ तक आ गई कि उसके साथ रहना भी उसे विस्मय जान पड़ने लगा है। वह उसके साथ रहना भी कैद समझने लगी है—सब साकार हो उठा उसकी नजरों के सामने। उसने अब यह भी समझा कि क्यों अचला का हृदय सुरेश से रक्षा की प्रार्थना के लिए चीत्कार कर उठा था। अचला उसे हृदय से प्यारी थी, पर इतने पास रहकर भी वह उसकी मनोवेदना को न जान पाया। यह उसकी आँखों में अपना बहुत बड़ा दोष बनकर नाचने लगा। और उसने महसूस किया कि इस प्रकार अब अधिक दिन गाड़ी नहीं चल सकती। आज वह यह समझ पाने में भी असमर्थ है कि अचला उससे कितनी दूर चली गई है। फिर से उसका विश्वास प्राप्त किया जा सकता है कि नहीं? क्या उपाय है उसका? अन्त में उसने सोचा कि चाहे कुछ भी हो, पर उसे भी तो जिस पर एक दिन विश्वास कर सारा जीवन उसे अर्पण कर उसके

साथ आती थी, उसे सारी बातें स्पष्ट कर देनी थी। उसने उठकर अचला के दरवाजे पर धक्का दिया। वह अन्दर से बन्द था। उसने आवाज दी पर कोई उत्तर न मिला। अब और अधिक चिल्लाकर उसे और अशान्त करने की उसकी इच्छा न हुई और इस समय तो जान बची व्यर्थ के सवाल-जवाबों से—सोच लौटकर बिस्तर पर पड़ा रहा, पर वह सो न सका। उसके बिस्तर पर किसी का स्थान सूना पड़ा था और वह स्वयं जमीन पर पड़ी है भूखी प्यासी। उसे जाकर उठाना चाहिए कि नहीं, इसी उधेड़बुन में काफी रात गये उसे झपकी आई थी कि आग की लपटों के प्रकाश की चौंध से उसकी आँख खुल गई, उसने देखा कि कहीं आग लगी है। सिरहाने की खुली खिड़की से धुआँ कमरे में आ रहा था और बाहर आग की लपटें दीख पड़ रही थीं। यह सब देखकर उसके हाथ-पाँव फूल गये, पर अधिक देर तक वह ऐसी स्थिति में न रह सका और उछल कर दरवाजा खोल बाहर पहुँचकर देखा कि चौके और अचला के कमरे के बीच के दालान में जोर की आग की लपटें उठ रही हैं। गाँव में फूस के घर में लगी आग को बुझाने का प्रयास बेकार की मेहनत होती है। उस दशा में अपनी-अपनी चीजें, जानवर बचाने के लिए सभी इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, और मौखिक सहानुभूत दिखाते हैं, जब तक सारा घर जल कर राख नहीं हो जाता इन्तजार करते रहते हैं। जल चुकने के बाद रात रही तो जाकर बाकी नींद पूरी कर सवेरे उठकर शौचादि से मार्ग में नहाते धोते आग के सम्बन्ध में रही बातें समाप्त कर सब के सब अपने जीवन के पूर्ववत् क्रम में लग जाते हैं। महिम को ये सारी बातें मालूम थीं इसी से उसने किसी को चिल्ला कर, जगा कर, नींद खराब करना भी उचित न समझा और वह जानता था कि उसके घर की लगी आग उसके आम और कटहल के बगीचे को पार कर गाँव के अन्य घरों को कोई नुकसान भी नहीं पहुँचा सकती। जहाँ बाहर के कमरों में नौकर-चाकर सोये थे वहाँ भी आग पहुँचने में अभी देर थी। अचला के पास ही आग थी, अतः उसने लपककर जोर से दर-

वाजे पर धक्का मार पुकारा—'अचला !'

अचला ने उत्तर दिया—'क्या है ?'

महिम—'दरवाजा खोलकर बाहर आओ।'

अचला—'नहीं, मैं यहाँ बड़े आराम से हूँ।'

महिम—'घर में आग लगी है। जल्दी निकलो। देर मत करो।'

अचला सुनकर कुछ भी उत्तर न दे सकी, एक चीत्कार निकल गई उसके मुँह से—और फिर बिलकुल शान्त। महिम ने पुकारा, जोर से पुकारा, कोई उत्तर नहीं। महिम को भय था कि वह बेहोश हो जायगी और वही हुआ भी। वह जानता था कि अचला क्या जाने आग कैसे लगती है ! उसने झट किवाड़ को उचका कर खोल लिया और जल्दी से बेहोश पड़ी अचला को गोद में उठा आँगन में ले आया। अब उसने औरों को जगाने के लिए जोर-जोर से पुकारना शुरू किया। सुरेश बाहर आ गया था। यदु और दूसरे सभी नौकर भी बाहर आ गये। अचला एक आर्त्तनाद कर होश में आई और महिम के गले में हाथ डालकर फूट-फूट कर रोने लगी।

महिम सब को मैदान में ले गया जब कमरे के छप्पर में आग लग चुकी थी। महिम को याद आया कि उसी कमरे में तो अचला के सारे कीमती कपड़े और गहनों का बक्स है। एक मिनट की भी देरी की तो वे सब जलकर राख हो जायँगे।

अचला ने महिम को उधर बढ़ते देख कहा—'नहीं, मैं तुम्हें वहाँ नहीं जाने दे सकती। क्या तुमने यही अवसर पाया है इस तरह मुझसे बदला लेने का ? जलता है तो सब कुछ जलने दो।'

महिम—'पर न जाने से भी तो काम नहीं चलेगा।' कह तेजी से हाथ छुड़ाकर घुटते धुएँ को चीरता हुआ वह आग की लपटों के बीच कमरे में घुस गया। यदु चिल्लाता हुआ पीछे दौड़ा।

सुरेश मूर्तिवत् दूर खड़ा सब देख रहा था। होश में आ सहसा वह भी लपका तो अचला ने उसकी धोती का छोर जोर से पकड़ लिया और

कहा—'आप कहाँ चले ?'

सुरेश ने धोती छुड़ाते हुए कहा—'महिम ऊपर गया है उसे ···।'

अचला—'आप क्यों जाते हैं ? वे तो अपना सामान बचाने गये हैं। मैं आपको नहीं जाने दे सकती।' उसके स्वर में स्नेहाग्रह न था, वरन् ऐसा प्रतीत होता था कि उसने सुरेश को केवल इस विचार से रोका कि तुम्हारा अधिकार ही क्या है चीजें बचाने का, जो अनधिकार चेष्टा करने जाते हो।

दोनों हाथों में बक्स लटकाये और एक भारी बक्स सर पर रखे दो तीन मीनट बाद महिम लपटों से बाहर आया, बक्स अचला के पास रख दिये, बोला—'देखो कहीं तुम्हारे जेवरों का बक्स इधर-उधर न हो जाय। मैं चलूँ, शायद किताबों में से कुछ बचा सकूँ।' अचला कुछ बोल ही न सकी। सुरेश की धोती अब भी उसकी मुट्ठी में थी। महिम क्षण भर में ही यदु के साथ फिर आग की लपटों में घुस चला।

अब सवेरा हो आया था और अचला ने महिम की व्यथित मुख-मुद्रा को देखा, सवेरे के प्रकाश में तो उसका कलेजा मुँह को आने लगा। वह रोने लगी। महिम के बालों में राख भर गई थी; चेहरा आग की लपटों से झुलसकर विकृत हो गया था। अब सवेरा होते ही गाँववाले भी जमा होने लगे थे। कोई कह रहा था, बेचारे का सब जल गया। बरतन भाँड़ा तो सभी जल गया। कपड़े-लत्ते का भी तो केवल एक ही बक्स बचाया जा सका है, बाकी तो सब स्वाहा हो गया। आदि। इन सब से दूर एक ओर महिम उदास बुझती आग की लपटों को शून्य दृष्टि से देख रहा था। सब के शब्द भी उसके कानों में पड़ रहे थे, पर सब बेकार था। उसकी व्यथा को शान्त करने के लिए बनर्जी, जो दूर के मुहल्ले में रहते थे और वात रोग के रोगी होने के कारण अभी तक घटनास्थल पर न आ पाये थे; लाठी के सहारे अपने साथियों के साथ आये। उन्होंने आते ही सहानुभूति प्रकट करते हुए अपना दुख प्रकट किया और कहा—'महिम ! तुम्हारे पिता हमारे बहुत घनिष्ठ थे। बस, यह समझो कि दो

शरीर थे पर प्राण एक था। अब तो बेचारे को मरे जमाना गुजरा।'

महिम ने गरदन हिलाकर आभार प्रकट किया।

बनर्जी महोदय ने फिर कहा—'मैं जानता था कि यह काण्ड होगा।'

महिम एकाएक चौंक पड़ा उनकी बात सुनकर और उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर आगे सुनने के लिए देखने लगा। अचला अलग सामान समेट चुप बैठी थी। बनर्जी के वाक्यांश को सुन उसके कान भी उधर खिंच गये। बनर्जी महाशय ने कहना शुरु किया—'तुमने सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुल की सन्तान होकर भी कैसा नीच काम किया है बेटा! उसी कारण न यह सब ईश्वरी पुकार है।'

महिम हतबुद्धि-सा खड़ा रहा। बनर्जी ने ही वाक्य को स्पष्ट करते हुए कहा—'बेटा, तुम्हीं क्यों प्रकोप के भाजन बने और किसी पर कोप न हुआ। जानते तो हो ब्रह्मसमाजी और म्लेच्छ ईसाई में फर्क नहीं। सिर्फ उनके साहब होने से और इनके बङ्गाली होने से नाम-भेद है। हमको तो शास्त्र-ज्ञान हो गया है। यह पहले ही जानते थे।'

अन्य लोगों ने भी बनर्जी बाबू के कथन का समर्थन किया तो उनको और सहारा मिला और आगे सिलसिला बढ़ाया, बोले—'फिर चाहे कुछ भी करते रहना पहले तो इसे त्याग कर प्रायश्चित्त करो···।'

महिम ने बीच ही में रोककर कहा—'बस! अब रहने दीजिए। मैं नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आप लोगों का किसी प्रकार अनादर हो। कृपा कर आप मुझे वह करने को न कहिए जो मैं कर नहीं सकता। घर रहे, चाहे जल जाय, मुझसे यह नहीं होगा।' कहकर वहाँ से चला गया।

बनर्जी और उनका गुट भौंचक्का-सा रह गया और देखता रहा। कुछ देर बाद फिर जैसे लाठी टेकते आये थे वैसे ही अजीब-अजीब अकथनीय बातें फुसफुसाते वापस लौट गये।

सारी बातें अचला के कानों में पड़ीं, जिसके कारण उसकी आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

यदु ने आकर पूछा—'बाबू जी ने कहा है कि आपसे पूछकर पालकी

ले आऊँ। तो अब आप क्या कहती हैं ?'

अचला ने आँसू पोंछकर कहा—'तू जाकर बाबूजी को यहीं भेज दे।'

यदु—'और पालकी ?'

अचला—'नहीं ! अभी नहीं।'

महिम आ गया, उसे देखते ही अचला फिर रोने लगी और झुककर महिम के पैर छू लिये। महिम उसके इस व्यवहार को देखकर आश्चर्य से चौंक उठा। यदि अवेरे के उजाले में भीड़ की आँखों की लज्जा न होती तो शायद वह उसे हाथ पकड़कर पास बिठा लेती या फिर और भी कुछ आवेश में कर बैठती सो कहना कठिन है। उसकी उस समय की मनःस्थिति ही कुछ ऐसी थी।

महिम—'अच्छा होता नौ बजे की गाड़ी पकड़ ली जाती। एक बजे तक घर पहुँचकर आराम से नहा-धो, खाने का समय मिल जाता। किसी प्रकार का कष्ट न होता। तुमने तो कल रात से ही कुछ नहीं खाया।'

अचला—'अब तुम्हारा क्या होगा ?'

महिम—'कुछ न कुछ तो प्रबन्ध हो ही जायगा !'

अचला—'मैं नहीं जाऊँगी। मेरा भी कुछ प्रबन्ध हो ही जायगा।'

महिम—'मुझे बताओ तो तुम्हारा क्या प्रबन्ध हो जायगा ?'

अचला के मन में तो आया, कह दे कि जङ्गल में पेड़ के नीचे गुजारा कर लेगी, पर वह कुछ भी उत्तर न दे सकी। वह जानती थी कि न तो जङ्गल में ही दिन काटे जा सकते हैं और न कहीं पड़ोस में ही घण्टे भर के लिए जगह मिल सकती है। मृणाल का भी खयाल उसे आया, पर उसे भी वह न कह सकी, उसके कहने में उसे शर्म लगती थी, इसी तरह के विचारों से कुछ देर चुप रही, अन्त में बोली—'तो फिर तुम भी साथ चलो।'

महिम ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—'साथ चलूँ ! इससे लाभ ?'

अचला—'लाभ-हानि का जिम्मा आज से मेरे सिर रहा। मैं जानती

हूँ कि तुम्हारा भला चाहने वाले यहाँ कितने हैं और तुम तो देख नहीं पा सकते कि क्या दशा हो गई है तुम्हारे चेहरे की रात भर में नहीं, मैं तुम्हें ऐसी अवस्था में मरकर भी नहीं छोड़कर जा सकती।'

महिम के दिल के तार भी झनझना उठे।

अचला—'पश्चिम में कहीं भी एक छोटा सा मकान खरीदने भर को मेरे गहने पर्याप्त होंगे। वहीं चल कर रहा जायगा। तुम्हें सङ्कोच किस बात का हो रहा है? खाने भर को भी तो कमा लोगे और मैं तुम्हारी सारी देख-भाल करूँगी, यह भार भी मैंने लेने को कह दिया है।'

यदु ने आकर पूछा—'माँजी! पालकी लाने जाऊँ?' अचला महिम के चेहरे की ओर जिज्ञासु-दृष्टि से देखती रही। महिम ने अचला की बात का उत्तर पहले न दे यदु से पालकी लाने को कहा और फिर अचला से कहा—'मेरा तो अभी जाना नहीं हो सकेगा।'

अचला—'अभी नहीं, पर शाम की गाड़ी से तो अवश्य ही आ जाओगे। नहीं आओगे तो तुम्हारे इन्तजार में खाना लिये बैठी रहूँगी।'

महिम ने तभी गहरी साँस छोड़ी और अचला का भावावेग वहीं रुद्ध हो गया, चेहरा उतर गया। डरते-डरते उसने पूछा—'क्या शाम की गाड़ी से भी नहीं आओगे? यहाँ किसके घर में इस अँधेरी रात के समय···।' कहते-कहते चुप हो गई। तुरन्त उसने समझा कि किसके घर यह रात बिताने की सम्भावना है। उसका विचार आते ही वह चिन्तित हो गई, चेहरा उतर गया। महिम उसके इस आकस्मिक परिवर्तन को समझ न सका। उसने पूछा—'तुम्हारा, मेरे लिए कलकत्ते में किसके यहाँ जाने का मतलब है?'

अचला—'बाबूजी के घर।'

महिम—'नहीं।'

अचला—'क्या वह घर भी तुम्हारा नहीं?'

महिम—'नहीं।'

अचला—'वहाँ न सही तो सिर्फ दो दिन रहकर ही कहीं पश्चिम

देश की तरफ चले चलेंगे।'

महिम—'नहीं।'

महिम अपने निश्चय से टल सकता नहीं यह अचला समझती थी। थोड़ी देर तक सोचने के बाद फिर उसने कहा—'तो यहीं से कहीं किसी पश्चिम के शहर को चल दें। तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने दूँगी, पर जेवर तो बेचने पड़ेंगे ही। उसके लिए तो कलकत्ता चलना होगा।'

महिम चुप रहा।

कुछ देर बाद अचला ने कहा—'जेवर तो उधर भी बिक सकते हैं। पश्चिम में भी तो बड़े नगर हैं। चलने को मेरे बक्स में लगभग दो सौ रुपये होंगे, काफी हैं। पर तुम बोलते क्यों नहीं? बोलो! उत्तर दो!'

महिम की आँखें अचला की आँखों से न मिल सकीं! उसने उत्तर दिया—'अचला! तुम्हारे जेवर तो मैं न ले सकूँगा।'

अचला की सारी देह बिजली के शॉक की तरह झनझना उठी। कुछ देर बाद वह बोली—'न ले सकने का क्या कारण है?'

महिम इसका उत्तर न दे सका। दोनों ही चुप रहे। चुप्पी को तोड़ते हुए अचला ने सहसा एकदम प्रश्नों की झड़ी लगा दी—'क्या तुम्हीं संसार में अनोखे पति हो? और पति स्त्री का जेवर बुरे दिनों में कैसे लेते हैं? और फिर ये जेवर होते ही किस लिए हैं? नहीं लेने थे तो फिर आग की लपटों में जलने से इन्हें बचाया क्यों था?' जेवरों का छोटा सा बक्स ढकेलते हुए—'कष्ट में भी इसका इस्तेमाल न हो सका तो इनका बोझ बेकार है। आग तो जल रही है उसी में डाल दो इन्हें, फिर मैं चली जाऊँगी और तुम्हारे जो जी में आवे सो करना।' यह कह मुँह ढककर रोने लगी।

दो-एक मिनट तक शान्ति रही। महिम बोला—'अचला! तुम खूब जानती हो कि मैं कोई काम बिना सोचे नहीं करता; आगा-पीछा खूब सोच समझ कर करता हूँ। अभी मैंने खूब सोच लिया है। मैं यह भी चाहता हूँ कि तुम भी आगा-पीछा बिना सोचे आवेश में कुछ न करो।

यदि मैं आज तुम्हारे माल को अपना समझ सकता तो मेरी प्रसन्नता की सीमा न रहती, लेकिन ऐसा सौभाग्य नहीं मेरा। मेरे दुःख से द्रवित होकर एक चोर ने भी मुझे बहुत कुछ देकर दया प्रकट करनी चाही थी, यह भी वैसी दया है लेकिन मैं जानता हूँ कि इससे किसी का भला न हो सकेगा।'

अचला से न रहा गया। अब उसके आँसू सूख गये और उसने एक बार उत्तर देने के लिए आँखें ऊपर उठाईं, पर दूसरे ही क्षण उसकी दृष्टि सुरेश पर पड़ी जो सामने के तालाब के पास चबूतरे पर नीम के नीचे शून्य की ओर मुँह किये घूर रहा है।

महिम अपने ही आप फुसफुसा उठा—'मुझे तो अब कभी शान्ति न मिलेगी इस जीवन में; और तुम्हें भी नहीं मिल सकती। हम दोनों का सम्बन्ध ही ऐसा है।' थोड़ा रुककर बोला—'अचला, अपना सब कुछ दान कर अपने को रिक्त कर देने से अनेक कष्ट उठाने होते हैं। मनुष्य एक बार जोश में आकर ऐसा कर सकता है, फिर जीवन भर उसका दिल उसके लिए रोता है। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि तुमने मेरे साथ विवाह करके जो गलती की है उसी का तुम्हें कम दुख नहीं और फिर उसके ऊपर यह दूसरी गलती करने से तो सन्ताप पराकाष्ठा को पहुँच सकता है। मेरी बात आज तो तुम्हारी समझ में न आयेगी, पर दो-एक दिन बाद जब होश खतम होगा, दिल दिमाग ठण्डा होगा तब समझोगी। यही कारण है कि मैं तुमसे कुछ भी नहीं ले सकता।'

महिम की बात ने बिन्ध दिया अचला के अन्तर को। आज पहली बार उसके सामने यह प्रकट हुआ कि वह महिम की दृष्टि में अपनी नहीं कितनी गैर है। उसके साथ उसे मृणाल का खयाल हो आया। और एकदम फिर उसको क्रोध आ गया। तीखे स्वर में बोली—'मैं अच्छी तरह समझती हूँ जो कुछ तुमने समझाया है। सम्भव है तुम्हारी दयनीय अवस्था देखकर ही दया के कारण मैं तुम्हें सब कुछ दे रही थी और बाद में मुझे उसके लिए दुःख होता। या जैसे तुम दूसरे के दिल को समझने

का दावा करते हो वैसे ही तुम्हें भी कहा जा सकता है कि तुमने स्त्री की चीज छीनकर या माँगकर भी लेने का मुँह रखा है ? आज तुम इसे समझ तो सके, मेरे लिए यही सन्तोष की बात है। आज नहीं तो एक न एक दिन तुम्हें सारी बातें पूरी तौर पर समझनी होंगी। मैं चाहे कहीं भी रहूँ।' कहते-कहते आँसू आ गया, पर उसे उसने किसी तरह मुँह दबाकर रोका।

आग की घटना ने सुरेश को 'साँप सूँघा सा' कर दिया था। वह किसी से बातें ही न कर पाता था। जब सब नौ बजे की गाड़ी से जाने को स्टेशन पहुँचे तो उसने महिम को एक तरफ ले जाकर कहा—'महिम, कहीं तुम्हें मेरे ऊपर तो सन्देह नहीं आग लगाने का ?'

महिम ने एकदम उसके दोनों हाथ थाम, दबाते हुए कहा—'कैसी बातें करते हो !'

सुरेश की आँखों में पानी आ गया, बोला—'कल से मैं इसी विचार में विह्वल हो रहा हूँ महिम।'

महिम ने फिर उसका हाथ दबाते हुए कहा—'माना कि एक अपराध करने के बाद मनुष्य का दिल भय खा जाता है कि किसी अन्य अपराध का दोष भी मेरे सिर न आवे। पर मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम चाहे और जो कुछ करो, पर ऐसा नीच और भयङ्कर कार्य नहीं कर सकते।' थोड़ा ठहरकर कहा—'सुरेश ! हर मनुष्य की सबसे मूल्यवान् निधि है कि वह जितना दूसरे का विश्वास जीत पाता है; वह उसे कभी नष्ट नहीं होने देना चाहता।'

गाड़ी आ गई। जनाने डिब्बे में अचला और उसकी दासी को बैठा अन्त में सुरेश के पास महिम पहुँचा तो सुरेश ने खिड़की से महिम का दाहिना हाथ पकड़ कर कहा, भगवान् से मेरी अब इतनी ही प्रार्थना है कि मुझे अब और वे पतित न करें। तुमने तो किसी तरह भी अपने दुख दूर करने की मेरी सेवा को स्वीकार न किया, पर तुम्हारे ईश्वर ही तुम्हारी सहायता करें।' कह हाथ छोड़ बैठ गया।

दूसरे डिब्बे में अचला यदु को धीरे-धीरे कुछ समझा रही थी। महिम उसके पास गया तो उसने पूछा—'सुना है आज मृणाल जीजी के पति की मृत्यु हो गई।'

महिम—'हाँ! एक घण्टे भर पहले ही।'

'अचला को निमोनिया हो गया था, दस-बारह दिन से। इसकी सूचना भी तुमने मुझे नहीं दी!'

महिम सोचता ही रहा कि क्या उत्तर दे कि गाड़ी सीटी दे छूट गई।

केदार बाबू खाना खा-पी चुकने के बाद बाहर के बरामदे में ही आराम कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य भी पूरी तरह ठीक नहीं हो पाया था। उनकी आँख झपकी थी अखबार पढ़ते-पढ़ते कि बाहर के दरवाजे पर घोड़ा गाड़ी की आहट से उनकी आँखें खुल गईं। सुरेश के साथ अचला और दासी को उतरी देख, उनका हृदय किसी बुरी घटना के विचार से व्याकुल हो उठा, और उन्होंने व्यग्र हो वहीं से चिल्लाकर पूछा—'तुम दोनों कहाँ से आ रहे हो, बोलो? मेरी समझ में नहीं आ रहा है। हरिया की माँ! मामला क्या है?'

अचला और सुरेश ऊपर आ गये। अचला ने पैर छुए और सुरेश ने नमस्कार किया। पूछा—'क्या आपको तार नहीं मिला महिम का?'

'केदार बाबू—'मुझे नहीं मिला।'

सुरेश कुर्सी पर बैठ गया, बोला—'या तो अभी आया ही नहीं होगा या भूल गया होगा। या किया ही नहीं होगा।'

केदार बाबू—'तार की बात बाद में करना, यह तो कहो कहाँ से ला रहे हो इन सब को?'

सुरेश—'कल रात को महिम के घर में आग लग गई। सब जल गया।'

केदार बाबू—'सब जल गया! कहते क्या हो! कैसे जला, और महिम कहाँ है, तुम इन लोगों को कहाँ से लिवा कर ला रहे हो?'—एक साथ ही इतने प्रश्न कर वे कुर्सी पर बैठ गये।

बात कही थी सो वह अब तक भी नहीं आया और तुम लोग भी आ गये। मैं अभी आया, तुम बैठो।' कह स्लीपर पहन नीचे गये। वहाँ हरिया की माँ से ज़ोर-ज़ोर से कुछ पूछने की आवाज अचला साफ़ सुन रही थी। वे अजीब अजीब सवाल उससे पूछ रहे थे और उसका वह जवाब देती जा रही थी। वह कह रही थी—'बाबू जी आप यह सब क्या कह रहे हैं, मैंने अपनी आँखों आग लगती और सब कुछ जलते देखा है। आग नहीं लगी होती तो सब कुछ कैसे जलता!'

सुरेश भी सब सुन रहा था। उसने उठकर देखा तो अचला को भी दरवाजे पर खड़ी सब कुछ सुनते पाया। बोला—'अचला! क्या हो गया तुम्हारे बाबू जी को?'

अचला ने चौंककर उधर देखकर कहा—'मुझे नहीं मालूम।'

सुरेश—'उन्हें हमारी बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि आग लगने की बात झूठ है।' फिर रुककर बोला—'क्या सच है क्या नहीं, सो कभी न कभी पता ही चल जायगा। पर मेरे लिए अब ऐसे वातावरण में आना दूभर होता जा रहा है।'

अचला का मुँह उतर गया था। पूछा—'क्या कभी नहीं आयेंगे?' सुरेश ने उठते हुए कहा—'शायद। मेरे भी तो आत्मसम्मान है। आप पाकर मेरा बक्स किसी से भिजवा दीजिएगा।'

अचला—'अच्छी बात है।'

सुरेश—'कल ही सवेरे। उसमें कई जरूरी चीजें हैं।' कहकर वह चल दिया।

केदार बाबू लौटे तो सुरेश को गया जानकर विस्मित तो हुए, पर अप्रसन्न नहीं, यह उनके चेहरे से साफ़ झलक रहा था।

रात में भी अचला को चैन न पड़ी। बिस्तर पर पड़ी छटपटाती रही। वह उठकर बाहर के बरामदे में आकर खड़ी हो गई रास्ते के आने जाने वालों को देख अपने को भूल जाने के विचार से। बढ़ते ही उसे अन्दर से केदार बाबू का स्वर सुनाई दिया। वह चौंक पड़ी। वह जानती थी

कि वे सदा दस बजे तक सो जाया करते थे, लेकिन आज अभी तक नहीं सोये थे। इतने में ही हरिया की माँ का कण्ठ सुनाई दिया—'मृणाल बीजी का पति स्वर्ग सिधार गया है, मुझे तो बाबू इस पर शक है कि अब वे ससुराल ठीक से रहती-सहती हों और वे ही जानें कि दामाद साहब से उनका कैसा रिश्ता है।'

केदार बाबू ने सिर्फ—'हूँ' कहा।

इसके पहले भी काफी बातें हो चुकी हैं। उसके बारे में, तथा मृणाल और महिम के बारे में। सो अचला ने सोच लिया। वह वहाँ से चुपके लौट जाना चाहती थी। यह नहीं चाहती थी कि अपने सम्बन्ध में उसके कान कुछ अप्रिय बातें सुनें, पर पैर हिले ही नहीं और वह अज्ञात शक्तिवश वहीं जमी खड़ी रही।

थोड़ी देर की शान्ति के बाद केदार बाबू बोले—'तो इसके माने यह कि बनी नहीं दोनों में, क्यों?'

नौकरानी—'हाँ, बाबू जी। बनी नहीं एक दिन भी!'

अचला के जाने में हरिया की माँ मूर्ख थी, लेकिन आज उसने देखा कि वह बड़ी चलाक है।

केदार बाबू बोले—'तो यह बात है! जब से सुरेश वहाँ पहुँचा था दोनों में कलह ही मचा रहा। कल रात किसी ने खाना भी नहीं खाया।' अचला सुन तो न सकी, नौकरानी ने क्या उत्तर दिया होगा, पर केदार बाबू ने आगे जो कुछ भी कहा उससे अचला ने उसके उत्तर का अनुमान लगा लिया।

केदार बाबू बोले—'मैं तो जानता ही था, एक न एक दिन यह होना ही था!' बात तो मानते नहीं आज के लड़के-लड़की माँ बाप की। मैंने तो खुद ही सब कुछ ठीक कर दिया था। किसी तरह का दुख न होता वैसा होने पर।' कहकर लम्बी साँस छोड़ी।

नौकरानी ने भी उनका समर्थन करते हुए तुरन्त कहा—'वैसा होता तो फिर चिन्ता किस बात की थी। कहाँ यह और कहाँ गाँव का फूस

का घर, सो वह भी नहीं रहा। दामाद साहब को क्या कहूँ।' आगे कुछ भी न कह एक ठण्ढी आह भर अपनी बात पूरी की।

केदार बाबू—'किस्मत!' कह, उठ खड़े हुए और उसे जाने को कह रोशनी गुल करने के लिए नौकर को आवाज देने लगे। अचला उसी तरह चुप क्लान्त-मना लौट जाकर बिस्तर पर पड़ रही। वह पहले से जानती थी अपने पिता के ओछे स्वभाव को, पर उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि वे नौकरानी से सारी बातें पूछने का ओछापन भी कर सकते हैं। आज उसका मान चूर हो गया था, वह स्वयं बड़ा छोटापन अनुभव कर रही थी। पर जहाँ उसके सारे सगे-सम्बन्धी, पिता पति सभी ऐसा ही अनुभव कर रहे हों वहाँ उसकी क्या बिसात! उससे सोचा भी न गया कि अब किसके सहारे उठकर खड़ी होगी।

बाईसवाँ परिच्छेद

केदार बाबू साधारण सांसारिक मनुष्यों की ही भाँति गुण-दोषयुक्त हैं। अचला के ब्याह के लिए उन्होंने सोचा था कि वर ऐसा मिले जो शिक्षित भी हो और सम्पन्न भी। महिम ने एम० ए० पास कर लिया था, जीविकोपार्जन की कमी उसे न रहेगी, स्वभाव भी अच्छा ही है, तभी उन्होंने अचला के ब्याह के लिए उसे छाँटा था। लेकिन अचानक ही एक दिन उसके ही मित्र सुरेश से उसकी आर्थिक दयनीयता का हाल सुनकर और उसकी स्वयं अचला से शादी करने के लिए उत्सुकता देख जब उसकी और महिम की सम्पन्नता की तुलना की तब तुरन्त ही अपना विचार बदल अचला का ब्याह सुरेश के साथ करना चाहा! प्रेम का उनके नजदीक उतना महत्त्व न था जितना वर सम्पन्नता का और वे तो यह भी मानते थे कि लड़कियाँ भी यही अधिक पसन्द करती हैं कि उनका पति वह हो जो उन्हें सुख से रख सके, घूमने फिरने को घोड़ा-गाड़ी, पालकी, सवारी आदि उपलब्ध हों और पहनने को सुन्दर कपड़े, जेवर हों, खाने को अच्छा-से-अच्छा दे सके। इसी बात को ध्यान में रखकर

अपनी ओर से भी लड़की को पूरे आराम देने के अपने कर्तव्य को निभाने का अपने आप ही बिना प्रयास प्राप्त सुख-अवसर को छोड़ना नहीं चाहते थे। और इसलिए उन्होंने उससे कर्ज की अदायगी के लिए रुपये लेने से दोष नहीं जाना। क्योंकि उन्होंने सोचा कि शादी के बाद मकान तो इन्हीं दोनों का होगा।

मगर जिद्दी लड़की ने अपने आप ही अपना कर्म फोड़ लिया। लाख समझाने पर भी उसकी समझ में न आया और फिर हारकर उन्हें महिम के हाथ ही उसे सौंपना पड़ा। इसका तो उन्होंने जो दुख किया सो तो किया ही, सबसे बड़े दुख की बात जो उनके सामने आ गई थी, वह सुरेश के रुपये चुकाने की। पर रास्ता न सूझ रहा था कि किस रूप में अदा करें, रुक्का लिखें या क्या करें?

अचला जब व्याह कर ससुराल चली गई तब केदार बाबू को सुरेश का अधिक आना-जाना रुचिकर न हुआ। न मिलने की गरज से 'हैं नहीं' कहकर अनेक बार टाल देते थे। पर अचला की दृढ़ता से उन्हें जो दुःख हुआ था, वह किसी प्रकार कम न हो सका था। इसी विचार-सागर में उनका जीवन कट रहा था कि अचानक बीमार पड़ गये। सुरेश ने आकर पुत्र की तरह उनकी परिचर्या कर स्वस्थ कर लिया। जब एक बार उन्होंने स्वयं कर्जे की चर्चा छेड़ी तो उसने कहा कि मैंने तो अपने मित्र के व्याह में दहेज-स्वरूप दिया है समझ लीजिए, टालकर हँस दिया! तब से केदार बाबू सुरेश को अत्यन्त स्नेह करने लगे और वह यहाँ तक बढ़ा कि पुरानी बातें सोच, कभी-कभी तो अचला के प्रति उनकी प्रतिहिंसा की भावना जोर मार उठती थी। उसने हीरे की कद्र न की, इसका फल वह अवश्य भोगेगी एक दिन, उसके प्रति कुभावना अनायास ही निकल पड़ती उनके अन्तस्तल से। पर इस सब के और महिम के प्रति भी जो कटुता उनके दिल में थी, उसके माने यह न थे कि वे यह बर्दाश्त कर सकते कि उनकी कन्या पति को त्याग नारी-धर्म पर लात मार उन्हीं के घर में आकर रहने की धृष्ठता करे। और जो आदमी जाने

अनजाने इसका सहायक हो, उसे बाप की आत्मा कभी क्षमा नहीं कर सकती। उसके प्रति क्या भाव होंगे उनके, सोचना कठिन नहीं है।'

उधर अचला पिता के प्रति पहले जैसा भाव भी रखती हो, पर जब उन्होंने केवल धन-लोलुपता के कारण महिम के स्थान पर सुरेश से उसका विवाह करना चाहा था और जानते हुए भी, कि अदा नहीं कर सकते, रुपये के लिये तब से वे उनकी दृष्टि में मनुष्यता के नाते नीचे गिर गये, और कल रात के उनके व्यवहार से तो वह भावना और भी बढ़ती गई।

पर अचला ने अपने सम्बन्ध में भी स्वयं टीका कर यह सोचा कि उसने भी तो अपने पति की सारी मर्यादा पर पानी फेर कर कहा था 'मुझे तुम से प्रेम नहीं' तब वह स्वयं कितना नीचे गिर गई है, इसका अनुमान लगाना भी अचला के लिए असम्भव हो गया है। आज वह पति की ही दृष्टि में ही नहीं एक तुच्छ दासी की दृष्टि में भी नीचे गिर गई है और यही नहीं उसके आचरण से सुरेश की अतृप्त वासना को उत्तेजना मिली है और वह उसे अपनी वासना-तृप्ति का साधन समझने लगा हो तो आश्चर्य नहीं।

लेकिन क्या वास्तव में उसका चरित्र ऐसा है? कुछ दिन बीते ही तो पवित्र प्रेम की कसौटी पर उतरी थी, जब उसने धन तथा अपना सब कुछ उसके लिए उत्सर्ग कर दिया था। सब लोग उसे भूल गये। अचला ने मन में अपने ही से छलना कर एक झूठे सन्तोष की टट्टी अपने सामने खड़ी कर दी। वह तो खरी उतरी; पर महिम ही जिसके लिए उसने सब कुछ किया उसकी ओर से उदास है। सुरेश के साथ अकेले भेजने में उसे सङ्कोच नहीं हुआ, और अब तक उसने कोई खैर-खबर नहीं ली। इसी विचाराग्नि में वह रात भर जलती करवट बदलती रही।

सवेरे देर से सोकर उठी। सूरज की किरणें कमरे में आ रही थीं। वह खिड़की खोल रास्ते की ओर टकटकी बाँधे बैठकर देखने लगी। रास्ता चलनेवालों की कलकत्ते जैसे नगर में कमी नहीं। कोई घूमने जा रहा है,

कोई काम पर जा रहा, कोई काम से लौट रहा है, आदमियों के आने-जाने का ताँता बँधा रहता है। बैठे-बैठे सहसा उसे खयाल आया कि मैंने यदि कोई अपराध किया भी है तो 'उनके' प्रति, और दण्ड देने का भी अधिकार उन्हीं को है, नाटक में मैं औरों से मुँह छिपाती हूँ सो क्यों, और किसी को इस बीच में पड़ने से काम? विचार आते ही दूसरे सब कपड़े बदलने को उठी और कपड़े बदल कर हाथ मुँह धो कर कमरे में आ पहुँची।

नौकर ने आकर मेज पर चाय और नाश्ता लाकर रख दिया। केदार बाबू ने स्वयं ही चाय बना कुर्सी पर बैठकर पीना शुरू कर अखबार पर मन लगा दिया।

अचला ने यह देखा, पर आज न उसे इच्छा ही हुई और न साहस ही कि उठकर चाय बना दे।

पर इस प्रकार एक ही कमरे में कब तक चुप बैठा जा सकता है और वह अपने आप ही समस्या सुलझाने के लिए सोचता रहता है तो फिर इस मकान में रहकर ही क्यों? यहाँ रहना उचित है या नहीं? नहीं तो फिर क्या रास्ता है? यही सब सोचती वह वहाँ से उठना ही चाहती थी कि उसने देखा सुरेश भीतर आ रहा है, उसे अत्यन्त विस्मय हुआ उसके आने पर, और उसके नेत्र इस बात के गवाह थे कि आना उसे सह्य न हुआ।

केदार बाबू ने सुरेश के नमस्कार में सिर्फ थोड़ा सिर हिलाकर फिर अखबार पढ़ने में मन लगा दिया। सुरेश कुर्सी पर बैठ गया और जब नौकर चाय का सामान लेने के लिए कमरे में आया तो उसने कहा—'मेरा बक्स रखा होगा, उसे गाड़ी पर जरा जल्दी पहुँचा दो। मेरा दाढ़ी बनाने का सामान भी उसी में बन्द है। देखो! मुझे अभी-अभी जाना है, जल्दी करना।'

'अभी लाया!'—कहकर नौकर चला गया और फिर सारे कमरे में शान्ति छा गई। कुछ देर बाद सुरेश ने पूछा—'क्या कोई महिम का

अचला अचल, निश्चल भाव से निरुत्तर खड़ी रही। सुरेश की बुआ ने बाँह पकड़ सान्त्वना देते हुए कहा—'घबराओ मत बहू, अच्छा हो जायगा।' अचला ने झुककर आशीर्वाद ग्रहण कर फिर पैर छुए और चादर ओढ़ चलने को तैयार हो गई।

केदार बाबू का हृदय द्रवित हो उठा अचला के उस जाड़े की शाम को बिना कुछ गर्म कपड़ा पहने नंगे ही पैर जाने को उद्यत देख, कुछ कह न सके और स्वयं भी सिर्फ स्लीपर ही पहन कर सबसे आगे चलने को उद्यत हो सीढ़ियाँ उतरने लगे।

तेईसवाँ परिच्छेद

महिम का स्वभाव अद्भुत था। कैसा भी दुख क्यों न हो वह किसी की सहायता नहीं माँगता और न उस पर यही प्रकट होने देता कि उसे किस प्रकार का दुःख है। सुरेश से भी इसी स्वभाव को लेकर अनेक बार विवाद खड़ा हो चुका था और अचला को भी उसने अपनी स्त्री होने पर भी कभी इसकी भागी नहीं बनाया था। यही उसकी महिम के प्रति सबसे बड़ी शिकायत थी।

यही कारण था कि अचला, महिम की पैतृक विरासत मकान के जल जाने में हिस्सा बँटाने में समर्थ न हो सकी। मृणाल के विधवा हो जाने में वह कितना दुखित हुआ है, इसका अनुमान भी वह न लगा सकी और जब उसने आवेश में उससे कह दिया था कि, वह उसे नहीं प्यार करती तो उसका हृदय टूक-टूक हो गया था, इसे भी न जान सकी। साथ ही वह अब बच्ची भी न थी जो महिम की उदासीनता को केवल मात्र स्वाभाविक साधारण उदासीनता भर ही समझती तभी स्टेशन पर की मुलाकात के बाद रास्ते भर वह विचारों का यहीं ताना-बाना बुन महिम की इस हर बात के प्रति उदासीन प्रवृत्ति के भीतर उसके मानस-पट का

वास्तविक रूप क्या है, जानने का प्रयास करती रही थी।

तीनों घोड़ागाड़ी पर बैठे जा रहे थे। बुआजी एक तरफ दरवाजे पर ही बगल में अचला के साथ निःशब्द बैठी थीं। अचला नितान्त मूर्ति हो गई थी संज्ञाहीन! केदार बाबू ही जो कि कोई उनका साथ न दे रहा था, सड़क की तरफ देखते हुए जो मन में आ रहा था, सुरेश की तारीफ में कहे जा रहे थे, सुरेश जैसा दयावान हुशियार लड़का संसार में ढूँढे नहीं मिलने का। महिम के मारे तो नाक में दम हो गया है। अभी क्या है, जहाँ गाँव मे उसका अपना कोई नहीं, चोर उचक्के ही रहते हैं। रात में सियार और कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती है, रहने का मजा कभी अच्छी तरह मिलेगा उसे, आदि। बेसिर पैर की बातें कहे जा रहे थे।

इसका कारण भी था कि क्यों यह सब केदार बाबू कह रहे थे। वे सुरेश को अपना परम हितैषी मानते थे, पर उससे अनबन कर चुके, उसका मनोमालिन्य, अचला का भी विरोध और अभी हाल ही में उसके प्रति जो घोर और दूषित सन्देह उनको हो गया था, आज वह सुरेश को बुआ के आ जाने से उनके हृत-पटल पर से सहसा हट गया था और उक्त शब्द अनायास ही आनन्दातिरेक में सुरेश के सम्मान में उनके कण्ठ से फूट रहे थे और ऐसी अवस्था में स्वाभाविक ही थी महिम के प्रति खीझ, जो उनके कण्ठ से निकल रही थी। वास्तव में उन्होंने महिम की बीमारी पर सोचने को महत्व नहीं दिया। बस, इतना भर सोचा कि रात को ठण्ड लग गई होगी, साधारण ज्वर हो गया होगा, ठीक हो जायेगा। और फिर बुआ ने आशा दिला ही दी है, चिन्ता किस बात की है। पर उन्होंने महत्व दिया था कि सुरेश ने किसी प्रकार महिम को शहर लाकर उसका इलाज करना शुरू कर दिया और बुआ को भेजकर अचला को भी उसके पास ही बुला लिया। नौकरानी के मुँह से वे सुन ही चुके थे कि अचला में और महिम में बनी नहीं थी। तभी जब सुरेश के इस कृत्य का उन्हें पता चला तो तुरन्त ही सुरेश उनकी दृष्टि में पवित्र निर्दोष हो गया और आपसी कलह ही के माथे सारा दोष गया। रह रहकर उन्हें यही

विचार कचोट डाल रहा था कि वहाँ जाकर वे उस पवित्र दयावान युवक के सामने कैसे जा पायेंगे ?'

अचला पूर्ववत् काठ की तरह अचल बैठी थी। बीमारी खतरनाक नहीं, उसने भी समझ लिया था; पर वह बार-बार सोचने पर भी समझने में असमर्थ हो रही थी कि जैसा अब तक उसने महिम के बारे में समझा है तो सुरेश उनको वहाँ कैसे ला सके।

अँधेरा होने के कारण जब सड़क की बत्तियाँ जलने लगी थीं तब उनकी गाड़ी सुरेश के घर पर पहुँची। वहाँ दो गाड़ियाँ और खड़ी थीं, जिन्हें देख चौंककर केदार बाबू अपने आप ही बोल पड़े—'ये गाड़ियाँ किसकी हैं ?'

अचला ने भी उन्हें देखा और यह भी देखा कि सुरेश एक अधेड़ को गाड़ी पर बैठा रहा है, पास ही में एक सज्जन कोट-पतलून पहने खड़े हैं। वे बङ्गाली ही हैं। उसने और केदार बाबू ने भी तुरन्त अनुमान लगा लिया कि दोनों ही डॉक्टर हैं।

जब वे दोनों गाड़ियाँ चली गईं तब इनकी गाड़ी सायबान के नीचे जाकर खड़ी हुई। सुरेश वहीं खड़ा था। उससे केदार बाबू ने जोर से पूछा—'महिम को क्या बीमारी है सुरेश ? अब उसकी क्या हालत है ?'

सुरेश—'अच्छा है ! आप तशरीफ तो लाइए।'

केदार बाबू का स्वर पहले से अधिक उद्विग्न था, पूछा—'बताओ न !'

सुरेश—'पहले आप उतरिए भी तो, उन सब को भी उतरने दीजिए। सिर्फ सर्दी लग गई है, छाती में दर्द है, ठण्ड घुस गई है।'

केदार बाबू उतरे नहीं, वहीं जमे रहे, कहा—'मुझे बच्चा मत बनाओ सुरेश ! दो डॉक्टर और उनमें से एक अङ्गरेज ! सो क्यों ? जरा-सी ठण्ड घुस गई है। छाती में उसी का दर्द है। उसका इलाज तो तुम भी कर सकते थे ! फिर इन सब के बुलाने का कारण !' उनके स्वर में कम्पन था।

तब सुरेश ने स्वयं ही बढ़कर हाथ पकड़ उन्हें उतारा और बुआजी से अचला को ले भीतर आने को कहा और थोड़ी देर में अपने आने के

लिए भी कह केदार बाबू के साथ आगे बढ़ गया।

अचला के पैर उतरने में डगमगाये, पर किसी ने देखा नहीं। वह रास्ते भर जैसी चुप थी वैसी ही बुआजी के पीछे-पीछे घर में डगमगाती घुसी।

थोड़ी देर के बाद जब वह रोगी के कमरे में गई तब महिम अपने घर के सम्बन्ध में सम्बद्ध-असम्बद्ध बातें बक रहा था। अचला ने समझा कि हालत कहाँ तक नाजुक हो चुकी है। अपने को उसने थोड़ी देर तो दीवाल के सहारे सँभाले रखा। मृणाल महिम के माथे पर बर्फ की थैली रख रही थी। उसे देखकर वह खड़ी हो गई और सहज स्वाभाविक ढङ्ग से अचला को उसने प्रणाम किया। विधवा वेश में थी वह, बाल छाँटे हुए थे, चेहरे पर विधवाओं की-सी गम्भीरता विराजमान थी। कमरे की मन्द रोशनी में और इस वेश में अचला उसे पहले तो पहचान ही न सकी, पर सामने क्षण भर स्थिर भर खड़े रहने के बाद उसको पहचाना और दूसरे ही क्षण अचला का सारा शरीर एकाएक सिहर उठा और वह अचेत हो मृणाल के पैरों के पास ही धरती पर गिर पड़ी।

जब उसे होश आया तब वह केदार बाबू की गोद में सिर रखे पड़ी थी। एक नौकरानी मुँह पर गुलाब जल छिड़क रही थी, और सुरेश भी पास खड़ा पङ्खा झल रहा था। होश आते ही सारी घटना ताजी हो गई, जिसके कारण अव्यक्त लज्जा का अनुभव करने लगी और उसने तुरन्त उठकर जाने का प्रयास किया, पर केदार बाबू ने उसे रोकते हुए कहा—'बेटी! अभी उठो मत, और आराम कर लो!'

अचला ने सुकोमल मधुर स्वर में कहा—'अब मैं ठीक हूँ बाबूजी।' कह उसने फिर उठने का प्रयत्न किया। अब की केदार बाबू ने जरा जोर से लिटाते हुए कहा—'सोने की चेष्टा करो, उठने की आवश्यकता नहीं।'

सुरेश ने भी समर्थन किया।

अचला ने एक बार उधर दृष्टि डाली। शान्तिस्निग्ध और फिर पिता का हाथ अलग कर उठकर खड़ी हो गई और कहती हुई—'मैं ठीक हूँ

मृणाल अपनी बड़ाई सुन शर्मा गई। बात का रुख बदलने के लिए क्षण भर में हँसकर उसने कहा—'आप सब देशों के बारे में जानने का दावा करते हैं जो ऐसा कहते हैं व्यर्थ में ही। हाँ, पहले बताइए कि आप बड़े हैं या भइया?'

सुरेश भी इस आकस्मिक प्रश्न से हँस पड़ा। बोला—'क्यों आपको···?'

मृणाल ने बीच ही में रोककर कहा—'देखिए, मुझे आज से 'आप' न कहा कीजिए। मैं आपसे उमर में छोटी हूँ, दीदी लगी तो क्या। आप जरूर ही मेरे लिए मझले, छोटे, बड़े भइया कोई न कोई तो हैं हो। बताइए न!'

अचला ने अब इधर देखा। एक दिन मृणाल ने उससे भी भाभी और जीजी का नाता जरा-सी देर में स्थापित कर लिया था, उसे वह दिन याद आ गया। सुरेश मृणाल के इस स्वभाव के विषय में अनभिज्ञ था। उसने जिज्ञासु हँसी हँसकर कहा—'मैं महिम से डेढ़ वर्ष उमर में छोटा हूँ।'

मृणाल—'तो फिर अब मेरे साथ जाने के लिए एक आदमी का प्रबन्ध कर दीजिए, जो मुझे कल सवेरे की गाड़ी से जाकर पहुँचा आये।'

वैसे तो जाने को सुरेश ने अभी-अभी कह दिया था, पर उसे यह आशा न थी कि वह कल सवेरे ही जाने को तैयार हो जायगी। बोली—'और दो दिन ठहर जातीं। सच दीदी! तुम पर महिम को छोड़ हम सब सन्तुष्ट हो गये थे। मैंने तो कभी अस्पताल की अनुभवी नर्स को भी इतनी सावधानी से रोगी की परिचर्या करते नहीं देखा।'

अचला ने सिर हिलाकर समर्थन किया।

मृणाल—'इसकी चिन्ता आप न करें। मैंने तो जिसकी चीज है उसी को सौंप दी है, तभी जा रही हूँ। जल्दी में आने से घर का कुछ प्रबन्ध करके भी न आई थी। कल तो मुझे जाने दीजिए, फिर जब कभी मेरी जरूरत होगी, बुलाते ही आ आऊँगी।'

सुरेश—'तुम्हारी मर्जी। पर मृणाल, देहात में सिर्फ वृद्धा सास की सेवा

करके तुम्हारा समय कैसे कटता होगा?'

मृणाल का चेहरा फिर से मुरझा गया, परन्तु हँसकर बोली—'छोटे भइया, जिन्होंने समय बनाया है, मुझे बनाया है, वही इसकी व्यवस्था भी करते ही हैं।'

सुरेश—'तुम्हारी सास भी अब और अधिक चलने की नहीं। महिम भी स्वस्थ होने पर जलवायु बदलने के लिए किसी पश्चिम के देश को चला जायगा तब तुम अकेली वहाँ किस तरह रह सकोगी?'

मृणाल—'इसकी व्यवस्था वे ही करेंगे। पर आपको तो शायद इन सब पर विश्वास नहीं है?'

सुरेश—'क्या?'

मृणाल—'भगवान् को तो आप मानते नहीं।'

सुरेश—'नहीं।'

मृणाल—'तो फिर जो कुछ भी मैंने कहा उस पर आपका विश्वास नहीं जमा होगा।

सुरेश—'मैंने एक बार देखा है कि जो अपने अदृश्य भविष्य को किसी अदृश्य शक्ति के सहारे छोड़ देते हैं, वे अधिक सन्तुष्ट और सुखी होते हैं। पर छोड़ो भी इन बातों को अन्यथा मेरे प्रति तुम्हें घृणा होने लगेगी।'

मृणाल ने सुरेश को ऐसा कहते ही झट झुककर उसके पैर की धूल माथे पर लगाकर कहा—'रहने भी दो ऐसी बातें।'

सुरेश चकित रह गया, बोला—'मृणाल! यह सब क्या!'

मृणाल—'क्या?'

सुरेश—'बिना बात ही पैर क्यों छू लिये?'

मृणाल—'क्यों, क्या हुआ? क्या भइया के पैर छूने में भी बात बे बात का विचार करना होता है!' और हँसती हुई चली गई।

सुरेश हतबुद्धि-सा बैठा रहा अपने आप ही में गोते खाता हुआ—'क्यों मृणाल ने पैर छुए और अचला का चेहरा श्लान्त हो गया?'

दोनों में क्या सम्बन्ध है? तो मृणाल ही क्यों गई और अचला भी क्यों चली गई? सारी बातें याद कर भी वह इसका सूत्र न पा सका। पर यह उसने समझ लिया कि इनमें कुछ न कुछ सम्बन्ध है। अकारण ही यह सब कुछ नहीं हुआ है। हो सकता है, अनजाने में उसके किसी व्यवहार के कारण यह सब हुआ है। यह सोचकर उसका मन अत्यन्त व्यथित हो उठा। पर वह जानता था कि मृणाल से इस विषय में कुछ भी पूछना बेकार है। किसी तरह रात बिताई, और सवेरा होते ही अकेले में अचला से पूछ ही बैठा—'एक बात बताओगी अचला?'

अचला समझ गई कि प्रश्न निश्चय ही कल की घटना के सम्बन्ध में ही होगा। उसका चेहरा मारे लज्जा के सुर्ख हो गया। बोली—'पूछिए'

सुरेश—'मैंने मृणाल की सास के मरने की बात कही थी तो क्या उसी कारण वह मेरे पैर छूकर चली गई थी और तुम भी रूठकर चली गई? सो क्यों?'

बात वास्तव में यह न थी, चूँकि सुरेश ने स्वयं अपने प्रश्न का उत्तर भी सुझा दिया था, झट सहारा पा अचला ने भी उसी बात को पकड़ कर सिलसिला पूरा कर दिया, बोली—'तुम स्वयं सोचो, पति रहा नहीं, सास के बाद वह निःसहाय हो जायगी। तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी।'

सुरेश—'मुझसे गलती हो गई। पर अब और अधिक जीयेंगी नहीं, यह तो मृणाल भी कहती है, और फिर वह क्यों निःसहाय होने लगी?'

अचला—'तुमने तो उस बेचारी को नाहक में ही इतना डरा दिया।'

सुरेश—'तो अब जाते समय मैं उसे समझा दूँगा कि डरने का कोई कारण नहीं है।' उसका हृदय द्रवित हो गया और कण्ठ भर आया।

अचला हँस पड़ी। वह पहले भी सुरेश के इस रूप से परिचित हो चुकी थी। हँसते हुए कहा—'नहीं! तुम्हें कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है। जब मौका पड़ेगा तब मैं ही उसे सँभाल लूँगी।'

सुरेश फिर अचला के प्रति आवेश में आ अपनी सुध-बुध भूल गया

और उसने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे प्रेम से कस कर हिलाते हुए कहा—मुझे तुमसे यही आशा है। यही तो खूबी है तुम्हारी और दूसरे ही क्षण अपने ही आचरण पर स्वयं लज्जित हो हाथ छोड़ कर भाग गया।

कहाँ उसके भावावेश का उद्गम दूसरे के दुःख में दुःखी होने से आरम्भ हुआ था और इस प्रकार अपने आचरण से लज्जित हो भाग जाने से वह कुत्सित और दूषित हो वासनामय हो गया। अचला घबरा गई और जोर-जोर से साँस ले हाँफने लगी। माथे पर पसीना आ गया। पास कुर्सी पर शिथिल हो बैठ गई, पर महिम की शय्या के पास बैठने की हिम्मत उसे आज नहीं पड़ रही थी।

जाते-जाते मृणाल दो दिन और न गई। आज जाने की उसकी तैयारी है। जाते समय वह महिम से बिदा माँगने गई तो वह नींद में करवट लिये पड़ा था। वह जानती थी कि वह दिखावटी नींद है, फिर भी धीरे-धीरे उसने अचला से कहा—'भाभी! अब भइया को जगाना ठीक नहीं है न!'

उत्तर में अचला के ओठ जरा से तिरछे हो मुस्करा दिये। मृणाल ने उसकी हँसी ताड़ ली कि महिम की मान-मनावन की नींद को उसके अलावा अचला भी समझ गई। हालाँकि महिम ने उसे कभी नहीं बताया था कि अचला उससे द्वेष रखती है फिर भी वह सब समझती थी। इस द्वेष का कोई सत्य आकार नहीं था। इसी कारण मृणाल इस अकारण द्वेष से और भी व्यथित हो जाती थी। पर उसने यह न सोचा था कि अचला का द्वेष बीमार महिम की उसके प्रति पवित्र भावना और मान-मनावन की इस क्रिया को अपवित्र रूप में देखेगा। यह सोच मृणाल का मन विदीर्ण हो गया, बोली—'भाभी तुम्हीं मेरी तरफ से जगाने पर इनसे माफी माँग लेना। जानती तो हो ही सब। अच्छे हो कर जब गाँव आयेंगे और तब तक यदि मैं जीती रही तो दर्शन करूँगी।'

केदार बाबू भी वहीं नीचे बैठे थे। पैर छू जब वह उठी तो उनकी

आँखें छलक आईं। सभी और वे भी इतने अल्प-काल में ही मृणाल से विशेष स्नेह रखने लगे थे। आँसू-पोंछ बोले—'बेटी, तुम्हारी ही कोशिशों ने और तुम्हारी ही सेवाओं ने महिम को काल-गाल से भी बचा लिया। तुम वास्तव में माँ तुल्य हो। माँ! जब जरूरत हो या इधर घूमने की इच्छा हो तो मुझे अपने बच्चे को भी मत भूल जाना। मेरा घर जब तुम्हारी इच्छा होगी, तुम्हारे लिए खुला रहेगा।'

अचला भी वहीं खड़ी थी। मृणाल ने उसकी ओर संकेत कर हँसते हुए उत्तर दिया—'क्या बिसात है यम की, यम के बाप की भी, जो इनके हाथ से भइया को ले। मेरा काम तो उसी दिन खतम हो गया जिस दिन इनके हाथ मैंने उन्हें सौंप दिया।'

केदार बाबू गम्भीर अवस्था में बैठे रहे।

मृणाल दो वृद्ध नौकरों के साथ और एक दासी के साथ घोड़ागाड़ी में बैठ गाँव जाने के लिए स्टेशन चल दी। जब वह चली गई, तब केदार बाबू एक लम्बी साँस भरने के बाद बोले—'अजीब लड़की है।'

सुरेश भी कुछ इसी तरह से सोच रहा था। केदार बाबू की बात का समर्थन करता हुआ बोला—'मेरे देखने में ऐसी लड़की नहीं आई केदार बाबू! इसकी-सी मीठी वाणी, काम में भी ऐसी कुशलता किसी में न पाई। हर काम को इस खूबी के साथ करती है, जैसे वही काम जीवन भर करती आई है। सबसे ताज्जुब की बात तो यह है कि ये सब गुण जब हैं, जब उसने कभी गाँव के बाहर कदम नहीं रखा।'

केदार बाबू इस सच्चाई को जानते थे फिर भी चौंक पड़े—'कहते क्या हो!'

सुरेश—'ठीक ही कहा है मैंने। इसको देख तो, जन्म-जन्मान्तरों के फल की किम्वदन्ती पर विश्वास-सा होने लगता है।' कह हँसने लगा। केदार बाबू कुछ देर चुप रह कर बोले—'सो कुछ भी हो, पर इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि यह स्त्री क्या है, हीरा है हीरा। इसका इसी प्रकार इस अवस्था में ही यह जीवन बिताने पर विवश करना इसके साथ घोर

अन्याय है। यह मेरी लड़की होती तो कभी बर्दाश्त न करता यह।'

सुरेश—'तो आप करते क्या?'

केदार बाबू—'पुनर्विवाह। उन्तीस-तीस साल की भरी उम्र में जिसने भी उस बुड्ढे के साथ नाता जोड़ा, वह इसका सगा नहीं शत्रु है। और इस काम को कभी उचित, न्यायसङ्गत नहीं कहा जा सकता।' रुककर फिर बोले—'ज़रा उस बुड्ढे खबीस का विचार तो करो। उसने दो-दो स्त्रियाँ मर जाने पर भी जवान लड़की से शादी कर इसके भविष्य का ज़रा भी ध्यान न दिया, अपना सुख ही सूझा उसे।'

सुरेश निरुत्तर रहा। केदार बाबू और भी तेज़ हो बोले—'मेरा मकसद नहीं कि विधवा विवाह के पक्ष-विपक्ष में विवाद खड़ा करूँ, पर इतना तो अवश्य कहूँगा कि तुम्हारा हिन्दू-समाज चाहे जितना इस सम्बन्ध में चिल्लाये, फिर भी मैं यह नहीं मानने का इस तरह कि नौ-जवान, जिन्होंने संसार का अभी कुछ भी नहीं देखा, मासूम कमसिन लड़कियों के विषय में भी वही कठोर समाज नियम लागू हो। उसके पास भला क्या चीज़ ऐसी है जिसके सहारे सारी भरी जवानी और सारा जीवन काटे। ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य चिल्लाने भर से ही तो काम नहीं चल जाता। मैं तो उसकी वेश-भूषा की तरफ देखता हूँ तो कलेजा मुँह को आने लगता है।'

सुरेश निरुत्तर रहा। पर जब उसने आँख उठाई तो जहाँ चौखट पर निश्चल अचला खड़ी थी, वहाँ अब वह न थी। कब चली गई वह जान ही न सका।

जब से मृणाल गई है तभी से अचला सुरेश के चेहरे पर अजीब शुष्कता का अनुभव कर रही है।

उस दिन से तीसरे दिन सुरेश धूप में बरामदे में कुर्सी डाले एक किताब पढ़ रहा था। तीसरे पहर की चाय का समय हो गया था। आहट पर उस तरह जो उसने आँख फेरी तो देखा कि अचला स्वयं ही चाय लिये चली आ रही है। यह पहला ही अवसर था जब अचला इस

प्रकार चाय आई हो। अतः वह सँभल कर बैठ गया। और बोला—'क्यों, नौकर को क्या हो गया जो तुम लेकर आई?'

अचला ने प्रश्न का उत्तर तो न दिया, एक स्टूल खींचकर उस पर चाय रख दी और एक कुर्सी पर स्वयं बैठ गई।

आगे सुरेश किसी प्रकार का प्रश्न न कर सका, चाय उठाकर चुपचाप पीने लगा।

कुछ देर बाद नीरवता को भङ्ग करते हुए अचला ने पूछा—'सुरेश बाबू बताइए! भला क्या आप विधवा विवाह को अच्छा नहीं समझते?'

सुरेश—'अच्छा समझता हूँ।'

अचला—'तो फिर आपको मृणाल जैसी लड़की से विवाह करने में आपत्ति न होगी?'

सुरेश—'तुम्हारा मतलब?'

अचला—'आपने मेरे ऊपर अनेक उपकारों का बोझा डाला है। मैं आपका भला चाहने वाली हूँ। एक दिन आप चाहते थे शादी करना। आज मैं आप से अनुरोध करती हूँ कि आप यह शादी कर लें, मैं आपको सुखी गृहस्थी के रूप में जीवन बिताते देखना चाहती हूँ।'

बड़ी देर तक तो सुरेश निस्तब्ध बैठ रहा, फिर बोला—'अचला! क्या सचमुच तुम्हें इससे सुख होगा?'

अचला—'हाँ!'

सुरेश—'और मृणाल भी तुम्हारे इस प्रस्ताव से सहमत होगी?'

अचला—'मुझे तो विश्वास है कि वह राजी हो जायगी।'

सुरेश ने हँसकर कहा—'मुझे विश्वास नहीं। पुराने समय में सती-प्रथा के अनुसार पति के साथ पत्नी हँसते-हँसते सती हो जाती थी। मृणाल भी वैसी ही स्त्री है। उसे राजी करना असम्भव है। कहीं मुझे भी उसकी नजरों में मत गिरा देना ऐसा प्रस्ताव करके, अचला। उसने मुझे कहा है भइया और मैं उसका यह विश्वास बनाये रखना चाहता हूँ!'

अचला को सुरेश की मृणाल की इतनी प्रशंसा ने झकझोर डाला

और उसका सारा चेहरा गुस्से से क्लान्त हो गया, कटु मृदु व्यङ्गात्मक ढङ्ग से कटाक्ष करती बोली—'मृणाल ही संसार में एक मात्र सती नहीं है सुरेश बबू! संसार में ऐसी भी सती हैं जो मन-ही-मन एक बार पति को चुन लेने पर लाख लालच दिखाये जाने पर भी भ्रम में नहीं आतीं, अटल रहती हैं।' यह कहकर चली गई।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

क्षण भर पहले सुरेश ने मृणाल की प्रशंसा दिल से की थी, पर वह यह न जानता था कि उसकी प्रशसा से अचला का दिल दुखी होगा और शायद अचला भी यह नहीं जानती थी कि उसे मृणाल की प्रशंसा इतनी चोट पहुँचाएगी। वह वहाँ से भागकर अपने व्यथित हृदय की घुमड़न को बरबस दबाकर अन्दर-ही-अन्दर अपने अन्तर को विदीर्ण करती कमरे का दरवाजा बन्द कर बिस्तर पर पड़ रही। पास ही के कमरे में महिम का पलङ्ग था, इस डर से कि कहीं रोगी की हूक उसके कानों में न पड़ जाय, वह अन्दर-ही-अन्दर रोती रही और कोई भी न जान सका उसके इस मूक रुदन को। परन्तु उसने जीवन में इस घटना से एक नया सत्य समझा कि स्त्री का सतीत्व उसके लिए कितने मूल्य की वस्तु है। एक दिन जब सुरेश ने आवेश में जबर्दस्ती उसको अपनी ओर खींच लिया था और फिर पिता ने उस पर सन्देह की दृष्टि से उसे देखा था तब उसे अत्यन्त क्षोभ और गुस्सा भी हो आया था, परन्तु जब आज उसी सुरेश के मुँह से जो क्षणिक वासनानन्द के लिए पर-स्त्री के साथ कुत्सित व्यवहार करने के आवेश में अपने को भूल जाता है, मृणाल के सतीत्व की भूरि भूरि प्रशसा सुनी तो उसने समझा कि वह कितने पानी में है।

उसने उच्च शिक्षा पाई थी। वह अच्छी तरह जानती है कि पातिव्रत्य धर्म ही स्त्री का भूषण है। पति के प्रति एकनिष्ठ रहने के लिए मन और शरीर दोनों की निष्ठा और पति के प्रति अटल रहने की आवश्यकता है। पर उस दिन उसके मन ने कह दिया—'पति से मुझे प्रेम नहीं और

जिह्वा ने निर्द्वन्द्व उस निर्लज्जता की घोषणा कर दी थी, तब मन और शरीर दोनों से उसने पति के प्रति विश्वासघात किया था। तब भी उसको अपनी करनी पर पछतावा न हुआ था, पर आज जब अनजान में सुरेश ने मृणाल के सतीत्व की प्रशंसा के साथ उसे सती का विशेषण दे दिया तो उसका सारा अन्तर अपने को ही कचोट उठा और वह बिलख बिलख कर रो उठी।

इस बात से मृणाल के प्रति उसका क्रोध कम हुआ हो और उस पर कुढ़ी हो सो बात नहीं; पर हाँ, उसने तब अवश्य सङ्कल्प किया कि आज जो उसकी आँखों ने नारी जीवन के एक महान सत्य को पहचाना है उसे कभी न खोयेगी।

कमरे से ही उसने आहट से जान लिया कि केदार बाबू आ गये हैं और सुरेश भी उनके साथ है और महिम को देखने जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद केदार बाबू बुला ही बैठे। रोती आँखों को आँचल से सुखा कर वह भी महिम के कमरे में पहुँची। उसकी आँखें सूजी-सूजी, उनींदी सी थीं। केदार बाबू उसकी ओर देख विस्मय से बोले—'मामला क्या है? चार बजने के करीब है अभी शोरवा नहीं दिया! कहाँ दो ही बजे देना चाहिए था! क्यों? सो रही थी क्या? आँखों में भारीपन-सा दिखाई पड़ रहा है।'

जब से महिम को शोरवा देने की व्यवस्था की गई है, मृणाल स्वयं ही उसे किया करती थी। चढ़ाने को तो नौकर आग पर चढ़ा दिया करता था, पर उतार कर सावधानी से जितना देना चाहिए, उतना वह स्वयं दिया करती थी। जब से वह चली गई तब से यह काम अचला करती थी। पर आज घटनाचक्र में आया ही बिसर जाने से वह शोरवा देने की बात बिलकुल ही भूल गई थी। केदार बाबू के याद दिलाते ही तुरन्त बाहर चली गई। जाकर देखा तो सारा शोरवा जल चुका था। वह खोई-सी काफी देर तक तो वहीं खड़ी रही फिर वापस आकर कमरे में उसी अवस्था में खड़ी हो गई। मामला समझ केदार बाबू ने उससे

तो कुछ न कहकर सुरेश से कहा—'सुरेश ! मैं अचला को खूब जानता हूँ। तुम सब उतना नहीं जान सकते। पहले ही मैंने कहा था कि महिम को बचाना है तो एक होशियार नर्स का प्रबन्ध करना पड़ेगा।'

सुरेश चुप बैठा रहा। पर महिम अचला के उतरे, शर्माये चेहरे की तरफ देख रहा था, धीरे से बोला—'पिछली दो रातों से लगातार इन को जागना पड़ा है। मशीन तो हैं नहीं ये, आराम के लिए थोड़ा अवकाश मिलना ही चाहिए। नर्स के हाथ से तो मैं दवा भी नहीं पी सकता सुरेश ! तुम इनकी सहायता के लिए इन्हें एक आदमी और दे दो।'

रात के समय अनेक बार अचला की भावना ने जोर मारा कि वह आज पति के समक्ष अपने समस्त अपराधों को स्वीकार कर क्षमा याचना करे और कहे कि उस अपावन, विश्वासघातिक को अपमान से बचाने के लिए वे शब्द क्यों कहे ? क्या पड़ी थी उन्हें ? पर लज्जा और सङ्कोच उसके मुँह पर रोक लगाते रहे और वह अन्त तक न कह सकी।

सुरेश का काम हो गया था रात को सोने जाने से पहिले महिम के कमरे की हर चीज ठीक-ठिकाने से है कि नहीं देख जाना। मृणाल के रहते तो वह रात में भी कई चक्कर उठ-उठकर लगाता था, पर उस दिन से उसे उसके कमरे में घुसने में भी सङ्कोच होने लगा, आते-आते सहम जाता। चेहरा अव्यक्त शर्म से झुक जाता। अब तो शाम को कभी एक बार थोड़ी देर को आ जाता है, नहीं तो नौकरों द्वारा ही खबर मँगा लेता है।

अचला ने पहले ही सुरेश के इस परिवर्तन को जान लिया था और वह तो कारण भी नहीं जानती थी पर उसके सम्बन्ध में कहती कैसे, जब वह स्वयं उसकी भागी है। पर जब महिम ने एक दिन इस सम्बन्ध में पूछा तब सिर्फ उसने इतना ही कहा कि वे तो घर में भी बहुत कम रहते हैं। इसका कारण पूछने पर उसने—'नहीं मालूम'—कह दिया और महिम भी सुनकर चुप रह गया।

सवेरे ही अचला और सुरेश की मुठभेड़ सीढ़ी पर हो गई। वह नीचे उतर रही थी और वह ऊपर जा रहा था कि सहसा उसे देख

सहमकर एक ओर ठिठक गया। अचला ने स्पष्ट ही समझा कि वह उस के ही सामने आने से बचना चाहता है। एक दिन अचला स्वयं चाहती थी कि सुरेश उससे दूर-दूर चले, पर आज जब सुरेश उसके कभी के मन वाञ्छित व्यवहार को कर था तो उसको पीड़ा होने लगी और सारा अन्तर उसके दूर रहने की वेदना से विह्वल हो गया।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

अचला अपना नित्य का कार्य तो करती, हर समय यह सोचती थी कि सुरेश उससे कितना प्रेम करता था कि हर समय अपने को भूला रहता। आज उससे दूर रहने लगा है और किसी और पर श्रद्धा करता है—उसे बेचैन करता रहता। यह बार-बार अपने से ही प्रश्न करती कि क्या कभी उसने भी जान-अनजाने में उससे प्रेम किया है? चाहा भी उसने इस विचार को हँसकर उड़ा देना, ऐसा होना सम्भव है और अब ऐसा होग तो वह अपने निर्लज्ज जीवन को ही समाप्त कर देगी। फिर भी सुरेश की दूरी उसे वेदना पहुँचाती ही रही। उसने अपने को इस विचार-सङ्घर्ष से बचाने के लिए महिम के कमरे में ही अपने को एक तरह से कैद कर दिया। और सिवा नहाने खाने के वहाँ से जाने का उसे साहस ही न होता। अपने सोने के कमरे में भी जाने में उसे सङ्कोच होता, मन नहीं करता वहाँ जाने का। इसी विचार-सङ्घर्ष में कई दिन बीत गये।

महिम अब प्रायः स्वस्थ हो चला था और बात चल रही थी कि उसे जलवायु परिवर्तन के लिए जबलपुर भेजा जाना चाहिए। सवेरे का समय था। अचला स्टोव पर महिम के वास्ते दूध उबाल रही थी। दूध बार-बार उफन आता था, अतः उसका ध्यान उसी पर एकाग्र था। महिम एकटक उसकी ओर ही देख रहा था इसका पता उसे न था। सहसा महिम ने ठण्डी आह भरी जिससे उसका ध्यान एक बार को टूटा और महिम की तरफ नजर उठा दूसरे क्षण फिर नीची कर ली।

महिम लम्बी साँस लेकर बोला—'अचला, बिना कष्टकर साधना के

इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं होती, यह सत्य ही है। मेरा मकान फिर भी बन सकता है। मैं स्वस्थ भी हो जाऊँगा, पर इस कष्ट के बीच मैंने तुमको पा लिया, अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमसे अलग होकर मेरा जीवन ही निस्सार है। एक दिन भी जीना मेरे लिए तुम्हारे बिना मुहाल हो जायगा।'

अचला ने कोई उत्तर न दिया, कटोरे में दूध ठण्डा करने लगी। महिम ने फिर कहना आरम्भ किया—'मृणाल और सुरेश दोनों ने मेरी बहुत सेवा की, बहुत खबर रक्खी, पर हर समय इसी विचार से बेचैन रहता हूँ कि जीवन में किस प्रकार इनके इस आभार से मुक्त हो सकूँगा। इन्होंने मेरे कारण ही इतना कष्ट सहा है। पर तुम्हारे आते ही मैंने समझा कि मेरा अपना कोई आ गया जिसका कर्तव्य ही है मुझे बचाना। फिर कभी यह विचार मुझे बेचैन न कर सका कि तुम्हारे आभार से मुक्त होना होगा।' महिम बहुत कम बोलता था। आज वह एक बारगी न जाने कब की हूक मिटाने को उद्यत हो गया था। जरा-सी मुस्कराहट से उसके ओठ खिल गये।

अचला निरुत्तर काम में लगी रही।

महिम ने फिर कहना शुरू किया—'अब दो न! ठण्डा ही करती जाओगी?'

अचला काम में लगी रही। महिम पहले तो कारण न समझा, अचला के इस आचरण पर चकित हुआ, पर उसे समझने में देर न लगी, आँसुओं के वेग को छिपाने के लिए ही वह इस तरह गुमसुम बैठी है।

महिम ने सुरेश के कमरे में अब न आने का सही कारण न जानते हुए भी मन में अनुमान कर लिया था जिससे उसे एक प्रकार का सन्तोषानन्द ही मिला। उसने समझा अचला अब सुरेश की तरफ से विशेष सावधान रहती है और इसी कारण कि कहीं गाहे बगाहे एकान्त में सुरेश से भेंट न हो जाय, वह उसका कमरा छोड़ कहीं न जाती। इस

चाव को देख महिम का हृदय फूल उठा था। मन-मयूर नाच उठा था।

उसी रात को अचला काफी रात गये तक भी उसी कमरे में कुर्सी पर बैठी पुस्तक पढ़ती रही, और वहीं कुर्सी पर ही सो भी गई। सवेरे महिम ने आवाज़ देकर उसे जगाया। उसने उठकर खिड़की खोली, तो देखा दिन काफी चढ़ आया था।

महिम उससे किसी काम के लिए कहना चाहता था पर सहसा रुक गया। एक गहरी नजर उस पर डाल, चकित स्वर में बोला—'यह क्या? तुम्हारा शाल कहाँ है?'

अचला ने शाल पर नजर डाली, विस्मय और शर्म से गड़ गई। जिसे वह सोकर उठकर ओढ़कर आई है, वह उसका नहीं, सुरेश का दुशाला है। उसका चेहरा सफेद पड़ गया। उसे अच्छी तरह याद है कि अपने ही शाल को पैरों के नीचे रख धोती का पल्ला ओढ़कर ही बैठी पढ़ रही थी। बीच में कई बार उसे जाड़ा लगा था यह भी उसे याद है। सोकर उठी है तो उस पर शाल है।

अचला शर्म से गड़ी जा रही थी। यह देख महिम ने जरा हँसकर कहा—'नौकर की गलती से उलट-पलट गया होगा, या फिर कल शाम को सुरेश ही यहीं भूल गया होगा, रात में तुमने अनजाने में ओढ़ लिया होगा। शर्माने की इसमें कौन-सी बात है। नौकर को बुलवाकर बदलवा मँगाओ।'

'अच्छा।' कहकर अचला जाकर अपने कमरे में शिथिल होकर पड़ रही। अब समझने को कुछ भी बाकी न रहा था कि सुरेश रात को सोते समय उसकी मयूर आँखों को देखने के लिए वह आया था और जाड़े में कुछ भी ओढ़े न देख अपना ही शाल ओढ़ाकर चला गया। सुरेश की पिपासु आँखों का चित्र उसकी आँखों के सामने साकार हो उठा जिसके मारे वह काँप उठी और सिहरन से रोंगटे खड़े हो गये। वह सम्भवतः नित्य ही इस प्रकार उसे देखने के लिए आता होगा सबसे छिपकर।

सुरेश का यह आचरण उसे तुच्छ कुत्सित जान पड़ा और उसका मन उसे हर तरह से धिक्कार कर अपमानित करने लगा। अपने अतिथि के कमरे में इस तरह चोर की तरह घुस आने के अपराध को वह कभी माफ न करेगी, कभी माफ न करेगी। बार-बार उसका दिल चीत्कार कर यही दुहराने लगा। पर उसी क्षण इस विचार का खण्डन भी उसके अन्तर ने मूक रूप से कर दिया और न क्षमा करने के विचार से सिहर उठी।

महिम के जलवायु परिवर्तन के सम्बन्ध में केदार बाबू के छुटपन के एक मित्र ने जबलपुर से उत्तर दिया था कि जबलपुर की जलवायु स्वास्थ्यप्रद है और दृश्य अत्यन्त सुन्दर, मन को हर समय प्रफुल्लित रखने वाला। महिम को वे अपने ही मकान में रहने का स्थान दे देंगे, क्योंकि उनका मकान काफी बड़ा है। केदार बाबू ने आकर यह सूचना दी और कहा—'अब तो महिम भी थोड़ा स्वस्थ हो गया है और यात्रा की तकलीफों को बर्दाश्त कर सकता है। माघ का महीना बीत चला है। यही समय वहाँ जाने को उपयुक्त होगा। वहाँ जगदीश की पत्नी मौजूद हैं, महिम को अपना बेटा समझकर ही वे इसकी देख-भाल करेंगी। मैं भी साथ घूम आऊँगा।'

महिम ने सुन तो लिया, पर किसी प्रकार का उत्साह न जाहिर किया। अचला ने उसके प्रस्ताव के प्रति इस उदासीन भाव को ताड़ लिया और जब केदार बाबू वहाँ से चले गये तो उसने बड़े मृदु कण्ठ से पूछा—'क्यों, क्या जबलपुर जाने को मन नहीं करता? जगह तो अच्छी है।'

महिम—'मैं अभी उतना स्वस्थ नहीं हो पाया हूँ जितना तुम लोग समझते हो और मुझे आशा भी नहीं कि कभी पूर्ण स्वस्थ हो भी पाऊँगा।'

अचला—'अभी तो डॉक्टर की सलाह है कि तुम जलवायु परिवर्तन के लिए जाओ।'

महिम थोड़ी देर बाद बोला—'नहीं मालूम वहाँ भी स्वस्थ हो

पाऊँगा या नहीं। सच बात तो यह है अचला कि तुम्हारे बिना एक दिन भी मेरा जीवन नहीं चल सकता। अपने पर या किसी दूसरे पर निर्भर कर स्वर्ग जाने का भी साहस नहीं है।' कहते-कहते उसका गला भर गया।

महिम ने आज तक इस प्रकार अपने अन्तर की कमजोरी किसी के सामने प्रकट न की थी। अचला उसकी, उसके सामीप्य की भीख की विकलता को देख द्रवित हो उठी। उसका अन्तर करुण स्नेह से भर उठा और वह अपने को न रोक सकी। आँखों में प्रेमानन्दावेश थे, आँसू बह उठे। उसके लिए कमरे में और अधिक बैठा रहना असम्भव हो गया, वह उठकर बाहर चली गई।

काफी देर तक तो महिम जिस दरवाजे से अचला चली गई थी भरे हृदय से एकटक देखता रहा, फिर सो गया।

दूसरे दिन प्रातः मिलने पर न तो महिम ने ही और न अचला ने ही पिछले दिन के सम्बन्ध में चर्चा की। अचला ने हँसकर एक तार का उसे सूचना दी, जगदीश बाबू ने जबलपुर से तार भेजा है। अपने मकान के पास ही हमारे लिए एक मकान ठीक कर दिया है।

महिम पूरी बात न समझ सका, पूछा—'इसका मतलब ?'

अचला—'बाबू जी के वे दोस्त हैं। एक आदमी भर को तो अपने मकान में वे जगह कर सकते हैं। पर दो का बोझ उन पर लादना ठीक न था। बाबू जी ने एक अलग मकान ठीक करने को उन्हें तार दिया था। मकान ठीक कर, उस तार का उन्होंने जवाब दिया है।' कह, तार महिम के बिस्तर पर रख दिया। महिम ने उसे पढ़ डाला।

यह तो उसकी समझ में आ गया था कि अचला उसके साथ जाना चाहती है, पर अभी तक उसका कल का व्यवहार उसकी समझ में न आया था और न उसने उसे जानने की चञ्चलता ही दिखाई।

अचला ने जाने की तैयारी कर दी। अपने घर जाकर भी उसने सब सामान ठीक किया। केदार बाबू ने उससे कहा भी—'बेटी, अगर तुम न जाओ तो कोई हर्ज होगा ?'

अचला—'क्यों न जाऊँ बाबूजी ?'

वे अचला से यह तो साफ-साफ कह न सके कि स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से तुम्हें अभी उससे कुछ दिन और अलग रहना चाहिए। बात बनाकर महिम की आर्थिक कठिनाई का कारण बता, आगे बोले—'क्या लाभ खर्च बढ़ाने से ! वहाँ भी उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो पायेगा। जगदीश तो है ही, सब ठीक कर लेगा।'

अचला—'शायद उन्होंने खर्च के सम्बन्ध में आपसे कहा होगा ?'

केदार बाबू अचकचा कर बोले—'नहीं-नहीं, उसने तो कुछ भी नहीं कहा। वह तो मैं ही सोचता था कि ···।'

अचला—'तुम सोच मत करो ! मैं ठीक कर लूँगी सब।' कह काम में जुट गई और सब की आँख बचा उसने अपने दो जेवर बेच डाले।

आधे फागुन के लगभग जाने का प्रोग्राम निश्चित ठहरा। सुरेश की बुआ जी ने पुरोहित बुलाकर पहले सप्ताह में ही शुभ तिथि निश्चित करा दी और अन्त में यही तय रही।

अचला का सारा अन्तर खिल उठा था अव्यक्त आनन्दोत्साह से जाने के दो दिन पहले से ही। यह सोच-सोच कर कि पश्चिम में अनेक देखने योग्य स्थान हैं, ऐतिहासिक स्थान भी हैं, वन, पर्वत, घाटी, सरिताएँ हैं, सुन्दर जलवायु है, वह वहाँ पति की सेवा करेगी। वह होगी और उसका अपना महिम होगा। वह स्वयं गृहस्थी का भार सँभाल उसे सुचारुरूप से प्रेम पूरित आनन्द के वातावरण के बीच चलायेगी। स्वस्थ होंगे और फिर सम्भवतः वहीं कहीं अपनी सबसे न्यारी प्रेम नगरी बसाकर सुख से जीवन बितायेगी। शीघ्र ही नये सुकुमार मासूम नये चेहरों का आगमन होगा।' उनके स्वागत भाव से उसका सारा अन्तस्तल खिल उठा, मन आनन्द-विभोर हो उठा और वह प्रेमानन्द में खो गई। महिम ने भी उससे कहा था कि वह उसे छोड़ स्वर्ग भी नहीं जाने का।' इससे तो उसके समस्त राग तन्तुओं को झंकृत कर हर्ष-रस पूरित कर दिया और आज स्वयं उसके मन की सारी ग्लानि, क्षोभ, व्यथा, विद्वेष साफ हो गया

और उसका अन्तर स्वच्छ हो उसको स्फूर्ति देने लगा अपनी नई दुनिया को साकार बनाने के लिए। उसे इच्छा हुई कि एक बार मृणाल की ओर देखे और छाती से चिपटा कर अपने गत सारे अपराधों का क्षमा माँगे। सुरेश के प्रति भी उसका हृदय द्रवित हो गया। गत कई दिनों से उसके प्रति उसने जो कठिन बाँध बाँध दिये थे, वे शिथिल हो गये। जब उससे मिलने के लिए उसने पता लगाया तो मालूम हुआ कि वह कल से ही घर पर नहीं है।

आज जाना था। सब तैयारी पूरी हो चुकी थी। सामान भी कुछ स्टेशन भेजा जा चुका था। टिकट भी लिये जा चुके थे। अचला ने अपने लिए दूसरे दर्जे का टिकट लेने का घोर विरोध किया कि बेकार रुपये खर्च करने से कोई लाभ नहीं है। वह स्वस्थ है और फिर अनेकों सम्भ्रान्त घर की स्त्रियाँ इण्टर में सफर करती हैं। वह तो इण्टर में ही जायगी।

सवेरे से ही बूँदा-बाँदी हो रही थी।

सुरेश का पिछले दो दिन से कहीं पता न था। आज चूँकि पानी बरस रहा था अथवा और कोई कारण भी हो सकता है। पता नहीं; वह अपने पढ़ने के कमरे में बैठा पत्र लिख रहा था। अचला ने वहाँ जाकर कहा—'सुरेश बाबू, क्या हमसे कोई इतना बड़ा अपराध बन पड़ा है कि आप इस जन्म में अब हमारा मुँह ही न देखेंगे।'

सुरेश ने अचला की तरफ आँख उठाई। सुरेश का चेहरा बिलकुल वैसा ही झुलसा मुरझाया हुआ था—शायद व्यथा की अग्नि से जैसे अचला का घर जल जाने से आस पास के पेड़ पौधे झुलस कर विकृत पत्रहीन हो गये थे। वह पास चली गई और व्यग्र स्वर में बोली—'क्या आप अस्वस्थ हैं सुरेश बाबू? आपने बताया तक भी नहीं?'

पल भर को उसकी आँखें उठकर झुक गईं और उसने कहा—'नहीं नहीं! मैं तो स्वस्थ हूँ। पूरी तरह से स्वस्थ हूँ।' कह किताब पर आँखें गड़ा दीं और पन्ने पलटने लगा। बोला—'तो आज जा रहे हो तुम

लोग। अब न जाने कब मुलाकात होती है। सब प्रबन्ध तो हो गया है न?'

अचला ने कोई उत्तर नहीं दिया। सुरेश ने आँखें ऊपर कीं, तो देखा अचला रो रही है।

सुरेश की शिराएँ आवेश में आसक्त हो उनमत्त हो सिहर उठीं। पर दूसरे ही क्षण जबर्दस्ती उसने अपने मन को काबू में कर लिया और आँखें नीचे कर लीं।

अचला ने आँसू पोंछते हुए कहा—'साफ जान पड़ता है कि तुम अस्वस्थ हो, तुम भी न चलो हम लोगों के साथ?'

सुरेश—'मैं तो नहीं चल सकता।'

अचला—'आखिर क्यों? क्या...?'

तभी नौकर कमरे में चाय लेकर आ गया। अचला की बात बीच में ही रुक गई और वहाँ से चली गई। घण्टे भर बाद वह महिम के पास पहुँची, तो महिम ने पूछा कि क्या सुरेश आज भी नहीं है? जानती हो कहाँ गया है? बुआ जी भी नहीं जानतीं। क्या जाते समय भी मुझसे न मिलेगा?'

अचला—'आज तो बाहर गये नहीं।'

महिम—नौकरानी ने बताया कि वह कहीं बाहर चला गया।'

अचला ने उत्तर नहीं दिया।

'उसने अनेक बार तुम्हारी जीवन-रक्षा की है।' आज वह अस्वस्थ है, तुम्हें उसे अपने साथ ले चलना चाहिए। अब मुझ पर उनके प्रति किसी प्रकार का सन्देह मत करो, उनसे अब किसी तरह का खतरा नहीं है।' आदि बातें कहना चाह कर भी वह न कह सकी।

'स्टेशन जाने का समय भी हो गया।' केदार बाबू ने नीचे से आवाज दी। सामान गाड़ी पर लद चुका था, सुरेश का ही कहीं पता न था।

एकान्त में अचला को पा केदार बाबू उसके माथे पर स्नेह से हाथ

फेरते हुए शुभाशीर्वाद देने लगे—'बेटी, माँ की तरह ही पतिव्रत-धर्म निभाना। बुढ़ापे के आवेश में अनेकों भली-बुरी कह गया उसका ख्याल मत करना।' कह अलग हो गये।

महिम जब गाड़ी पर सवार हो रहा था धीरे से उसने कहा—'सुरेश नहीं आया हम लोगों से मिलने। मैं उससे एक बात कहना चाहता था। पर कल से राह देखता ही रह गया।'

केदार बाबू की अन्तिम मुलाकात से उसका हृदय स्नेहाभिभूत हो रहा था और आँखें स्नेहाश्रु से गीली, कुछ उत्तर न निकल सका उसके मुँह से, केवल गरदन भर हिला दी।

अचला ने दरवाजे की आड़ में खड़ी बुआजी के पैर छुए। और उन्होंने उसे स्नेहार्द्र कण्ठ से आशीर्वाद दिये—'अचला सुहागिन हो। महिम के जल्दी से स्वस्थ हो जाने पर लौटा लाओ, भगवान् से तेरे इसी शुभ के लिए प्रार्थना करती हूँ बेटी।'

अचला ने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—'बुआजी, मेरे सुख के लिए यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है।' केदार बाबू के कान में भी ये शब्द पड़े और वे भी स्नेहातिरेक से भर उठे और अपने गत सन्देहों की याद कर मारे शर्म के वे धरती में गड़ने से लगे।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

पानी लगातार बरस रहा था। हावड़ा स्टेशन के सारे प्लेटफार्म पर पानी और कीचड़ हो गई थी। उससे बचकर निकलने के प्रयास में मुसाफिर भीड़ में होकर सामान लादे रास्ता बनाकर आ-जा रहे थे। स्टेशन से पश्चिम की ओर को जानेवाली गाड़ी छूटने में अभी दस मिनट थे कि अचला ने देखा कि सुरेश एक भारी बक्स लिये चला आ रहा है।

केदार बाबू को सुरेश के आने पर आश्चर्य तो कम हुआ नहीं, पर साथ ही दुश्चिन्ता भी कम नहीं हुई। पूछा—'तुम किधर चले, सुरेश?'

उनको उत्तर न दे अचला को लक्ष्य कर बोला—'जब से तुमने आज

सवेरे मुझे, मेरे गिरते स्वास्थ्य की तरफ ध्यान दिला दिया है, मैंने तब समझा कि मेरा स्वास्थ्य कितना गिर गया है। सोचा चलूँ कुछ दिन तुम्हारा अतिथि ही बनकर देखूँ कि कुछ स्वास्थ्य लाभ होता है कि नहीं। नहीं तो मैं···।'

महिम ने बात काट दी, बोला—'यह तो और भी अच्छा रहेगा। तुम्हारे से उस अनजाने देश में सहायता ही मिलेगी।' क्षण भर को उस ने अचला की ओर नजर डाली और ऊँचे स्वर से बोला जिसे सभी ने सुना—'लुक-छिपकर इनके स्वास्थ्य की फिकर करने की क्या जरूरत थी अचला। आज ही सवेरे तुमने इनसे यह सब बातें कही हैं। मुझसे नहीं बताया?'

अचला दूसरी तरफ जैसे मुँह किये थी वैसे ही किये रही। सुरेश हतबुद्धि हो गया। दूसरे ही क्षण व्यग्र हो बोला—'गाड़ी छूटने में अब देर नहीं है। पहले गाड़ी पर चढ़ लो तब बातें करना।' और भीड़ चीर रास्ता करता हुआ स्वयं ही गाड़ी की तरफ आगे बढ़ा।

महिम को विदा कर केदार बाबू ने अचला को जनाने डिब्बे में बिठा दिया। गाड़ी छूटते समय सुरेश ने केदार बाबू के पैर छुए तब उन्होंने स्नेहार्द्र स्वर में कहा—'मुझे सन्तोष है कि अब रास्ते में किसी प्रकार का कष्ट न होगा। तुम जो साथ में हो। अचला का डिब्बा जरा दूर पड़ गया है, उतरकर खबर लेते रहना। और महिम, तुम पहुँचते ही कुशल समाचार देना।'

गाड़ी छूट गई। केदार बाबू के अन्तिम स्नेह-पूरित शब्द दूर तक दोनों मित्रों के कानों में गूँजते रहे।

ठण्ड के डर से महिम ने कम्बल ओढ़ लिया और लेटते ही सो गया। सुरेश बैठा रहा, उसके चेहरे पर अजीब भाव-रेखायें थी, आँखों में भीषण अन्तर सङ्घर्ष की खुमारी थी, पर उसकी इस दशा को किसी ने देखा नहीं।

गाड़ी पैसेंजर थी। हर छोटे-बड़े स्टेशन पर खड़ी होती, मन्थर गति

से लक्ष्य की ओर बढ़ रही थी। एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी रुकने को धीमी हुई तो महिम ने कम्बल से मुँह निकाला, बोला—'भीड़ तो नहीं है जरा आराम कर लिया होता। क्या पता आगे भी ऐसी जगह मिलती रहेगी या नहीं!'

सुरेश चौंक गया, बोला—'सोना! सो जाऊँगा, अभी-अभी सो जाऊँगा!'

महिम सुरेश के चौंकने का कोई कारण न समझ सका। और उस पर विस्मय हो उठा। उसके चौंकने से ऐसा प्रतीत हुआ, महिम को, जैसे वह कोई असम्य अपराध करने जा रहा हो और पकड़ा गया हो।

गाड़ी स्टेशन पर रुक गई। सुरेश ने भी असमय के अपने चौंकने पर स्वयं ही आश्चर्य किया और सफाई देता हुआ बोला—'मैं तो समझता था कि तुम सो रहे होगे, पर तुम तो जाग रहे हो। तभी चौंक गया।'

महिम ने न सफाई चाही थी और न यह सफाई जँची ही, सिर्फ अन्यमनस्कता से—'हूँ'—कह दिया।

सुरेश—'शायद किसी बात की उनको जरूरत हो? जाता एक बार···।'

महिम—'पानी बरस रहा है जो। सो कोई बात नहीं। अभी आया देखकर।' कह झट दरवाजा खोल बाहर लपक गया।

जनाने डिब्बे में जाकर देखा कि अचला एक उसी की उम्र की स्त्री से बातें कर रही है। उस स्त्री ने सुरेश को देख लिया और तुरन्त ही स्त्रियोचित भाव से संकेत कर अपना मुँह फेर लिया। अचला ने सुरेश को देखा तो सुरेश ने पूछा—'किसी चीज की जरूरत है?'

अचला—'मुझे तो कुछ नहीं चाहिए। पर तुम इस पानी में आये क्यों? जिनकी चिन्ता की आवश्यकता है उनकी चिन्ता करो जाकर, मेरी चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।'

सुरेश—'उनकी तो रखूँगा ही। पर तुम्हें खाना, पानी कुछ···।'

Long live

अचला ने मुस्कराकर कहा—'तुम इस तरह पानी में भीगकर बीमार पड़ोगे क्या ? मुझे कुछ नहीं चाहिए।'

सुरेश ने अचला पर नजर डाल आँखें नीची कर लीं, बोला—'मना तो बहुत दिनों से रहा हूँ, पर हम जैसों को बीमारी नहीं आती।'

अचला का सारा चेहरा लाल हो उठा, पर सुरेश की कहीं उस पर नजर न पड़ जाय, हँसकर व्यङ्ग करती बोली—'वहाँ पहुँच तो लो पहले। वहाँ वह मेहनत कराई कि···।' बीच में ही वह स्वयं अपने शब्दों से शर्मा गई।

गाड़ी छूटने का सिगनल हो गया। वह कुछ कहना चाह कर भी बिना कहे डिब्बे की तरफ जा रहा था कि मृणाल के खिंचाव से रुक गया। देखा एक छोर अचला की मुट्ठी में है। आहिस्ता से उसने कहा—'बताओ तो ! तुमने सबके सामने यह कहकर कि मैंने तुमसे कहा था साथ चलने को, मुझे लज्जित क्यों किया ?'

सुरेश भी इसी बात को तभी से सोच कर पछता रहा था, बोला—'भूल हो गई।'

अचला ने तीव्र कण्ठ से कहा—'भूल नहीं ! जान-बूझकर ही तुमने ऐसा किया है।'

गाड़ी चल दी, सुरेश आगे कुछ भी न कह सका, डिब्बे की तरफ लपका। अचला ने तभी देखा कि महिम भी व्यग्र हो खिड़की से मुँह निकाले सब देख रहा है। वह आकर सीट पर बैठ गई, तब उसी स्त्री ने पूछा—'क्या ये ही तुम्हारे पति हैं ?'

अचला का ध्यान उस ओर न था। प्रश्न पूरा न समझकर सहसा 'हूँ' कह दिया। उसकी नजर तो खिड़की के बाहर रेल के साथ दौड़ते मैदान, पेड़, खेत, खम्भों पर जमी थी। बातों का जो सिलसिला बीच में ही छोड़ कर वह सुरेश से बातें करने उठी थी फिर उसको शुरू करने को उसका मन न हुआ।

गाड़ी अपनी अथक गति से गाँव पर गाँव पार करती बढ़ती जा रही

थी। काफी देर बाद वह अपने सहज स्वभाव में आ पाई और उस नई नई बनी रेल की सहेली से बातों में लीन हो गई, घण्टे भर पहले क्या हुआ था, भूल-भाल कर।

एक दूसरे स्टेशन पर फिर सुरेश आया और अबकी बार एक होटल का नौकर चाय तथा कुछ खाने की चीजें लेकर उसके साथ आया। अचला ने सारी चीजें लेकर स्नेह-मिश्रित स्वर में कहा—'क्या जरूरत थी इन चीजों की? सम्भवतः तुम्हारे मित्र ने ही भेजा होगा कि ले जाओ, दे आओ ये तमाम चीजें। क्यों?'

अचला जानती थी कि खातिरदारी करने में सुरेश कभी किसी की बात सुनता नहीं, फिर भी इतना व्यङ्ग-भरा उलाहना दे ही दिया उसने।

सुरेश वापस जा रहा था, मन्द-मन्द मुसकुराता हुआ, कि अचला ने आवाज देकर वापस बुला लिया। उसके लौटने पर अचला के ओठों पर स्निग्ध मुस्कुराहट की मधुर अलमस्त आभा थिरक उठी। सुरेश आँखों-ही आँखों में उस मोहिनी आभा के रस को पी गया।

बुलाया तो था अचला ने इसलिए कि वह महिम की खैर-खबर पूछे—क्या हालत है उनकी? किसी प्रकार की कोई आवश्यकता, कष्ट आदि कोई, उससे मिलने आ सकते हैं या नहीं? पर कुछ भी न पूछ सकी, सिर्फ इतना भर पूछा, इलाहाबाद में गाड़ी न बदलनी होगी हम लोगों को, क्या एक बार पता लगा कर बता सकोगे कि कितनी रात गये पहुँचेगी वहाँ?

सुरेश—'अच्छी बात है।' कह वह चला गया। अचला सीट पर लौट आई, देखा तो वह स्त्री जरा दूर हटकर बैठ गई है। अचला को उसका यह आचरण बुरा लगा, पूछा—'शायद आपके घर में कोई चाय और डबल रोटी नहीं खाता?'

स्त्री—'आज के जमाने में कौन घर बचा होगा।'

अचला—'तो फिर इतनी दूर क्यों खिसक कर बैठ गई?'

वह लज्जित हो गई, बोली—'कोई विशेष कारण नहीं। आदमी तो

सभी खाते-पीते हैं, पर मेरे ससुर जी जरा परहेज करते हैं और फिर औरतों को तो···।'

एक दिन खाने-पीने के पीछे ही मृणाल के साथ उसकी अनबन हो गई थी। जैसे उस दिन वह अपने गुस्से को न रोक सकी थी, आज भी न रोक सकी। बोली—'मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पड़े या आप दुखी हों!' कह तुरन्त ही उसने सारी चीजें खिड़की से बाहर फेंक दीं। स्त्री दङ्ग रह गई स्थिर मूर्तिवत्। और वह अचला की तरफ अचरज से देखती रही। बाद में मुँह फेर लिया उधर से और धोती से आँसू पोंछ कर बैठ गई। सम्भवतः उसे यही खयाल हो रहा था कि अजीब स्त्री है, इतनी देर की जान-पहचान की भी बात न रखी इसने, और मेरे आँसू देखकर भी और कुछ न कर बैठी।'

पानी बरसना बन्द हो गया था, पर बादल अब तक आसमान पर घुमड़ रहे थे, और थोड़ी देर बाद ही फिर पानी बरसने लगा। आरा स्टेशन पर उस स्त्री को उतरना था इसी पानी में। स्टेशन नजदीक आ रहा था और उसने उतरने की तैयारी शुरू कर दी थी।

अब अचला से शान्त बैठे न रहा गया, उठकर उसके पास जा बैठी। उसका हाथ अपने हाथ में लेकर स्नेह से बोली—'मुझे क्षमा करो बहिन! मैं शर्मिन्दा हूँ अपने व्यवहार के लिए।'

स्त्री मुस्करा दी, पर उत्तर न दिया। अचला ने आगे कहा—'मेरे पति अस्वस्थ हैं, उन्हीं को लेकर जलवायु-परिवर्तन के लिए जा रही हूँ। मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहता, तभी ऐसी-वैसी बातें कर बैठती हूँ। देखो स्वस्थ हो गये तो ठीक है, नहीं तो परमात्मा ही जानते हैं क्या होगा मेरा उस बेगाने देश में।' कहते-कहते गला भर गया।

युवती चौंक उठी, पूछा—'आपके पति देखने से तो अधिक बीमार नहीं लगते!'

अचला—'ये तो उनके दोस्त हैं। आपने मेरे पति को देखा नहीं, वे इसी गाड़ी में दूसरे डिब्बे में बैठे हैं।

उस स्त्री को और भी विस्मय हुआ, पर बोली नहीं, कुछ चुप रही।

पहले इन्हीं के सम्बन्ध में पूछने पर कि क्या ये ही तुम्हारे पति हैं—उसने 'हूँ' कह दिया था, यह दूसरा उसका परिचय देते समय अचला को उस बात का ध्यान ही न रहा, पर इस स्त्री को अभी तक याद था। उसके आश्चर्य को सही रूप में न समझ सकने के कारण अचला ने उसका निवारण बिलकुल दूसरी बात कह कर किया। उसने समझा कि सम्भवतः इस स्त्री को इतना जो आश्चर्य हुआ है, वह सुरेश के प्रति उसके व्यवहार के कारण है। जो एक साधारण हिन्दू नारी की कल्पना के बाहर है कि एक पर-स्त्री अन्य पुरुष से इस प्रकार खुलकर हँसी-मज़ाक करती हुई बात करे अतः उसने अपने व्यवहार की सफाई देते हुए कहा, जो बिलकुल ही अनुपयुक्त था; बोली—'हम ब्रह्मसमाजी हैं, हिन्दू नहीं।'

वह युवती अब भी कुछ न बोली, तो अचला ने उसका हाथ छोड़ते हुए कहा—'हम लोगों का व्यवहार, रहन-सहन का ढङ्ग आपको ज़रूर आश्चर्य में डाल रहा होगा, क्योंकि आप परिचित नहीं हमारे रहन-सहन के तौर-तरीकों से।'

इस बार युवती ने हँसकर उत्तर दिया—'मेरे भी कुछ रिश्तेदार ब्रह्मसमाजी हैं। उनसे मैंने आपके समाज के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें जानी समझीं। आप ही लोग हम लोगों से अलग-अलग रहते हैं, न जाने किस कारण से, अन्यथा हम तो आपको अपने से अलग नहीं समझते।'

अचला—'क्या कारण है वहाँ?'

स्त्री—'आप तो जानती होंगी और यदि न जानती हों तो फिर आप को तो अपने ही समाज के किसी व्यक्ति से पूछने पर पता चल जायगा।' हँस इस बात को यहीं खतम कर बोली—'आप अपने पति को हमारे यहाँ ही क्यों नहीं ले चलतीं। उतनी दूर जाने से क्या फायदा? नहीं, नहीं। वहाँ तो मेरे···ठेकेदारी का कारोबार है। इसी से मुझे भी कभी-कभी जाना पड़ता है। मेरा घर तो डेहरी में है, वहाँ ही चलकर रहने को कह रही थी। सोन नदी के तट पर ही छोटा-सा मकान

है। थोड़े दिन वहाँ रहने से आपके पति स्वस्थ हो जायँगे। क्यों, आयेंगी न वहाँ।' कहते-कहते उसने स्नेह से अचला के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और उत्तर की प्रतीक्षा में उसके मुँह की तरफ देखने लगी।

उसके कहने में स्नेह-पूरित आग्रह था, जिसे देख अचला का हृदय भी प्रेम-विह्वल हुए बिना न रहा, बोली—'पर आपके पति की बिना राय के वहाँ कैसे जाना हो सकता है? उनसे पूछना जरूरी है।'

स्त्री ने अजीब ढङ्ग से सिर हिलाया, जिसमें निश्चय ही स्वाभिमान की मात्रा थी, बोली—'हमें आप पति की आज्ञा बजा लाने वाली नौकरानी ही न समझिए। हमारी भी चलती है। हाँ, जहाँ आप जा रही हैं वहाँ जगह पसन्द न आये या सुभीता न हो तो आप निःसङ्कोच सीधी हमारे यहाँ आ जाइएगा। आज्ञा-वाज्ञा लेने की आपको चिन्ता करने की जरूरत नहीं, सो मैं ही ठीक कर लूँगी। पति के प्रति प्रेम और विश्वास की कितनी प्रबल धारा बह रही है इस युवती के दिल में, इसे सोच अचला आत्मा विमुग्ध हो गई।

गाड़ी की रफ्तार धीमी पड़ गई। आरा स्टेशन पास आता जा रहा था। एक बार फिर स्नेहावेश से उस स्त्री ने अचला के हाथों को अपनी तरफ खींचते हुए कहा—'आपके पति शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे, व्यर्थ में चिन्तित न हों! आपको यह तो वायदा करना ही होगा कि लौटते समय जरूर हमारे यहाँ आयेंगी।'

अचला की आँखें डबडबा आईं। किसी प्रकार उन्हें संयत कर बोली—'यदि वह दिन नसीब में देखने को लिखा है तो अवश्य ही तुमसे मिलकर जाऊँगी।'

स्त्री—'वाह यह भी कोई बात है! नसीब में न होने की कौन-सी बात है। आपके हृदय में उनके प्रति जो अगाध प्रेम है तो क्या परमात्मा भी साहस कर सकते हैं उसकी उपेक्षा करने का। नहीं, वे अवश्य स्वस्थ होंगे।'

अचला का गला भर आया था, आँखें छलछला रही थीं। उत्तर न देते बना। निकलती लम्बी साँस को उसने दूसरी तरफ को मुँह कर दबा दिया।

जब गाड़ी स्टेशन पर रुकी तब भी पानी बरस रहा था। स्त्री का छोटा देवर गाड़ी रुकते ही आ गया। वह दूसरे डिब्बे में बैठा था। जब वह उतरने को हुई तो अचला ने जाकर उसके कान में कहा—'आप अपना नाम तो बताती जाइए। पति का नाम तो बतायेंगी नहीं, सो मैं जानती हूँ। अगर लौटकर एक बार आ सकी तो फिर पूछूँगी किस नाम से?'

युवती के ओठों पर मुस्कराहट खिल गई, बोली—'मुझे राक्षसी कहते हैं। डेहरी में किसी भी बङ्गाली लड़की से पूछने पर मेरा घर मालूम हो जायगा। आना जरूर एक बार दोनों जने, तुम्हें कसम है मेरे सिर की। सोन नदी के बिलकुल किनारे पर ही मेरा घर है, मैं राह जोहती रहूँगी।' वह नमस्कार कर पानी बरसते में ही भीगती हुई उतर कर चली गई।

गाड़ी फिर चल दी। वैसे तो अभी शाम ही थी, पर बादल और पानी ने चारों ओर अँधेरा घुप कर दिया था। मालूम होता था मानो न जाने कितनी रात है। बड़ी भयानक रात हो रही थी। खिड़की बन्द थी, काँच वाली, उससे बाहर देखकर वह दुखी हो उठी। इस अन्धकार में उसका सारा जीवन खोया-सा जान पड़ा दुख-ही-दुख उसे दिखाई पड़ने लगा। आनन्द-सुख जीवन से तिरोहित होता जान पड़ा। डिब्बा सूना था। वह चुपचाप सीट पर एक कोने में चादर से मुँह ढँक सो रही थी, आँखों से पानी लगातार बह रहा था। दुख सही-सही क्या है वह न समझ सकी और न आँसू ही रुक सके। निरन्तर व्यथा घनीभूत होती जा रही थी। रह-रहकर दुर्दिन की आशङ्का गहरी होकर उसके सारे अन्तर को मसोस कर रख देती। बचपन की सखी सहेलियों से लेकर पिता, मृणाल, बुआ जी और अभी थोड़ी देर की ही परिचिता राक्षसी नाम की स्त्री यहाँ तक कि घर के नौकर यदु को याद भी उसके दिल में

कसक पैदा कर और अधिक बार-बार रोने पर विवश कर रही थी मानो अब वह जिन्दगी भर किसी से न मिल सकेगी, एक से हमेशा के लिए दूर हो रही है।

अपने में ही रोते उसके आँसू सूख चले थे और अँसुअन जल सींच उसके हृदय की व्यथा भी कुछ हलकी पड़ चली थी। जब अगला स्टेशन आया, वह उठ कर बैठ गई, इस व्याकुल आशा में शायद कोई स्त्री उसके डिब्बे में भी आ जाय। पर कोई न आई, पानी अब भी बरस रहा था। अन्य डिब्बों से यात्री पानी में भीगते ही उतरे भी और डिब्बों में चढ़े भी और गाड़ी चल दी।

वह वेदना-भरी गहरी साँस लेकर फिर अपनी सीट पर आकर अकेली ही चादर ओढ़ कर पड़ी। न जाने किस सुख-कल्पना में अब की उसका मन आनन्दित हो हलका हो गया। इसके पहले भी जब जलवायु-परिवर्तन के लिए जाने की बात चली थी तब भी उसको ऐसा ही भाव उदय हुआ था, तब भी उसे ऐसा आनन्दातिरेक का अनुभव हुआ था, और आज भी महिम के स्वस्थ होने की कामना का नया सुखमय जीवन आरम्भ करने की कल्पना से अभिभूत हो गई और अपने नये आनन्दित जीवन का खाका सोचने में लीन हो गई, और उसी में लीन हो सो गई, कब तक सोती रही, कुछ भी न जान सकी।

अपना नाम लेकर किसी को बुलाते सुन सहसा अचकचा कर उठ बैठी। सुरेश दरवाजा खोलकर बाहर खड़ा था और जोर की हवा और बौछार से डिब्बा भीगता जा रहा था।

सुरेश—'अचला! गाड़ी स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़ी है, जल्दी उतरो। बक्स कहाँ है तुम्हारा?'

अचला की आँखों में अब भी नींद की खुमारी भरी थी। उसे पहले ही से मालूम था कि जबलपुर के लिए इलाहाबाद में गाड़ी बदलनी होगी। बक्स की तरफ संकेत कर उसने उतर कर पूछा—'पर इस बला के पानी में इन्हें कैसे उतारोगे? इस मौसम में उतारने से कहीं तबीअत

और न खराब हो जाय उनकी।'

सुरेश ने कुछ जवाब दिया, पर ज़ोर की हवा उसे अपने साथ ही साथ ले गई, अचला के कानों तक न पहुँच सका। सुरेश ने एक हाथ से अचला का हाथ मज़बूती से पकड़ लिया और दूसरे में बक्स ले लिया और दूसरे प्लेटफार्म की ओर चल दिया। वहाँ एक दूसरी गाड़ी तैयार खड़ी थी छूटने को। उसने अचला को एक खाली फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बिठा दिया और कहा—'तुम यहीं बैठो, मैं महिम को उतार कर अभी आया।'

अचला—'तो यह मेरा भी शाल लेते जाओ। खूब अच्छी तरह से उठा कर उतारना। और उसने अपना शाल भी सुरेश के कन्धे पर डाल दिया। सुरेश जल्दी से चला गया।

प्लेटफार्म पर बत्तियाँ जल रही थीं ज़रूर, आँधी-पानी में उनका मन्द प्रकाश अपर्याप्त था। अँधेरा हो रहा था, जिसमें कुछ भी दिखाई देना मुश्किल पड़ रहा था। फिर भी जहाँ तक वह देख रही थी, सुरेश को देखती रही। पानी में ही यात्री इधर-उधर आ-जा रहे थे, कुली सामान लिये फिर रहे थे, और रेलवे के काम करने वाले भी अपने काम में लगे। सब कुछ बिलकुल अस्पष्ट दिखाई दे रहा था। सहसा स्टेशन की घण्टी बजी और जिस गाड़ी से अचला अभी उतरकर आई थी प्लेटफार्म छोड़ कर अपनी अभ्यस्त गति से गर्जती हुई चल दी और अचला के सामने अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त हो गया।

अब इस गाड़ी के लिए सिगनल हुआ। उसे अब तक भी न मालूम हुआ था कि महिम उतर सके या नहीं? सामान रखा गया या नहीं? उसे चिन्ता होने लगी। तभी उधर से एक रेलवे कर्मचारी हाथ में हरी लालटेन लिये कम्बल ओढ़े निकला। सामने आते ही अचला ने उससे पूछा—'क्या सब सवारियाँ चढ़ गईं?'

रेलवे कर्मचारी ने देखा कि फर्स्ट क्लास का डिब्बा है, अतः उसने रुककर कहा—'जी, मेम साहब!'

अचला—'इस समय क्या बजा होगा ?'

रेलवे कर्मचारी—'अभी तो यही नौ बज के···।'

'नौ बज के !'—अचला दङ्ग रह गई।

पानी में भीगता रेलवे कर्मचारी वहाँ अधिक देर तक न रुका। हाथ की बत्ती हिलाता—'मुगलसराय, मुगलसराय' चिल्लाता आगे बढ़ गया।

इञ्जन ने सीटी दी और झकझक कर आगे बढ़ गया। तभी सुरेश भागता हुआ चिल्लाकर कहता हुआ—'मैं अगले डिब्बे में ही हूँ, घबराने की बात नहीं है।' कहकर आगे बढ़ गया।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

अचला खुली खिड़की में से पानी बरसते में ही अन्धकार को चीर कर अपने मन में सोचकर-जानने की कोशिश कर रही थी कि सुरेश तो अगले डिब्बे में चढ़ गया, पर वे कहाँ हैं। अब तक तो वह लगातार प्लेटफार्म के अन्धकार में आँखें गड़ा-गड़ा कर उन्हें देखने का प्रयास करती रही है। अगले डिब्बे में चढ़ते तो क्या पता ही न चलता। उसके सारे कपड़े खुली खिड़की से अन्दर आती बौछार से भीग गये थे, पर वह उसी अवस्था में ही रह सोचे जा रही थी। इलाहाबाद में गाड़ी बदलने को थी यहाँ बदल गई ? आखिर यह सब क्या है, क्यों है ?—पर उसका मन यह मानने को तैयार न हुआ कि सुरेश उसे चकमा देकर किसी निरुद्देश जीवन के अन्धकारमय पथ में लिये जा रहा है और महिम इस गाड़ी में नहीं है। उसने कभी स्वप्न में सोचने का साहस न किया कि सुरेश इतना नीचे गिर सकता है कि वह युवती को इस तरह चकमा देकर उसके अपने नारी धर्म, समाज, कर्तव्य से नीचे ढकेलकर मौत की तरफ घसीट कर ले जायगा। निश्चय ही महिम कहीं इसी गाड़ी में होगा। सुरेश अगर यह सोचता ही कि वह इस तरह मुझे ले जाकर मेरे शरीर से अपनी वासना तृप्त कर मुझे एक नारी-धर्म छोड़ वेश्या की तरह नीचे गिराना चाहेगा।

तो जब तक वह यह करे उसका शरीर पतित होने के लिए जिन्दा ही न रहेगा। अगर वह उसके चरित्र को इतना भी न समझा तो फिर प्रेम करने की बात कैसे कही उसने। मैं किसी की वासना-तृप्ति के लिए अपना शरीर दे सकती हूँ इतना पतित ही यदि मुझे समझा होता तो मुझे कभी इतना प्रेम न किया होता उसने। नहीं नहीं, यह कभी सम्भव ही नहीं हो सकता। कहीं जरूर आगे की तरफ वे जल्दी में बढ़ गये होंगे। वहां न देख सकी होगी।

एकाएक जोर के पानी की बौछार से वह सिहर कर पीछे हट गई, तब उसने देखा कि उसके बदन पर एक सूखा कपड़ा नहीं रह गया है! इस जाड़े की रात में अनजाने में ही वह इतनी भीग गई, यह सोच वह और उसी अवस्था में रहने का साहस न कर सकी और कपड़े बदलने के विचार में उसने अपना बक्स खोला ही था कि गाड़ी स्टेशन आ जाने के कारण रुक गई। पानी उस समय भी बरस रहा था, चारों ओर अन्धकार व्याप्त था। यह पता लगाना उस समय कठिन ही नहीं, असम्भव था कि यह कौन-सा स्टेशन है। वह डिब्बे से उतरकर जल्दी में भीगती हुई अन्दाज से ही सुरेश के संकेत से बताये डिब्बे की तरफ बढ़ी और उसके डिब्बे के सामने आ खड़ी हो उसने पुकारा—'सुरेश बाबू!'

उसी डिब्बे में सुरेश एक कोने में सिकुड़कर आँखें मींच सीट का सहारा ले बैठा था। उसके अलावा इस डिब्बे में एक अङ्गरेज और दो हिन्दुस्तानी सज्जन और थे। अचला का सन्देह था कि वह सहज में उत्तर न देगा तभी उसने जरा कण्ठस्वर तीव्र कर अवाज दी जो स्वाभाविक न होकर चीत्कार सी थी जिससे सुरेश ही नहीं, अन्य बैठे सज्जन भी एक बारगी चौंक गये। सुरेश ने आँखें खोलीं तो देखा दरवाजे पर अचला खड़ी है। अचला के चेहरे पर पानी की बूँदें बिजली के प्रकाश में सफेद मोतियों की-सी चमककर उसके चेहरे पर एक अजीब मासूमियत लाकर उसे और सम्मोहक सुन्दर बना रही थी जिसने डिब्बे के सभी यात्रियों पर अपना प्रभाव डाला, सुरेश के पास आते ही अचला ने पूछा—'वे

नहीं दिखाई पड़ रहे ? कहाँ किस डिब्बे में हैं, बोलो ?'

'यहाँ से चलो बताता हूँ ।' यह कह वह भी उतर पड़ा और जोर से अचला का हाथ पकड़कर उसे डिब्बे की तरफ खींच लाया ।

डिब्बे में दोनों हिन्दुस्तानी एक दूसरे की तरफ अर्थ-भरी दृष्टि से देख हँस दिये । अङ्गरेज कुछ समझ न सका, परन्तु अचला के कण्ठ-स्वर की विकलता ने उसे भी चौंका दिया था । सुरेश अचला को उसके डिब्बे तक खींच लाया । पर दरवाजे पर से ही बक्स खुला देखकर सहमकर खड़ा हो गया, पूछा—'तुम्हारा बक्स कैसे खुला पड़ा है ?' उत्तर की बिना प्रतीक्षा ही अचला को जबरन अन्दर डिब्बे में खींचकर चढ़ा ले गया और अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया ।

फिर बक्स की तरफ संकेत कर पूछा—'इसे किसने खोला ?'

अचला—'मैंने खोला । पर अब तो यह रहने दो, पहले मुझे चल कर दिखा दो कहाँ बैठे हैं ।' कह दरवाजे की तरफ बढ़ी, तभी सुरेश ने हाथ पकड़कर कहा—'गाड़ी चल दी है । करती क्या हो ! दिखा दूँगा । जल्दी क्या है ।' अचला ने देखा सचमुच गाड़ी चल दी है ।

उसे चारों ओर निराशा साकार हो दिखाई देने लगी । उसने मुड़कर सुरेश पर एक दृष्टि डाली । सुरेश का सारा चेहरा श्रीहीन पीला पड़ गया था, दूसरे ही क्षण वह धड़ाम से सुरेश के पैरों पर गिर गई और बिलख-बिलख कर कहने लगी—'बताओ कहाँ हैं वे ? क्या तुम उन्हें सोती हालत में गाड़ी से नीचे ढकेल आये हो ? बीमार की हत्या कर तुम मुझे···!'

यह अत्यन्त भयङ्कर दोषारोपण था, पूरा न कह सकी । सुरेश का हृदय एकदम पत्थर हो गया था, उसकी कोमलता न जाने कहाँ चली गई थी । उसका दहाड़ मार-मारकर रोना भी उस पर कुछ असर न कर सका, स्तब्ध खड़ा रहा बिना ध्यान दिये ही कि अचला उसके पैरों पर पड़ी बिलख रही है, वह चुपचाप चट्टान बना सीट पर बैठा रहा । काफी देर बीते उसने अपने पैर हटाकर काँपती आवाज में कहा—'क्या तुम्हें

विश्वास होता है कि मैं ऐसा कर सकता हूँ ?'

अचला रो रही थी। रोते हुए ही बोली—'हाँ, हाँ! क्या नहीं कर सकते? पहले तुमने घर में आग लगाई उनको जलाकर मारने के लिए तुमने सब कुछ तो किया है। पैरों पड़ती हूँ तुम्हारे, बताओ कहाँ हैं वे?' कह फिर उसने सुरेश के पैर जोरों से पकड़ उन पर सिर पटकना शुरू कर दिया। सुरेश चट्टान की तरह अचल बैठा रहा। किसी बात का उस पर कुछ असर न हुआ।

डिब्बे के बाहर आँधी, तूफान, पानी, बिजली में गरजन की होड़ लगी थी। पर अन्दर बैठे अचला और सुरेश के हृदय में जो आन्दोलन मचा हुआ था, उसके सामने उनकी गर्जन-तरजन कुछ भी न थी।

एकाएक बिजली की-सी तेजी से अचला उठकर खड़ी हो गई। सुरेश भी चौंककर चौकन्ना हो गया कि वह क्यों इस तरह उठकर खड़ी हो गई है। अगला स्टेशन पास आ रहा था और गाड़ी रुकने के लिए धीमी हो गई थी। सुरेश के मुँह से बड़ी कठिनाई के बाद काँपते स्वर से निकला—'महिम इस गाड़ी में नहीं है।'

'नहीं हैं इस गाड़ी में! कहाँ हैं फिर?' यह कहकर संज्ञाहीन-सी सामने की सीट पर निर्जीव-सी गिर पड़ी।

अचला को काटो तो खून नहीं। चेहरे का रङ्ग सफेद पड़ गया। सुरेश ने उसके चेहरे की तरफ देखा। जब तक अचला को नहीं मालूम हुआ था कि महिम इस गाड़ी में नहीं है, तब तक रोते-बिलखते भी एक आशा-किरण शेष थी। वह समझती थी कि इस दुःख-स्वप्न के बाद सम्भवतः आशा-किरण से सारा अन्तर प्रकाशमान हो उठेगा। पर जैसे ही उसने सुना, महिम इस गाड़ी में नहीं है, वह जिन्दा ही मुर्दा बन गई। अभी कुछ स्टेशनों पहले उसने सुखी जीवन में सुनहले स्वप्न देखे थे, सारे के सारे बालू की दीवार की तरह पलक मारते ही ढह गये। उसका सारा जीवन भविष्य, एकदम अन्धकारमय, निराशामय हो उसके दुर्भाग्य तथा दुर्दिन की साकार मूर्ति में उसके सामने अट्टहास कर उठा।

दोनों के दोनों बुत बने बैठे रहे। गाड़ी स्टेशन पर रुकी और चल दी।

सुरेश की ज़ुबान कुछ कहते-कहते ही अकड़ गई। थोड़ी देर बाद उठ कर खड़ा हो गया। खिड़की बन्द कर टहलता रहा। सहसा अचला के सामने रुक गया, बोला—'महिम अब तक कुशलपूर्वक इलाहाबाद पहुँच गया होगा।' ठहर गया, फिर बोला—'वहाँ से जी चाहे तो जबलपुर जा सकता है और चाहे तो लौटकर कलकत्ते भी जा सकता है।'

अचला ने धीरे से मुँह उठाया, पूछा—'और हम लोग किधर जा रहे हैं?' उसका चेहरा आँसुओं से तर था और उस पर निराशा की गहरी रेखाएँ पड़ी थीं। सुरेश ने एक बार फिर उस पर नजर डाली। उसकी समझ में आया कि कितना बड़ा अपराध कर बैठा है वह, जिसके प्रायश्चित्त के लिए उसके लिए मर जाना भी अच्छा है, सोचा। पर अचला का उसके प्रति मूक प्रेम प्रदर्शन का जो अब तक का व्यवहार रहा, जिसके सहारे उसे इतने नीचे गिरने की हिम्मत हुई, उसके प्रति भी और सीधे अचला के प्रति जो उसकी आँखों में माया की छलिया सी जान पड़ी उसका सारा अन्तर क्रोध से अभिभूत हो उठा। इसी कारण तीखे स्वर में उसने अचला के प्रश्न का उत्तर दिया—'सम्भवतः हम लोग अब सीधे घोरतम पतन के गर्भ में ही जा रहे हैं, बीच में रुकने का कहीं ठिकाना भी नहीं है। जिस पतन के रास्ते पर अपने व्यवहार से तुमने मुझे घसीटा है अब तो उसके अन्तिम परिणाम को भोगना ही पड़ेगा।'

अचला सिहर उठी। उसका सारा मस्तिष्क, अन्तर, शरीर कम्पायमान हो उठा! जो पापी मनुष्य अपने मित्र की स्त्री को इस प्रकार का चकमा देकर छल से भगा सकता है और फिर इस तरह की बात कर अपने दोष को उसी के मत्थे मढ़ने की निर्लज्जता कर सकता है, उससे कुछ भी कहने का मन न चाहा। अचला कहती भी क्या। निरुत्तर बनी रही।

सुरेश ने फिर टहलना शुरू कर दिया। फिर साहस बटोर कर अपनी समस्त बेहयाई की शक्ति बटोर कर बोला—'तुम समझती हो कि तुम्हारे अकेले का ही जीवन नष्ट हुआ है। पर मेरे लिए जीवन कितना सर्वनाश

के दरवाजे पर पहुँच चुका है, सम्भवतः तुम नहीं जानतीं। मेरी तुम लोगों की तरह वहम में आस्था नहीं है। मैं तो परमेश्वर में भी विश्वास नहीं करता; पाप, पुण्य, धर्म की भी दुहाई नहीं देता। मेरे सामने सचमुच ही जीवन के सर्वनाश का प्रश्न है। तुम सुन्दर हो और रोना भी खूब जानती हो, दोनों के बल पर अपना भविष्य बना सकती हो। पर मैं पुरुष हूँ, अपना रास्ता इस तरह बनाने का मेरे पास कोई साधन नहीं है। मुझे तो जेलखाने की लज्जा से बचने के लिए अपने ही हाथों अपने जीवन का अन्त करना पड़ेगा।'

अचला की आँखों से घृणा की चिनगारी फूट रही थी। उसने कुछ कहने के लिए मुँह उठाया भी, पर घोर घृणा के कुछ भी उसके मुँह से न निकल सका। सुरेश ने भी उसकी इस भावना को ताड़ लिया और मारे क्रोध के अभिभूत हो बोला—'कभी भी कौआ मोर-पङ्ख लगाकर मोर की सुन्दरता को नहीं प्राप्त कर सकता। इस दृष्टि से भली प्रकार परिचित हूँ। तुम्हें तो यह हरगिज भी शोभा नहीं देती। जिसे शोभा देती है, वह है मृणाल। निश्चय ही तुम सती सावित्री नहीं हो, और न तुम्हारा कुछ बिगड़ा ही है। तुम्हारा जहाँ जी चाहे उतर कर जा सकती हो। मैं महिम के नाम पत्र लिख दूँगा, वह तुम्हें क्षमा कर अपना लेगा रुपये दे दूँगा, केदार बाबू का भी उनसे मुँह बन्द हो जायगा। जाकर दे देना उन्हें। तुम्हें तो चिन्ता नहीं होनी चाहिए। दोष ही तुमने कौन-सा किया है!'

उसने अपने वाक् तरकश से छाँट-छाँटकर अग्नि-बाण निकाले थे उन्हें छोड़ फिर अनवरत गति से टहलने लगा, बिना यह जाने ही कि उसके बाणों ने कहाँ क्या चोट की है। चारे की लालच में जिस तरह पक्षी जाल में फँस जाता है और फिर चारो तरफ नोच-खसोट करता है, ठीक उसी तरह सुरेश ने भी अचला के माया-जाल में फँसकर हर तरह से उसे चीर-फाड़ डालना चाहा, बोला—'यह उससे भी बड़ा अपराध है जब तुमने महिम के घर में ही खड़े होकर उसी के मुँह पर कहा था कि तुम

उसे नहीं किसी और को प्यार करती हो। जैसा तुम स्वयं भी कहती हो कि मैंने तुम्हारे घर में आग लगाकर तुम्हारे पति को मार डालना चाहा, पर मेरे ही साथ तुम वहाँ से चली आईं मेरे ही घर में रहकर मेरे लिए छिप-छिपकर रोती रहीं। मुझे साथ ले चलने का अनुरोध किया। क्या यह सब याद नहीं रहा तुमको, और भी न जाने क्या-क्या बातें हैं। तुम्हारे इन्हीं व्यवहारों के जापे में चिपककर मेरा इतना साहस बढ़ा। वास्तव में तुम वेश्या हो तभी तुम्हें चकमा देकर ले आ सका। सोचा पहले थोड़ा चौंकोगी जरूर, पर थोड़ी देर में हमेशा की तरह ही ठीक हो जाओगी। तुम सती हरगिज नहीं हो और न सती जैसा गर्व और गुस्सा ही तुम्हें शोभा देता है।'

सुरेश हाँफने लगा और चुप हो गया। अचला ने काँपते स्वर में कहा—'कहिए, और कहिए, जितने भी कुत्सित आरोप आप लगा सकते हैं, लगाइए, जितने भी व्यङ्ग-बाण चुभो सकते हैं, चुभो कर हृदय को छलनी कर दीजिए। कह डालिए सब अपने मन की। मैं सुनना चाहती हूँ, इसी के योग्य हूँ भी। और यही मेरा संसार में आपसे और सबसे सम्बन्ध है।'

सुरेश डिब्बे के एक ओर मूर्तिवत् खड़ा था। अचला बाल बिखरे जमीन पर लोटकर विलाप कर रही थी। उसके कपड़ों में मिट्टी लग गई थी। सुरेश का दिल उस समय पत्थर का हो गया और उसने अचला से एक शब्द न कहा और न उसे उठाया ही। जैसे किसी नये शिकारी ने अपना पहला शिकार मारा हो और एकटक देख रहा हो उसके तड़प-तड़पकर प्राण त्याग को, उसी तरह सुरेश पाषाण-मूर्ति-सा अचला के बिलखने को एकटक घूर रहा था।

अगला कोई स्टेशन फिर पास आया। गाड़ी की चाल धीमी पड़ी और रुक गई, तब सुरेश ने कहा—'तुम्हें इस हालत में देख लोग-बाग अजीब-अजीब खयाल लगायेंगे। मैं अपने डिब्बे में जाता हूँ, तुम उठकर बैठ जाओ। जब सबेरा हो जायगा, तो जहाँ जाना चाहोगी, मैं भेज दूँगा। इस बीच में कुछ कर बैठने की हिमाकत न करना, कोई लाभ

न होगा उससे।' वह दरवाजा खोल उतर गया और दरवाजा बन्द कर जाते-जाते खिड़की के पास रुक कर बोला—'हालाँ कि मैं जो कुछ भी कहूँगा वह सब तुम समझने की कोशिश न करोगी, फिर भी इतना कहे जाता हूँ कि अब किसी प्रकार की मुसीबत तुम्हारे ऊपर न आयेगी और जो पेंच पड़ गया है, जिन्दगी का, उसको सुलझाने का भी मेरा ही जिम्मा रहा।' वह धीरे-धीरे अपने डिब्बे में चला गया।

जब-जब स्टेशन पर गाड़ी रुकती, सुरेश की झपकी टूट जाती, पर अब उसमें इतनी शक्ति शेष न रही थी कि आँख खोल कुछ भी देख सके। उसके सारे कपड़े भीग चुके थे जिनमें जाड़ा लग रहा था और यह जानता था कि बीमार भी पड़ सकता है और ऐसी दशा में उसका बीमार पड़ना ठीक नहीं, परन्तु कपड़े बदलने की भी शक्ति उसमें न थी। तभी एक परिचित आवाज बाहर प्लेटफार्म पर सुनाई पड़ी। अब पानी थम चुका था, बादल का घिराव भी कम हो गया था और आसमान साफ होने लगा। यात्री उतरने-चढ़ने में व्यस्त थे। उन्हीं के बीच में शोक-सन्तप्त अचला एक कुली के सर पर अपना चमड़े का बक्स लदवा फाटक की तरफ जा रही है।

सुरेश डिब्बे में बैठा निर्जीव, शक्तिहीन यह देख रहा था। तभी गाड़ी छूटने के सिगनल बेल से वह चौंक पड़ा और पलक मारते ही अपना बक्स भी उतार डिब्बे के नीचे उतर पड़ा।

अचला जब फाटक पर पहुँची तब टिकट बाबू को देख ठिठक कर खड़ी हो गई। टिकट उसके पास नहीं था। तभी सुरेश ने पीछे से कहा—'आगे बढ़ो, टिकट मेरे पास है, मैं दे देता हूँ।'

अचला सुरेश के आने से भय और सङ्कोच से काँप उठी, पर इसके पहले कि उस पर किसी की नजर पड़े, वह आगे बढ़ गई।

फाटक के बाहर पहुँच सुरेश ने कहा—'यहाँ डेहरी में तुम्हारा कोई परिचित है क्या, जो यहाँ उतर गईं? मैं तो समझता था कि तुम कलकत्ते ही लौट कर जाना चाहोगी।'

अचला की आँखें दूसरी तरफ थीं, उसी तरफ देखते हुए बोली—

'कलकत्ते में कौन है जिसके पास जाती !'

सुरेश—'और यहाँ ?'

अचला ने उत्तर न दिया। सुरेश ने थोड़ी देर तक कोई बात न की। बाद में बोला—'सम्भवतः मेरी किसी बात पर भी तुम्हें विश्वास न हो सकेगा और मुझे उसके लिए तुमसे किसी तरह की शिकायत नहीं। मैं तो सिर्फ आखरी बार कुछ भिक्षा के रूप मे चाहता हूँ।'

अचला ने किसी प्रकार का उत्तर न दिया।

सुरेश—'मैं नहीं चाहता कि मैं अपना सफाई देकर अपनी बात किसी को समझाऊँ और चाहता हूँ कि तुम्हें भी ऐसा करने की जरूरत नहीं है। मैं तो अब उस राह का राही बनने जा रहा हूँ जहाँ ये तमाम बातें व्यथित करने को शेष न होंगी। चलते समय तुमसे मेरा हाथ जोड़ कर अनुरोध है कि मेरी अन्तिम पूँजी मुझे दे दो। मेर ऊपर अन्तिम बार विश्वास कर लो।'

अचला अब भी निरुत्तर रही।

सुरेश—'अचला, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है, अनेक कटु बातें कह डाली हैं। पर मरने पर भी मुझे यह सह्य न होगा कि अन्य कोई अपने को सदाचारी होने का दम भरकर तुम्हें किसी प्रकार से कलङ्कित कर सके। मैं चाहता हूँ कि तुम अन्त समय केवल इतनी-सी भीख दे जाओ कि मैं अपना यह कर्तव्य पूरा कर सकूँ।'

इस कहने से सुरेश का असली मकसद क्या था सो तो वही जाने, पर अचला रो दी। रोते हुए गले को किसी प्रकार संयत कर बोली—'तो मुझे क्या करने को कहते हैं ?'

सुरेश ने जेब से रेलवे टाइम-टेबिल निकाला और देख कर कहा—'मैं सिर्फ इतना चाहता हूँ कि जब तक कहीं की गाड़ी नहीं मिलती तब तक मेरे साथ मेरे ऊपर विश्वास करके रहो। गाड़ी अब शाम से पहले किसी तरफ भी नहीं जाती। मैं तुम्हारे सिर की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझसे तुम्हें अब किसी प्रकार का खतरा न रहेगा।'

अचला निरुत्तर रही, पर उसकी चुप्पी सुरेश के प्रस्ताव का अनुमोदन थी, न अचला ने ही और न सुरेश ने ही चाहा कि ख्वामख्वाह में उस स्टेशन के छोटे से वेटिङ्ग रूम में बैठकर लोगों की कौतूहलपूर्ण दृष्टि का शिकार बनें। पता लगा कि बड़ी सड़क के किनारे शेरशाह के नाम की एक यादगार एक सराय अब भी खड़ी है। उसी में ठहरने के लिए दोनों बैलगाड़ी में बैठ चल दिये।

रास्ते भर दोनों में से किसी ने किसी से बात न की और न एक दूसरे की तरफ़ ताका ही। सराय के हाते में जब बैलगाड़ी आकर रुका तब उतरते समय अचला की सुरेश के पीले जर्द पड़े चेहरे पर नजर अनायास ही पड़ गई। उसकी आँखें एकदम लाल हो गई थीं, सूखी-सूखी। चेहरा विकृत हो गया था। अचला ने कभी भी सुरेश का चेहर इतना विकृत न देखा था।

गाड़ीवान का किराया दे विदा करने के बाद सुरेश ने अपना मनीबेग अचला के पास रख कहा—'अभी तो इसे रखो और जरूरत हो तो निःसङ्कोच बिना शर्माये कहना।'

अचला ने चाहा कि पूछे कि इस मनीबेग के देने का मतलब! पर उसके मुँह से कुछ भी शब्द न निकल सके।

सुरेश—'इस सामने की कोठरी में जाकर आराम करो, यह कुछ साफ़ सी मालूम होती है। मैं बगल की कोठरी में जाकर कपड़े बदलता हूँ।' कह बिना अचला का बक्स अन्दर कराये चला गया। उसके जाने के बाद अचला को जब सड़क के किनारे न खड़ा रहा गया तो बड़ी मुश्किल से खुद ही भारी बक्स घसीट कर सामने की कोठरी में ले गई और उसी पर बैठकर हतबुद्धि सी राह के आने-जाने वालों को देखती रही।

उनतीसवाँ परिच्छेद

उसी तरह बैठे-बैठे अचला विचार-सागर में डूबती उतराती बैठी रही। अब सूरज निकल आया था। कल के पानी से धुल-धुलकर पेड़-

पौदे सूरज की किरणों से झिलमिला रहे थे। सड़क पर राहगीरों का आना-जाना शुरू हो गया था। दो-चार इक्के भी घोड़े के गले की घण्टी टुनटुनाते आ-जा रहे थे। ग्वाले गाय भैंसों से अपना अजीब नाजायज रिश्ता कायम करते उनके झुण्ड से झुण्ड को खेतों की तरफ ले जा रहे थे। पास ही किसी के झोपड़े से चक्की से घर-घर की ध्वनि हो रही थी। साथ ही घर की मालकिन की सङ्गीत-लहरी वातावरण को रागमय कर रही थी। अचला प्रकृति के इस अनवरत नित्य के क्रम में अपने को बिसार न जाने क्या बैठी सोचती रही सो वह भी न जान सकी। सहसा उसने हाते में एक ओर दो बालकों की उत्सुक कौतूहल पूर्ण दृष्टि को अपनी ओर घूरते देखा। लड़के बेचारे नहीं जानते थे कि यह सराय हिन्दुस्तान के एक जबर्दस्त बादशाह की यादगार शेष है। जब उन्होंने होश सँभाला था, उन्होंने ऐसे सम्भ्रान्त साफ-सुथरे मुसाफिर इस सराय में ठहरने को आते न देखे थे। वे तो रोज के नियम के अनुसार सवेरा होते ही खेलने निकले थे कि इन अजीब मुसाफिरों को देखकर आश्चर्य से ठिठक कर उन्हें देखने में लग गये।

अचला सम्भवतः उनसे कुछ पूछने के लिए खड़ी हुई। पर वे दोनों तो उसके उठने के साथ नौ दो ग्यारह हो गये। तभी उसे याद आई सुरेश की कि वह कपड़े बदलने गया है सो अभी तक नहीं लौटा। उत्सुक हृदय से यह जानने के लिए कि वहाँ पर क्या कर रहा है, उसकी कोठरी की तरफ बढ़ी। दरवाजा भिड़ा था, अन्दर से किसी प्रकार की आहट न थी; वह वहीं ठिठक गई। फिर दरवाजा खोल उसने भीतर देखा तो उसका सारा शरीर सिहर कर काठ हो गया। कोठरी में अँधेरा था, केवल एक टूटी सी खिड़की थी उसी में से चीण प्रकाश आ रहा था। जमीन पर धूल में सुरेश चित्त पड़ा सो रहा था। उसने कपड़े भी न बदले थे। बक्स खुला हुआ था और कुछ चीजें इधर उधर तितर-बितर पड़ी थीं।

अचला के दिमाग में उसके अन्तिम शब्द चक्कर काटने लगे। डाक्टर से दूसरों की जान बचाना ही उसने सिर्फ न सीखा होगा, कैसे प्राण निकाले जाते हैं, यह भी सीखा होगा उसने। अपनी भयङ्कर गलती के लिए उसका बार-बार पछताना स्वयं की ग्लानि में ही मरने की इच्छा करना था। अन्तिम भीख, आश्वासन, बस उसके दिमाक में पलक मारते ही चक्कर लगा गये। और उन सब का परिणाम सत्य होकर उसके सामने प्रत्यक्ष जमीन पर पड़ा था। दरवाजे के सहारे निर्जीव हो बैठ गई। कोठरी के भीतर घुसने की भी उसे हिम्मत न हुई। वहीं बैठी-बैठी उसकी निर्जीव देह पर आंसू बहाती रही, वह इतनी कठोर हृदय न बन सकी कि जो मनुष्य उसी के पीछे पागल होकर संसार भर की बदनामी लेकर इस संसार से बिदा हो गया, उसके प्रति वह अब भी प्राण भाव रख उसे क्षमा न कर सके। उसे पहली बार अपना दोष दिखाई दिया कि इस परिणाम में उसका अपनी कमजोरियों में कितना बड़ा हाथ है। जब से सुरेश से उसका परिचय हुआ था तब से अब तक की सारी घटनायें वासनाग्रह प्रेम, मोह, आवेश, आग्रह सब एक-एक कर उसके सामने स्पष्ट होती गईं। उसी के साथ उसने अपने व्यवहार पर दृष्टि डाली, पिता के व्यवहार पर भी नजर गई, सारा शरीर उसको याद करते काँप उठा। आज सुरेश उसके ही नहीं, न जाने और कितनों के पापों का बोझ ले परमात्मा के दरबार में पहुँचा है। वहाँ सारे अपराध एक-एक कर दण्ड भोग स्वीकार कर लेगा अथवा क्षमा-याचना करेगा।

सुरेश के पास वह सब उपकरण अब भी मौजूद थे कि वह संसार का सब सुख भोग सके, पर वह उसके पीछे पागल हो सारे सुख-वैभव को त्याग, चला गया। अचला इस विचार की वेदना से अभीभूत हो उठी। आज वह उसे यह समझने को बाकी न रहा कि वह उससे कितना प्रेम करता था। आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी थी। पिछली रात ही रेल में दोनों के बीच काफी गरम बहस हो चुकी थी। पर उस समय उसे यह ज्ञान नहीं था कि प्रेम इस तरह अन्धा होता है जिसे धर्म, पाप

न्याय, अन्याय, समाज, कुटुम्ब किसी की परवाह नहीं रहती, यहाँ तक कि अपनी भी नहीं। यह बात अब उसकी समझ में आई।

अचला आँखें पोंछ रही थी कि सुरेश का निर्जीव शरीर हिलता जान पड़ा। उसका कलेजा धक्क से हो गया। दूसरे ही क्षण सुरेश ने करवट बदली। त्योंही अचला उसके पैरों पर गिरकर आर्तस्वर में चिल्ला उठी—'सुरेश बाबू!'

सुरेश ने आँखें खोलीं। उससे बोला न गया। आँखें उस समय भी लाल-लाल सूजी सी हो रही थीं।

अचला से फिर बोला न गया, सिर्फ आँसुओं की अविरल धारा झरती रही आँखों से। क्षण भर पहले आँसुओं के बहने के भाव में और अब के आँसुओं के भाव में जमीन-आसमान का अन्तर था।

उसे सबसे बड़ी चिन्ता जो अब तक कचोट रही थी वह थी कि इस बेगाने स्थान पर वह सुरेश के मृत शरीर का क्या करती, किसे सहायता को बुलाती। आस-पास के लोग न जाने क्या-क्या बेकार की कटु अफवाहें उड़ाते। पुलिस भी, हो सकता है आकर अनेक प्रकार से तङ्ग कर पता लगाती और फिर सारा किस्सा नग्न रूप से स्पष्ट हो जाता। इस विचार की लज्जा से वह पानी-पानी हो गई, पर सुरेश ने जीकर उसे इन सब विपत्तियों से बचा लिया। सचमुच ही उसका हृदय उसके प्रति इस कृतज्ञता के आभार से भर गया।

सुरेश कुछ देर तक देखता रहा, फिर बोला—'अचला, रो क्यों रही हो इस तरह?'

अचला ने रोते हुए ही कहा—'तुम क्यों पड़े हो इस तरह? कपड़े बदल कर क्यों नहीं आये? मुझे डरा क्यों दिया?'

अचला का स्वर एक बारगी मधुर करुण उत्साह में परिणत हो गया जिसकी मधुरता ने सुरेश के हृदय में भी स्नेह उमड़ा दिया। अचला फिर बोली—'तुम्हें यदि इतनी जोर की नींद ही लगी थी, मुझसे भी तो कह देना चाहिए था। उसी कोठरी को साफ कर ठीक से बिस्तर लगा

देती। आराम से सो जाते। अभी तो गाड़ी में भी बहुत देर है।'

सुरेश चुप रहा, सिर्फ स्नेहमयी दृष्टि से उसकी तरफ देख धीरे से उसका हाथ पकड़ अपने माथे पर रख दिया और एक लम्बी-सी आह छोड़ दी।

माथे पर हाथ रखते ही अचला चौंक गई। बोली—'तुम्हारा माथा तो गरम है, बुखार हो गया है क्या ?'

सुरेश—'हाँ! और ऐसा बुखार है जो ऐसे-वैसे उतरेगा भी नहीं जान पड़ता है।'

अचला ने आहिस्ते से हाथ उठा लिया और लम्बी-सी आह उसके मुँह से भी निकल गई और क्षण भर में उसका स्नेह-स्निग्ध हृदय जम गया। उसने अब तक धैर्य रखकर शाम की गाड़ी तक का इन्तजार करने की शक्ति किसी प्रकार संचित की थी पर अनायास ही वह विपत्ति की आशङ्का से काफूर हो गई। अब उसे मौत के सिवा कुछ भी दिखाई न दे रहा था।

उसकी हिम्मत ही न होती थी सुरेश को इस अवस्था में छोड़ कर जाने की, या बात सोचने की। दूसरे ही क्षण उसका मस्तिष्क—'सुरेश की बीमारी में किससे इस बेगाने देश में सहायता माँगेगी, किस का मुँह मदद के लिए जोहेगी? कैसा लज्जा का जीवन बिताना पड़ेगा।' आदि चिन्ताओं के ताने-बाने बुनने में लीन हो गया। उसे कुछ भी सूझ न रहा था की क्या करे क्या न करे।—रोये, चिल्लाये या सिर धुनकर इस जीवन को समाप्त कर दे।

तीसवाँ परिच्छेद

केदार बाबू जब सबको स्टेशन पर बिदा कर घर वापस लौटे तो रास्ते में पानी बरसने से भीग गये थे और उसी कारण उनको बुखार आ गया था और गठिया का दर्द भी उखड़ आया था। इस बीमारी में पड़े उनको सात आठ दिन बीत चले थे। साथ ही उनको अचला और महिम का

कोई भी समाचार न मिला था, उसकी चिन्ता अलग खाये जा रही थी। सिर्फ जबलपुर पत्र लिखने के कारण कर भी क्या सकते थे। वही उन्होंने किया भी। आज उसका उत्तर आ गया कि वहाँ तो कोई भी नहीं पहुँचा। उन्होंने पत्र को बार-बार पढ़ा और जितना पढ़ते उतनी ही दुश्चिन्ता गहरी होती जा रही थी। चश्मे को साफ करते हुए वे शून्य की ओर एकटक निहार रहे थे, सोचते हुए कि क्या करें किससे पता लगायें? कुछ भी उनकी समझ में न आ रहा था।

उसी समय एक और चिट्ठी नौकर ने लाकर दी। केदार बाबू ने व्यग्र हृदय से काँपते हाथों से उसे खोला। किसी स्त्री की लिखावट थी। चिट्ठी अचला के नाम थी। उन्होंने उसे खोल डाला। यह विचार कि दूसरे का पत्र नहीं खोलना चाहिए एक बार भी उनके दिल में न उठा। सबसे पहले उनकी व्यग्र आँखों ने देखा किस की भेजी चिट्ठी है। नीचे मृणाल के हस्ताक्षर थे। उस चिट्ठी को कई बार पढ़ गये। पढ़ते पढ़ते शून्य की तरफ देखते कुछ समझने का प्रयास करते थे, न समझ सकने पर फिर पढ़ते। मृणाल ने अचला को नारी की सहन-शीलता धैर्य यादि के उपदेश देकर अन्त में लिखा था—'भइया से जब मैं तुम्हारे बारे में पूछती हूँ तब वे गम्भीर हो जाते हैं, सब समझ सकती हूँ। लड़ाई-झगड़ा तो होता ही है, मगर इतना अधिक रूठना नहीं चाहिए। तुम्हारे पति बिमार हैं, कमजोर हैं, झुँझलाहट मे गुस्सा भी आ सकता है और नाराजी में चले भी जा सकते हैं। लेकिन तुम तो उनसे स्वस्थ हो, सोच-समझ सकती हो, मैं नहीं सोच पा रही कि किस तरह का पत्थर दिल करके तुमने उनसे रूठ कर जाते समय उन्हें न रोक, जाने दिया अकेले ही इस जङ्गल में और अब भी सात-आठ दिन से जो सात-आठ दिन साधारण नहीं सालों के बराबर हैं, चुपचाप मायके में बिना कोई सुध लिये बैठी हो। क्या दुनिया हो गई है उनकी क्या बताऊँ तुम से? जब से अकेले सामान लेकर घर में घुसे तो मैं एक बार को पहचान भी न सकी। तुमसे किस बात पर क्यों, कब, कैसे झगड़ा हुआ और जबलपुर जाने के स्थान पर वे कैसे यहाँ चले आये

आदि मैं नहीं जानना चाहती, पर तुम पत्र देखते ही चली आना, तुम्हें मेरे सर की कसम। तुम्हें तो सब मालूम ही है कि बूढ़ी सास के मारे कहीं आ जा नहीं सकती, अगर शक्ति होती तो खुद ही आकर तुम्हारे पैरों पड़ तुमको लिवा जाती। भइया की तबीयत बहुत ज्यादा खराब है, उन्हें छोड़कर भी नहीं आ सकती। जब तुम एक बार आकर अपनी आँखों से देखोगी तब समझोगी कि उनकी ऐसी हालत में रूठकर तुमने कितना बड़ा अन्याय कर डाला है। तुम किसी तरह का सङ्कोच न करना मैं भी तुम्हारी और यह घर भी तुम्हारा, तुरन्त चली आना, मैं तुम्हारी बाट जोहती रहूँगी और देखो भइया न जानने पावें कि मैंने तुमको यह लिखा है। उनसे छिपाकर ही लिख रही हूँ—पत्र के अन्त में पुनश्च करके उसने फिर लिखा था—'मुझे आशा है कि पति के पीछे सुरेश के घर में तुम न रही होगी, तभी तुम्हारे घर के पते पर भेज रही हूँ। आशा है मिलने में विलम्ब न होगा।'

केदारबाबू के हाँथ काँप गये, चिट्ठी छूटकर नीचे गिर गई। चश्मा आँख से उतार कर फिर साफ करने लगे। पत्र से इतना तो वे समझ गये कि महिम जबलपुर में नहीं, मृणाल के गाँव में है और अचला उसके साथ नहीं है। कहाँ है वह, क्या हुआ उसका, आदि बातें यह तो महिम जानकर भी बताना नहीं चाहता, या फिर उसे मालूम नहीं, तुरन्त ही उन्हें सुरेश का खयाल आया। वह भी तो उनके साथ गया था। अब वह कहाँ है? घर लौटा नहीं, लौटता तो मिलने जरूर आता। और सहसा ही केदार बाबू के हृदय में जो अगली आशङ्का उत्पन्न हुई उसने उनके समस्त अन्तर को बिंध डाला, जिसकी पीड़ा से वे बैठे न रह सके और आराम कुर्सी पर आँखें मूँद पड़ रहे।

दोपहर तक नौकरानी सुरेश के घर से भी समाचार ले आई कि सुरेश वहाँ नहीं आया, न उसकी कुछ सूचना ही है जिसके कारण बुआ जी को भी अत्यन्त चिन्ता हो रही है।

रात के समय केदार बाबू ने फिर मृणाल के पत्र को पढ़ा और हर

अक्षर को अलग-अलग कर उसकी मीनमेख निकालने लगे। सम्भव है कुछ सुराग मिल जाय नहीं तो वे कहीं मुँह भी न दिखा सकेंगे। पर कुछ भी उनकी बुद्धि में नहीं आ रहा था।'

हमेशा से बाप-दादों के जमाने से वे कलकत्ते में ही रहते आ रहे थे, अपना काला मुँह छिपाने के लिए कहीं अन्यत्र जाकर कैसे रह सकेंगे, इसी कल्पना मात्र से वे सिहर उठे। एकबारगी अचला के ऊपर उनका क्रोध उबल पड़ा—पर वे तय न कर सके कि अभागिनी के लिए कौन सा शाप हो सकता है जिसने अपनी करनी से अपने रोगी पिता के बुढ़ापे म दाग लगाया।

रात योंही जगते कटी और सवेरे उठने पर उनको पेट की बीमारी की शिकायत और भी बढ़ गई। गरज उन्हें सारा संसार सूना-सूना दिखाई पड़ा जिसमें आँखें पसार कर देखने से भी उनका अपना कोई नजर न आया। आज उन्हें बीमार होने पर भी खाट पर निर्जीव पड़े रहने की भी हिम्मत न रही। सारे दुःख को अपने में अन्तर्हित कर शान्त भाव से बाहर निकले और नौकर से स्टेशन को गाड़ी लाने के लिए और कपड़े-लत्ते सँभालने को कहा।

इकतीसवाँ परिच्छेद

सूर्यास्त होने को था। उसकी किरणों से सोन नदी के तट का सिकताप्राङ्गण चिलचिला रहा था और सिकता-कण झिलमिला रहे थे। अचला तट के एक छोटे से बँगले के बरामदे की छतों की छड़ें पकड़े उसी सुविस्तृत सिकताप्राङ्गण की तरफ एकटक देख रही थी। हालाँ कि उस सिकताप्राङ्गण से उनके जीवन की आपद घटनाओं, का कोई भी सम्बन्ध न था, फिर भी वितृस्त मैदान की तरफ एकटक देखने में उसे सारा चित्र भी झिलमिलाते चित्रपट की भाँति ही प्रतीत हो रहा था।

'दीदी'

अचला सहसा चौंक गई, घूमकर देखा तो राक्षसी खड़ी है। यह वही

लड़की है जिससे उसका परिचय गाड़ी में हुआ था और आरा स्टेशन पर 'राक्षसी' नाम से अपना परिचय देकर उतर गई थी।

अचला का चेहरा पीला, उदास, चिन्तित हो रहा था। पास आकर बोली—'दीदी, मैं तुमको अब भी दिन-रात चिन्ता में डूबी देखती हूँ, हँसते तो कभी मैंने तुमको देखा नहीं। अब तो डॉक्टर और सभी कहते हैं सुरेश बाबू ठीक हो जायेंगे। फिर क्यों इतनी सुस्त रहती हो? आखिर हमारे भी पति हैं, उनके दुःख में हम भी चिन्ता करती हैं, पर तुमने तो हद कर दी चिन्ता की।'

अचला ने उत्तर न दिया, केवल मुँह फेर कर दीर्घ निःश्वास छोड़ी।

राक्षसी ने तनिक उपालम्भ स्वरूप नाराजगी के स्वर में कहा—'इस तरह फुँफकारती क्यों हो?'

अचला ने इसका भी कोई उत्तर न दिया। तब स्नेह से उसका हाथ अपने हाथ में ले राक्षसी बोली—'सुरम दीदी!' सच बताओ! क्या हमारे घर में तबीअत नहीं लगती तुम्हारी? तुम्हें यहाँ शायद कष्ट होता है? क्यों? है न यही बात?'

अचला ने नदी की तरफ देखते हुए ही इस बात का उत्तर दिया—'बहन, तुम्हारे ससुर साहब के उपकार को तो हम जिन्दगी भर नहीं भुला सकते।'

राक्षसी ने हँसकर कहा—'जैसे मैं इसी के लिए तो तुम्हारी खुशामद करती हूँ!'—और थोड़ा रुककर उपालम्भ स्वर में बोली—'और शायद इसीलिए तुमने बाबू जी को भी कोई उत्तर नहीं दिया। सोचा होगा कि इस बूढ़े को जब देखो तभी ···।'

अचला ने उसकी तरह मुँह कर बीच में ही बात काटकर कहा—'नहीं-नहीं, सो बात नहीं।'

राक्षसी—'हाँ सो काहे को है?—मैंने पूजा-गृह में बैठे होने पर भी सुना था उनकी आवाज को। बाबू जी ने चार-पाँच बार बुलाया। मैं पूजा का सामान ज्यों-का-त्यों छोड़ दौड़ कर आई तो वे नीचे उतर कर आ

रहे थे।

अचला समझ गई कि क्यों वह बाबूजी की आवाज़ न सुन सकी थी। शर्मा कर बोली—'हो सकता है मैं भीतर किसी काम से···।'

राक्षसी—'पर घर के भीतर जिनके लिए काम में लगी होतीं वे उस समय बाहर घूमने गये थे। आँगन से साफ दिखाई पड़ रहा था। तुम उस समय भी इसी तरह यहीं खड़ी थीं।' कह ज़रा हँस दी, फिर बोली—'सुनती कैसे, तुम तो न जाने कहाँ खो गई थीं। मैं कह दूँ मगर, कि तुम क्या सोच रही थी तो···?'

अचला फिर अनमनी-सी बिना किसी बात का उत्तर दिये नदी की तरफ देखने लगी।

हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते हैं कि जिसको हम राक्षसी कहते आये हैं, उसका सही नाम वीणापाणि है। उसके पैदा होते ही उसकी माँ मर गई तभी दादी ने उसका नाम राक्षसी रख दिया था, और तब से वह इसी नाम से मशहूर हो गई, वैसे उसके रूप गुण से राक्षसी नाम का कतई भी मेल नहीं।

अचला यों ही देखती रही। राक्षसी अपनी बातों से शर्मिन्दा होकर बोली—'दीदी, क्या तुमसे कभी हँस कर बोला भी न करें? मैं जानती हूँ कि बाबूजी के प्रति तुम्हारी कितनी भक्ति है। हमें सब कुछ मालूम हो गया है उनसे। सवेरे टहलकर लौट रहे थे तभी तुम इस अनजान जगह में अकेली उद्विग्न सी डॉक्टर तलाश करने निकली थीं। तब वे तुम्हारे साथ सराय गये और तुम्हारे पति के साथ यहाँ लिवा लाये, क्या हम में से किसी ने भी सोचा था कि इस तरह तुम हमारे घर आओगी? हाँ, तुमने मेरी बात तो टाल ही दी।' बोली—'हमारे यहाँ तुम्हारी तबीअत बिलकुल भी नहीं लगती? क्या तकलीफ है तुमको यहाँ दीदी, मुझे बता दो! उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ देर चुप रही, पर प्रतीक्षा करना व्यर्थ जान अचला का मुँह स्नेह से अपने हाथों से अपनी ओर किया तो देखा कि अचला की आँखों से आँसू की झड़ी लगी है। वह यह देख दङ्ग रह

गई। अचला ने दूसरी ओर मुँह फेर आँखें पोंछ लीं।

दूसरे दिन वीणापाणि अचला को किसी ताजे मासिक पत्र से कहानी पढ़कर सुना रही थी, बेंत की आराम कुर्सी पर अचला अधलेटी सुन रही थी। तभी वीणा के ससुर जिनका नाम है रामचरण लाहिड़ी 'बेटी राक्षसी' आवाज देते ऊपर आ पहुँचे। दोनों ही ने उनको आते देखा। वीणा ने एक कुर्सी उनके बैठने को उनकी तरफ कर पूछा—'क्या है बाबूजी?'

बैठकर अचला की तरफ स्नेह से देख बोले—'पुरोहित जी ने अभी आकर बताया कि तुम दोनों पति-पत्नी एक साथ नारायण को नित्यप्रति तुलसी चढ़ाकर जो सङ्कल्प कर रहे थे, वह कल समाप्त होगा। उसके लिए तुम्हें बेटी जरा देर तक बिना खाये ही रहना होगा, तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा, यहीं नारायण लाकर सब काम समाप्त कर जायेंगे।'

सुनते ही अचला का सारा चेहरा काला पड़ गया। वृद्ध तो उसे न देख सके, वीणापाणि की नजर उस पर पड़ गई। पानी के लिए बीमार पति का स्वास्थ्य लाभ करना कितनी बड़ी बात है सो अच्छी तरह जानती है। जब उसने अचला के चेहरे का रङ्ग बदलते देखा तो वह मारे भिय के दङ्ग रह गई। फिर भी अचला की तरफ से ही बोली—'बाबू जी यह तो बताइए नारायण को तुलसी तो चढ़ाई गई है पर सुरेश बाबू के स्वास्थ्य के लिए दीदी उपासना और उपवास करें, सो क्यों?'

लाहिड़ी महाशय ने हँसते हुए उत्तर दिया—'सुरेश बाबू और तुम्हारी जीजी कोई अलग-अलग हैं क्या? वे तो भूखे नहीं रह सकते। अभी कमजोरी की हालत है। इसलिए तुम्हारी दीदी को ही व्रत रखना चाहिए। शास्त्र की बात है बेटी। इसमें कोई एतराज की बात नहीं है।'

अचला की अब की चुप्पी पर लाहिड़ी महाशय का भी ध्यान गया। उन्होंने अचला की तरफ देखकर पूछा—'सुरमा बेटी! तुम्हें क्या इसमें कुछ एतराज है?'

अचला से इसका उत्तर भी तुरन्त न देते बना, सोचकर बोली—'वे

शायद स्वयं उपवास कर लेंगे अगर उनसे कहा जायगा तो।'

अचला की बात कटु थी, जिसकी किसी को भी आशा न थी। सुन कर चुप रह गये। अचला ने स्वयं ही सबसे अधिक अपनी बात की कटुता अनुभव की।

लाहिड़ी महाशय यह कहते हुए कि—'जैसा तुम चाहती हो वैसा ही होगा'—चले गये। नौकर आकर लालटेन भर गया; पर वीणा तथा अचला काफी देर तक चुप बैठी रहीं। कहानी का सिलसिला भी फिर जहाँ से टूटा था वहीं टूटा रह गया। सन्ध्या समय की सामने की बालू हवा में उड़ गहन अन्धकार में अभेद घने पर्दे की तरह खड़ी हो रही थी। उसी की भाँति दोनों के हृदयाभाव भी घने होते जा रहे थे।

वीणा स्तब्धता को भङ्ग करते हुए अचला के पास ही कुर्सी खींचकर अपना हाथ आहिस्ते से अचला की गोद में रखकर मृदु कण्ठ से बोली—'दीदी, बता सकती हो मैं क्या देख रही हूँ, सामने की विस्तृत शिला-क्षेत्र में?' ऐसा जान पड़ा मानो निविड़ अन्धकार में तुम घिरी खड़ी हो लजाई सी—जीजी! तुम इस तरह काँप क्यों उठीं?

अचला ने थोड़ी देर तक तो इस बात का कोई उत्तर न दिया, फिर बोली—'सर्दी लगने लगी थी।'

वीणा ने अन्दर से एक शाल लाकर अचला पर डाल दिया और फिर अपने स्थान पर बैठकर बोली—'दीदी, एक बात पूछती, यदि तुम गुस्सा न होती तो?'

क्या बात हो सकती है इस आशङ्का से अचला का सारा बदन और अन्तर सिहर उठा, पर कहीं स्वर से सिहरन प्रकट न हो जाय, उसने सिर्फ—'नहीं!' भर कहकर वीणा को बात पूछने की अनुमति दे दी।

वीणा सारा स्नेह बटोर कर मीठे कोमल स्वर में बोली—'गाड़ी में जब हम दोनों की भेंट हुई थी तब तो हमारा सिर्फ गाड़ी का ही परिचय था, पर अब तो हमारा रिश्ता गहरा हो गया है। तुम मेरी दीदी, मैं तुम्हारी छोटी बहन!' तुमने गाड़ी में मुझसे कहा था कि तुम्हारे पति

बीमार हैं वे दूसरे डिब्बे में हैं। उन्हें लेकर जबलपुर जल-वायु परिवर्तन के लिए जा रही हो। मैं तभी समझ गई थी, पर तुमने मुझसे यह बात छिपाई क्यों थी ?—बताओ न दीदी !—हाँ ! तुमने कहा था कि तुम ब्रह्मसमाजी हो, पर तुम्हारे पतिदेव का जनेऊ देखकर विष्णुपुर के पुरोहित भी लजा जायेंगे !—बताओ, यह सब क्यों झूठ-मूठ का परिचय दिया था तुमने !'

अचला का मन उदास था फिर भी जबरदस्ती ओठों पर हँसी लाकर बोली—'न बताऊँ तो ?'

वीणा—'तो मैं ही बता देती हूँ। ठीक-ठीक बताने पर बोलो क्या इनाम दोगी ?'

अचला को काटो तो खून न रहा। चेहरा पीला पड़ गया। पता नहीं वीणा ने उसे देखा या नहीं, पर जरा देर बाद हँसकर बोली—'देने दिवाने की बात रहने दो ! क्या खिलाओगी सो बताओ अचला दीदी !'

वीणा के मुँह से अपना सही नाम सुन अचला का खून और भी सूख गया और वह प्रायः संज्ञाहीन सी हो गई।

वीणा—'तुम्हारा सच्चा परिचय प्राप्त करने में न मैं दोषी हूँ और न तुम ही। दोष तो हमारे और तुम्हारे ही 'उनका' है। तुम्हारे 'उन्होंने' बुखार की अचेतनता में तुम्हारा सही नाम प्रकट कर दिया और मेरे 'उन्होंने' उसी नाम के आगे तुम्हारा सही परिचय का भी पता लगा लिया।'

अचला का तो कलेजा मुँह को आ रहा था, पर अपनी इस अवस्था को छिपाने के लिए किसी तरह स्वर को संयत कर बोली—'अच्छा बताओ तो ! सुनूँ अपना सही परिचय !'

वीणा—'मेरे 'उन्होंने' एक दिन रात को आकर ताना मारते हुए कहा, यह भी क्या तमाशा है कि तुम्हारी अचला दीदी घर रूठ कर भाग आई हैं। मुझे उनकी बात बुरी लगी, नाराज हो मैंने कहा, तुम्हें क्या मालूम जी ! बेकार में ही बातें बना रहे हो। कहीं दीदी ने अगर सुन लिया तो बस ठिकाना न समझो।'

अचला ने अपने को स्थिर रखने के लिए कुर्सी का हत्था पकड़ लिया।

वीणा—'वे बोले, वे नाराज भले ही हो जायँ, पर जो बात सच है सो ही मैंने कही है। वे पति के साथ घर से निकल आई हैं। अब घर पर झगड़ा चाहे सास ससुर से हुआ हो या फिर देवरानी-जेठानी अथवा नन्द से। तुम्हारी दीदी अगर सुरेश बाबू से समुद्र में डूबने को भी कहें तो डूबने को तैयार हो जायेंगे। वे उनके बस से जो हैं। जब तक उनके माँ-बाप आकर खुशामद कर मनाकर इन्हें लौटाकर नहीं ले जाते तब तक इसी तरह नाम बदलकर इधर-उधर घूमते रहेंगे। अगर इसमें जरा भी झूठ निकल आये तो फिर—इस पर मैंने उनसे कहा कि गाड़ी में तो मेरा उनका परिचय जरा देर का ही हुआ था और वहाँ यह आशा भी न थी कि अब हम फिर कभी भी मिलेंगे तो अनजान औरत से वे क्यों झूठ बोलतीं।—इस पर हँसकर उन्होंने कहा—हाँ! झूठ की आवश्यकता तो न थी यदि वे भी तुम्हारी जैसी बुद्धिमती होतीं। अब तुमने उनसे कहा कि तुम दो-चार दिन में ही डेहरी आ जाओगी तो तुरन्त उन्होंने अपना परिचय बदल दिया। अब तुम से कहा डेहरी नहीं जबलपुर जा रहे हैं। अचला नहीं सुरमा नाम है। भला तुमने भी तो दिमाग से सोचा होता कि जबलपुर का टिकट लेकर गाड़ी बदलकर डेहरी कोई क्यों आने लगा और फिर बीमार पति को लेकर वे सराय में क्यों ठहरीं, किसी बङ्गाली घर में क्यों न ठहरीं।'

वीणा ने सहसा बगल में खड़ी अचला को अपनी भुजाओं में कस लिया और स्नेह-पूर्ण स्वर में आग्रह से बोली—'लो, मैं तुमको छूकर सौगन्ध खाती हूँ, किसी से न कहूँगी। बताओ न मामला क्या है?'

सिवा सही नाम के सारी बातें झूठ थीं, जिसने अपने आप ही सुरेश और अचला का सम्बन्ध स्थापित कर दिया। अपने इस परिचय से अचला अपने को सँभाल न सकी और उसका शरीर निर्जीव हो वीणा की बाँहों में ही ढीला होकर लुढ़क गया। एक साथ उसके अन्तर को जीवन भर की लज्जापूर्ण घटनाओं ने आकर घेर लिया; पर थोड़ी देर तक ही वह उससे

उद्वेलित होती रही और तुरन्त ही बिना उसके अन्तर को विशेष विदीर्ण किये निकल गई और अपने पीछे अविरल आँसुओं की धार छोड़ गई। बहुत देर तक वह इसी अवस्था में निर्जीव पड़ी रही। वीणा बार-बार अपनी धोती के छोर से उसके आँसुओं को पोंछती रही। बाद में अपने समस्त स्वर माधुर्य को बटोर कर बोली—'दीदी, मैं तुमसे उम्र में छोटी हूँ। छोटी बहन के नाते ही अनुरोध करती हूँ कि अब तुम अपनी नाराजगी खतम कर घर वापस लौट जाओ। इतना रूठना अच्छा नहीं। बड़ी कठिनाइयों के बाद तो तुम्हारा सौभाग्य बच पाया, और अधिक माँ-बाप को दुखी करना ठीक नहीं। सास-ससुर के घर अपनी बात नीची कर जाने में अपमान समझना बुद्धिमानी नहीं है।' थोड़ा रुककर फिर बोली—'क्यों चुप हो गईं दीदी। बोलो, जवाब दो! नहीं जाना चाहतीं! पर यह विश्वास रक्खो कि सुरेश बाबू तुम्हारे मुँह से घर वापस जाने की बात सुन कर खुश ही होंगे। जब से तुम लोगों ने घर छोड़ा है, उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा।'

अचला ने आँसू पोंछ डाले और अपने को संयत कर वीणा की गोद में से उठकर सीधी बैठ गई। वीणा की कुतूहलपूर्ण आँखें अब भी अचला के चेहरे पर गड़ी थीं। अचला समझ गई थी कि वीणा के प्रश्नों का उत्तर दिये बिना काम भी नहीं चलेगा, पर मारे शर्म के उसके मुँह से शब्द भी निकलना कठिन हो रहा था। किसी तरह अपने को संयत कर दीर्घोच्छ्वास छोड़ बोली—'वीणा, हमारे लिए घर का रास्ता सदा के लिए बन्द हो गया है।'

वीणा को विस्मय हुआ, पर वह अचला की बात का विश्वास न कर सकी, सानुरोध स्वर में बोली—'रास्ता क्यों बन्द हो गया दीदी? मुझे अधिक दिन नहीं हुए तुमसे परिचित हुए, पर इतने अल्प समय में मैं तुम्हें जितना जान सकी हूँ उससे दावे से कह सकती हूँ कि तुम कभी ऐसा काम नहीं कर सकती जिससे तुम्हारे लिए घर का रास्ता बन्द हो जाय। अच्छा तो तुम मुझे अपनी ससुराल का पता दो। परसों की गाड़ी से हम

लोग घर जा रहे हैं। तुम्हारे सास-ससुर मेरे भी तो सास-ससुर लगेंगे, उन से शर्म ही कैसी, मैं ही जाकर उनसे बात करूँगी।'

अचला वीणा की बात से चौंक गई, उसने पूछा—'मैंने तो सुना भी नहीं कि तुम घर जा रही हो। यहाँ कौन रहेगा?'

वीणा—'मेरी बड़ी सास काफी दिनों से बीमार हैं। चारपाई से लगी हैं, तब से फिर बेचारी उठ ही न सकीं। अपने अन्त समय में हम सबको एक नजर देखना चाहती हैं इसलिए सभी जायँगे। यहाँ सिर्फ मकान की देख-भाल के लिए दरबान और नौकर रह जायँगे।'

अचला—'तुम्हारी ससुराल कहाँ है?'

वीणा—'कलकत्ते के पास ही पटलडाँगा में।'

सुनते ही अचला को काटो तो खून नहीं, चेहरा सफेद फक पड़ गया। कुछ देर मौन रहकर उसने कहा—'तो फिर यहाँ तो अब हम लोगों का रहना हो नहीं सकता। कल ही कहीं दूसरी जगह चला जाना चाहिए।'

वीणा ने थोड़ा हँसकर कहा—'तो इतनी देर मेरी माथा-पच्ची का क्या मतलब लगाया तुमने दीदी? जैसे मैं इसी लिए तुमसे अपने घर लौट जाने को कह रही थी? नहीं दीदी, नहीं। मुझसे गलती हुई अब कभी जाने की बात न चलाऊँगी—जब तक जी चाहे यहाँ रहो।'

अचला ने वीणा के निमन्त्रण का कुछ भी उत्तर न दिया, पूछा—'तो क्या तुम लोगों का परसों जाना निश्चय है?'

वीणा—'इसमें भी क्या शक है। आज ही जाने को डिब्बा भी रिजर्व करा लिया है, सारा सामान भी बँध गया है।'

तभी नौकरानी ने दरवाजे पर आकर वीणा से कहा—'बहू जी, आप को माँजी चौके में बुला रही हैं।'

वीणा—'जाकर कह दे, आती हूँ।'—कह वीणा ने फिर स्नेह से अचला को गले से लगा लिया और कान में बोली—'मेरी प्यारी दीदी,—अब तक तो घर में भीड़-भाड़ की खचखच में तो··· बड़ी मुसीबत रही

दोनों की, अब अकेला घर रहेगा, तब जरा छनेगी···।' कह अचला के गाल मसलकर हँसती-इठलाती चल दी।

वीणा के इस व्यवहार से आनन्द की एक हिलोर आई, पर क्षण भर में ही उसी के साथ ही पीछे अचला को चिन्ताग्रस्त छोड़ चली गई। केवल उसके कानों में वीणा के स्नेह विह्वल शब्दों का माधुर्य रस भरता रहा—'परसों के बाद इस घर में वह होगी और सुरेश।' रह-रहकर दुश्चिन्ता शङ्का से मन विह्वल होने लगा।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

परसों के बाद से इस निर्जन मकान में वह होगी और होगा सुरेश। अभी तो वह सुरेश की काम-व्यग्रता को टालती रही—'अवसर नहीं है। आज नहीं कल।' कहकह कर। परसों से वह होगी और सुरेश अकेले, न कोई रोक न टोक और न 'मौका नहीं' का बहाना ही रहेगा।—कल्पना मात्र से ही उसका सारा बदन काँप उठा।—वीणापाणि ने थोड़ी देर पहले ही कहा था—'ससुर के घर में अपनी बात नीची करके भी जाने में शर्म नहीं करनी चाहिए। पर वह कैसे किसी के सामने अपनी जली फुँकी लाज की राख को फूँक अपना कलंकित परिचय दे। वैसे तो आज भी उसका पति जीवित है, जल गया तो क्या, आज भी जला खण्डहर अपना कहने को घर भी है।

जिस तरह धुआँ घुमड़ता ही रहता है, जब तक उसे बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता वैसे ही अचला की व्यथा की अग्नि से उत्पन्न धुआँ अन्दर ही अन्दर घुमड़ने लगा। रास्ता न मिल रहा था उसे। बहुत दिनों से इसी पलङ्ग पर वह वीणा के साथ ही सोती थी, पर आज उसके पति आ गये हैं तो वहीं सोने गई है। अचला को रह-रहकर उसका जाना याद आने लगा। वह भरसक उनके खयाल को अपने मन से निकालने की कोशिश करने लगी पर उसका नारी-हृदय रह-रह कर विवश हो जाता और उसकी नजरों के सामने वीणा बन्द कमरे में पति के पलङ्ग

पर दिखाई पड़ जाती। वह फिर मन को संयत करती कि कहीं उसका मन उसके प्रति ईर्षा, जलन और नारी की कमजोरी से चोट खाकर कलप न उठे।

जिस समय उसका अन्तर इसी उद्वेलन से विदीर्ण हो रहा था, पास के किसी कमरे की घड़ी ने रात के दो बजाये। उसने शाल उतारकर अपने को सीधा किया, उस समय उसके माथे पर इस जाड़े की रात में भी पसीने की बूँदें थीं। उसने उठकर खिड़की खोली। ठीक सामने कृष्णपक्ष की अष्टमी का चन्द्रमा अपनी शीतल ज्योत्स्ना बिखेर रहा था। उसके किरण-करों ने अचला के उद्विग्न मस्तिष्क पर शीतल स्पर्श किया। अचला उसी खिड़की के सहारे अपने भाग्य की विडम्बनाओं पर बैठ विचार करने लगी।

अचला को अपना सारा जीवन एक अद्भुत उपन्यासवत् जान पड़ा। और उपन्यास के आरम्भ से लेकर अब तक की सारी घटनाएँ चित्रवत् उसके सामने फिरने लगीं और उन्हें देख-देख उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। वह सोचने लगी—'हा भगवन्, क्या मुझ अभागिन का जीवन ही तुम्हें अपना खेल खेलने को मिला जो इस निर्ममता और निष्ठुरता से तुमने मेरा सारा यौवन मसोसकर रख दिया और जीवन की उषः वेला में ही अन्धकारपूर्ण घटाटोप रात ला दी। बचपन से ही उसे ईश्वर की महानता, दया, करुणा पर विश्वास करने की शिक्षा दी गई थी, पर एक बारगी उसका सारा विश्वास ईश्वर के प्रति क्षोभ में बदल गया। कहाँ वह ब्रह्मसमाजी और कहाँ ब्रह्मसमाजियों की छाया तक से घृणा करने वाला सुरेश। आज वही उसके पीछे पागल है। अजीब है भाग्य का खेल! सुरेश से उसने कभी प्यार भी नहीं किया, पर उसी के पीछे अपने पति को जिसे उसने प्यार किया है, त्याग इस बेगाने देश में उसी की खातिर पड़ी और आज सुरेश की साँस उसकी साँस बनी हुई है। यह जीवन की कितनी बड़ी विडम्बना है। आज भी सत्य है कि वह महिम की है, उसी को प्यार करती है, पर भाग्य-चक्र ने जिसे करने को

विवश कर दिया है, क्या वही तब भी उसके जीवन का सत्य बन जायगा? अपने से ही यह कितना कुत्सित व्यङ्ग है कि जीवन के सबसे भयङ्कर असत्य, सुरेश से उसके सम्बन्ध, का प्रचार भी उसी के मुँह से हुआ। कितने कष्टों और त्याग के बाद उसने महिम को पाया था, पर भाग्य को तो वह मञ्जूर न था और सुरेश ने एकाएक एक दिन उसके गाँव में जाकर भी उसके भाग्य में आग लगा दी। फिर भी जानते-बूझते क्यों आई सुरेश के साथ? क्यों उस पर विश्वास किया? और क्यों अपने बीमार पति को उसके निष्ठुर हाथों में डाल दिया? मौत के मुँह से जीतकर उसने महिम को फिर पाया था तो फिर क्यों विधाता ने यह दिखाया। उसे यही मञ्जूर था तो फिर हृदय को शान्ति क्यों नहीं देता। उसने सुरेश के साथ सहानुभूति का व्यवहार कर और उसे अपने साथ चलने को कह जीवन की सबसे बड़ी भूल की। क्या यह उसी भूल का दण्ड है?

अब तक वह इस तरह अपने से सङ्घर्ष कर महिम तथा पिता को भुलाये हुए थी, पर आज उसे मृणाल और बुआजी की याद आ गई और बुआजी की याद आते ही उनके चलते समय के वे शब्द उसके कानों में टकराने लगे जो उन्होंने उसे आशीर्वाद देते हुए कहे थे और सती नाम से सम्बोधित किया था। आज उसका आचरण देख सुनकर उसका मन कैसा कर उठेगा? वे क्या कहेंगी? वह सोचने लगी। आँखों से आँसू बहने लगे। सारा शरीर निर्जीव हो खिड़की के सहारे लुढ़क गया।

पीछे से पैरों की आहट से उसके विचारों का ताँता भङ्ग हो गया। उसने अचकचाकर पीछे मुड़ देखा तो सुरेश को नंगे बदन नंगे पैर खड़ा पाया। भावों के आवेग में कुछ कहने के लिए उसके ओठ हिले पर आँसुओं ने कण्ठ को रुद्ध कर दिया था। आँसू बहाने लगी।

चारों ओर घोर सन्नाटा था। सुरेश मूर्तिवत् खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उसके पत्थर शरीर में स्पन्दन हुआ, शरीर हिला और उसने पूरे आवेश में अचला का सिर अपने हाथों में खींच छाती से चिपटा लिया।

अचला ने सुरेश की बाहों से अपने को छुड़ा तो लिया, पर जहाँ उसे सुरेश से जो वास्तव में उसके दुर्भाग्य का मूल कारण था, घृणा करनी चाहिए थी, उसे उसके इस आचरण के लिए धिक्कारना चाहिए था वहाँ अचला ने अपने आँसू पोंछे। कण्ठ में कोमलता ला स्नेह स्वर में कहा—'क्यों आये तुम, इस कमरे में ?'

सुरेश ने कोई उत्तर न दिया।

अचला ने सुरेश का हाथ काँपता देखा तो खिड़की बन्द कर बोली—'जाओ। अपने कमरे में जाकर सो रहो। जाड़े से तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं। जाड़े में इस तरह नंगे बदन खड़ा होना ठीक नहीं।'

सुरेश की आँखों में वासना झलक रही थी, ओठ उत्तेजना में काँप रहे थे। अचला का हाथ अपने हाथ में लेकर साग्रह कोमल स्वर में बोला—'तो तुम भी चलो न !'

अचला स्तम्भित हो उसके मुँह की तरफ ताकती रही, फिर बोली—'आज नहीं' और आहिस्ते से अपना हाथ छुड़ा लिया।

सुरेश अचला के इस संयत व्यवहार को न समझ सका, थोड़ी देर तक मौन खड़ा रहा। अचला ने दूसरी तरफ देखते हुए ही पूछा—'तुम मुझे जागती जान कर आये थे ?'

सुरेश का हृदय चोट खा चुका था, चुटीले स्वर में बोला—'और नहीं तो क्या सोती जानकर आया हूँ !'

अचला के चेहरे पर विकृत हँसी आ गई। बत्ती के प्रकाश में सुरेश ने साफ-साफ समझा कि इस हँसी में उसी पर व्यङ्ग था कि सोती स्त्री के कमरे में अकेले में इस तरह दबे पाँव घुसने वाला कभी पतित पुरुष भी मानव महानता का दम भरता है। थोड़ी देर के मौन के बाद खिड़की से हटकर उसने कहा—'जाकर सो जाओ, तबीअत खराब हो जायगी।' और स्वयं बिना किसी इन्तज़ार के पलङ्ग पर लेट ऊपर से नीचे तक कम्बल ओढ़ सो गई।

सुरेश थोड़ी देर तक तो वहीं खड़ा रहा स्थिर मूर्तिवत्, फिर धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया।

तेतीसवाँ परिच्छेद

रामचरण बाबू तथा दो-चार नौकर-नौकरानी के सिवा परिवार के सभी लोगों को कलकत्ते गये पाँच दिन हो गये। जाने को रामचरण बाबू भी थे, पर ऐन मौके पर कोई अत्यन्त आवश्यक कार्यवश वे रुक गये और उसी काम में तब से ही व्यस्त भी हैं।

आज सवेरे ही उठकर वे ऊपर आये और अचला के कमरे के सामने आकर 'सुरमा, सुरमा' कर पुकारने लगे। एक तो जाड़े के दिन थे और सवेरा भी काफी था। बिना काम उस समय किसी का उठना नहीं हो सकता। अचला सो रही थी। पर आवाज सुनकर जल्दी से उठकर उसने दरवाजा खोला और उसके थोड़ी देर बाद ही सुरेश भी दरवाजा खोलकर सामने आ गया। रामचरण बाबू काफी वृद्ध थे, उनकी नजरों में दोनों पति-पत्नी को अलग कमरे से निकलते देख प्रसन्नता की चमक आ गई। सुरेश तो उनकी चमक न देख सका, पर अचला ने उन्हें समझ लिया।

सुरेश की तरफ देखते हुए रामचरण बाबू ने कहा—'आपको सवेरे ही जगाकर मैंने बुरा किया। माफ कीजिएगा सुरेश बाबू।'

सुरेश ने हँसते हुए उत्तर दिया—'नहीं-नहीं! इसकी आवश्यकता नहीं। मैं तो पहले ही से जाग रहा था। न जागता होता तो बाहर से किसी के चिल्लाने पर जगना तो दूर रहा, कान पर ढोल पीटने पर भी मुझे जगाना आसान नहीं। मगर आप सवेरे ही सवेरे जा कहाँ रहे हैं?'

रामचरण बाबू ने अचला की ओर उन्मुख हो कहा—'बेटी सुरमा! आज तुझे जरा तकलीफ देनी है। मैं अभी बाहर जा रहा हूँ। पालकी बाहर इन्तजार में खड़ी है। दो-तीन बजे तक लौट सकूँगा। तो मेरे लिए भी थोड़ा सा दाल-भात बना रखना नहीं तो लौटकर चूल्हा फूँकना पड़ेगा।'

रामचरण बाबू मांस-मछली कुछ भी न खाते थे। खाने के नियम भी उनके पक्के थे। सिवा अपनी स्त्री और बहू के किसी दूसरे के हाथ का बना खाना भी न खाते, उनके चौके में किसी अन्य को घुसने तक की इजाजत न थी। वे स्वयं ही खाना बनाया करते थे तभी घर की सारी स्त्रियाँ चली गई थीं और उनके जाने के बाद उनका स्वयं पाकी भोजन का ही नियम चल रहा था। पर आज एक अनजान पराई लड़की को खाना पका रखने को कहते सुन अचला विस्मय से दङ्ग रह गई और भय के कारण सिहर उठी।

रामचरण बाबू ने अचला के विस्मयान्वित चेहरे को देख उसका भाव समझ लिया, बोले—'बेटी, तुम अचरज कर रही हो कि आज इस बूढ़े हो क्या गया है। खाने-पीने के मामले में जो इतना खटराग करता था वही आज तुमसे खाना बनाने को कहता है। पर बेटी, जब राक्षसी के हाथ का बना खाया तो फिर उसमें और तुझ में तो कोई फरक नहीं! फिर कौन इतनी देर में लौटने पर यह झमेला करने बैठेगा।'

अचला स्तब्ध खड़ी सुनती रही। उसके चेहरे की तरफ देख वृद्ध महाशय आगे बोले—'तुम सोच रही हो कि जब मेरे हाथ का खाने में परहेज नहीं तो फिर महराज से ही क्यों नहीं बनवा लेते। पर नहीं बेटी, इतना नहीं हो सकता, वह न सन्ध्या पूजन करता है न नियम से रहता है। मरने पर भी उसके हाथ का खाना नहीं खा सकता। वैसे तो अभी राक्षसी और तुम में कोई भेद न समझता होऊँ सो बात नहीं, पर हाँ यह जरूर है कि जितना तुमको देखता जाता हूँ उतना ही समझता जाता हूँ कि तुम भी खाना बना कर खिला दोगी तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। पर अब और बातें लौट कर खाते समय होंगी, देर हो रही है' कह जाने लगे। अचला विह्वल हो उठी। क्या करे, क्या न करे? क्या कहे, क्या न कहे? अन्त में जो भी जुबान पर आ गया सो ही कह दिया—'लेकिन मेरी बनाई रसोई आपको पसन्द आयेगी? मुझे बनाना तो आता नहीं।'

रामचरण बाबू ने हँसकर मुड़ते हुए कहा—'मुझे तो इस पर विश्वास नहीं।'

अचला—'अच्छा खाना बनाना हर एक के बूते का तो काम नहीं।'

रामचरण बाबू—'और मैं कब कहता हूँ कि हर कोई अच्छा खाना बना ही सकता है।'

अचला मौन रह गई। पर सुरेश से अब वहाँ खड़ा न रहा गया। अचला का चेहरा फक पड़ गया था जिसे देख वह अचला का सही भाव समझ गया था। उस हिन्दू-संस्कार के दृढ़ पालक वृद्ध ब्राह्मण के साथ विश्वासघात करने के भय से ही उसका सारा चेहरा भयाकुल हो गया था। सुरेश अपना वहाँ खड़ा रहना असम्भव जान हाथ मुँह धोने के बहाने चला गया।

'अब मैं भी चला' कह वे भी सुरेश के पीछे-ही-पीछे उतर कर चले गये। अचला बड़े असमञ्जस में पड़ गई, थोड़ी देर मौन रह कर बोली—'जरा सुनिए तो...।'

रामचरण बाबू मुड़ कर खड़े हो गये। अचला कुछ कहना चाह कर भी गर्दन नीची कर मौन खड़ी रही। वे कुछ ऊपर चढ़ आये और स्नेहपूर्ण शब्दों में बोले—'बेटी, तुम मुझसे शर्माती हो। मेरी उम्र तुम्हारे पिता जी से कम न होगी। सारे मुहल्ले वाले मुझे 'छोटे दादा' कहा करते हैं, तुम भी मुझे ताऊजी कहा करो। समझी बिटिया।'

रामचरण बाबू का स्नेह अचला जानती थी और स्नेह के इन शब्दों से तो उसका हृदय भर आया और आँखें छलछला उठीं। उसने अपना सिर हिला कर ताऊजी कहने की सम्मति दे दी।

रामचरण बाबू—'और कुछ कहना है क्या?'

अचला मौन रही जमीन की ही तरफ आँख गड़ाये। फिर सारी हिम्मत बटोर धीरे से बोली—'मेरे पिताजी ब्रह्मसमाजी थे।'

रामचरण बाबू अचला की बात सुनकर चकित रह गये। बोले—'कलकत्ते में जाकर अनेक आदमियों को ब्रह्मसमाजी बनने का शौक चर्राता है। वैसे ही हो या सचमुच के? जो शौकिया ब्रह्मसमाजी होते हैं वे

ब्रह्मसमाज में बैठकर हिन्दुओं को गाली देने में असली ब्रह्मसमाजियों के भी कान काटते हैं, और घर लौटकर ब्रह्मसमाजियों को गाली देने में हिन्दुओं को भी मात कर जाते हैं। यदि वे इसी तरह के ब्रह्मसमाजी हैं तो मुझे एतराज नहीं।'

अचला मारे शर्म के गड़ी जा रही थी, बोली—'वे तो सच्चे ब्रह्म-समाजी हैं।'

अचला के उत्तर ने सहसा उन्हें असमञ्जस में डाल दिया। थोड़ी देर मौन रह हँसकर बोले—'वे होंगे तो होने दो। उनके ब्रह्मसमाजी होने से उनकी कन्या भी अस्पृश्य हो, सो तो कोई कारण नहीं। और फिर अब जो तुम्हारे जीवनाधार हैं, वे पक्के हिन्दू हैं। उनके गले में जनेऊ विराज रहा है। तुम्हारा धर्म तो अब उन्हीं के संस्कारों से बँधा हुआ है बेटी। तुम बहाना कितना भी करो, पर आज तो मेरा खाना तुमको बनाना ही होगा। समझा! उस दिन उपवास न करने का कारण भी तुम्हारे पिता का संस्कार ही था। है न यही बात?' कह वे जाने को उद्यत हो गये।

उन्हें जाते देख अचला ने और भी साहस बटोर कर कहा—'यदि मैं भी ब्रह्मसमाजी होऊँ, तब तो ताऊजी आप मेरे हाथ का बना खायेंगे नहीं।'

रामचरण बाबू ने विस्मयान्वित हो स्पष्ट कहा—'हाँ, तब नहीं खा सकता। पर तुम ब्रह्मसमाजी नहीं हो सकतीं और न हो ही।'

अचला—'यदि यही सत्य हो तो क्या मैं इसी कारण अस्पृश्य हो जाऊँगी?'

रामचरण बाबू—'बने में तो कोई एतराज न होगा बेटी; पर हाँ, खाने में मुझे आपत्ति जरूर होगी।'

अचला का तर्क जाग पड़ा था, बोली—'न खाने में क्या मेरे प्रति आपकी घृणा ही कारण है?'

रामचरण बाबू स्तम्भित निरुत्तर अचला के चेहरे की तरफ देखते रहे।

अचला—'ताऊजी आपके हृदय में दूसरों के लिए कितनी करुणा है उसकी गवाह तो सबसे बड़ी मैं स्वयं ही हूँ और भी न जाने कितने होंगे। पर यह मेरी समझ में नहीं आता कि आप मनुष्य से घृ

कैसे कर लेते हैं।'

रामचरण बाबू अचला के इस दोषारोपण से सहसा विकल हो बोले—'मैंने घृणा की? कब और किससे?'

अचला—'जिसके हाथ का छुआ आप खा नहीं सकते उसी से! महाराज का बनाया खाना आप खा नहीं सकते! इन सबसे कितना नुकसान उठाना होता है? उसकी उन्नति में कितनी बाधा पहुँचती है, सो तो···।'

रामचरण बाबू अचला के आवेग को समझ रहे थे तभी बीच में ही बोल पड़े—'शिकायत का यह ढङ्ग तुमने अपने पिता जी से और पिताजी ने साहब लोगों से सीखा है। वे ही लोग इस तरह शिकायत किया करते हैं। नहीं तो हम किसी से भी घृणा नहीं करते। मनुष्य भगवान का ही एक अङ्ग होता है, इस सत्य को वे ही जानते हैं सो बात नहीं, हम भी समझते हैं इस सत्य को।'

नीचे से कुछ शोर होने की आवाज आने लगी। पालकी वाले जल्दी मचा रहे थे। रामचरण बाबू ने उधर देख कहा—'बेटी, वे लोग जल्दी कर रहे हैं, अब चला। खाते समय इस बात को आगे बढ़ायेंगे। बड़े-बड़े खानों से मेरा मेल नहीं बैठता। तुम तो मेरे लिए मामूली-सा दाल-भात बना रखना।' कह जल्दी से नीचे उतर गये।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

तीसरे पहर रामचरण बाबू ने लौटकर भोजन समाप्त किया और डकार लेते हुए खाकर उठे। तभी अचला ने हँसते हुए कहा—'ताऊ जी, अब आप यह जान कर कि आपकी जाति नष्ट हो गई मेरे ऊपर नाराज मत होइएगा।'

रामचरण बाबू ने भी हँस कर कहा—'अच्छा बेटी, अच्छा! नहीं होऊँगा नाराज!' कह कुल्ला कर बाहर चले गये। जब तक उनकी खड़ाऊँ की आवाज सुन पड़ती रही अचला का ध्यान उन्हीं की तरफ रहा, पर

वह ध्यानमग्न हो गया कि फिर जान ही न सकी कि कब खड़ाऊँ की आवाज आनी बन्द हो गई और कब से वह इस तरह जड़वत् हो अपने में ही खो गई।

घर में एक पूरब देश की दासी है। बँगला भाषा के साथ-साथ बङ्गाली घराने के अनेक संस्कार भी उसने सीख लिये हैं। वह उधर से किसी कार्य से निकली तो अचला को जड़वत् बैठा देख अधिकारपूर्ण स्वर में बोली, क्योंकि वह अचला से उमर में बड़ी थी—'क्यों बहूजी, खाने-पीने की सुध ही नहीं है क्या जो इस तरह ध्यान में निश्चिन्त बैठी हो?'

अचला मानो सोते से जाग पड़ी। देखा, दिन छिप रहा है। वह उठ कर बोली—'लालू की माँ, मुझे भूख नहीं है। अब तो रात को ही खाऊँगी।'

दासी अचरज में पड़कर बोली—'तुमने तो पहले कहा था, कि बड़े बाबू के खा लेने के बाद खाओगी।'

'इस समय नहीं, रात को ही खाऊँगी।' और अधिक बात बढ़ने का अवसर न दे अचला वहाँ से चली गई।

अचला का नित्य-नियम था, अवकाश पाकर ऊपर के बरामदे में छज्जे के सहारे बैठकर एकटक नदी के प्रवाह की तरफ निहारना। आज भी रात को वहीं बैठी नदी की तरफ देख रही थी। रामचरण बाबू की चप्पलों की आहट से उसने घबराकर मुड़कर देखा कि रामचरण बाबू बीच कमरे में आकर खड़े हैं। जब तक अचला कुछ कहे हुक्का दीवाल के सहारे रख, वह एक कुर्सी पर बैठ गये। और हँसते हुए बोले—'बेटी, इस समय इस बात का निश्चय करने आया हूँ कि किसकी बात ठीक है। मेरी अथवा तुम्हारे ब्रह्मसमाजी पिता जी की? मैं इस निश्चय करने से पहले नीचे नहीं जाने का।'

बहस में वही जाति-पाँत के विभेद का सवाल उठेगा, यह अचला समझती थी। उसने अन्यमनस्क हो कहा—'ताऊजी, मैं तो बहस करना नहीं जानती।'

रामचरण बाबू—'बहस करना नहीं जानती और तुम ! वह तो सवेरे मात खा गया होता लेकिन बात में सत्यता न थी इसीलिए तुम्हारे तर्क काम न दे सके। तुम मामूली होशियार व्यक्ति की कन्या नहीं हो !'

अचला का मन इस समय किसी भी बहस में पड़ना नहीं चाहता था। उसने टालने के विचार से कहा—'एक बार तो आप मुझे हरा ही चुके, अब हारे को बार-बार हराने से क्या लाभ ?'

रामचरण बाबू ने भी दुनिया देखी है, अनुभव किया है। अचला का व्यथित कण्ठ स्वर उनसे छिपा न रहा और तुरन्त ही उनकी अनुभव-शील बुद्धि ने समझ लिया कि अचला किसी गहरे दुख से अत्यन्त दुखी है। अचला के उतरे उदास चेहरे ने उनकी शंका को और भी पुष्ट कर दिया। चण भर सोचते रहने के बाद ओठों पर मुस्कान लाकर वे स्नेह-मय शब्दों में बोले—'बूढ़ों को तो खामखा के बकने में ही मजा आता है, सोचा चलूँ थोड़ी गप ही कर आऊँ बिटिया से।' कह उन्होंने हुक्का सँभाला।

अचला ने समझ लिया कि वे जा रहे हैं। नीचे अकेले पड़े-पड़े समय काटना इनके लिए कठिन हो जायगा। यह सोच वह स्वय हुक्का उठा लाई और उनके हाथ में देकर बोली—'आपको नीचे मैं न जाने दूँगी, यहीं बैठे-बैठे हुक्का पीते रहिए।'

रामचरण बाबू ने हुक्का हाथ में लेकर हँसते हुए कहा—'नहीं नहीं ! एकदम इतनी छूट मत दे बिटिया ! तुमने मेरा चुप बैठकर तम्बाकू पीना देखा नहीं है, तभी ऐसा कहती हो। चुप बैठने से तो यही अच्छा रहेगा कि कुछ बक-झक कर लेने दो।'

अचला—'चुपचाप बैठे रहने से तो दम घुटने लगेगा न ! अच्छा तो बात ही कीजिए, पर बात करेंगे आप किस विषय पर यह तो बताइए।'

रामचरण बाबू ने तम्बाकू का धुआँ मुँह से उगल कर कहा—'बड़ा विकट प्रश्न है ! किसी अभ्यस्त व्यक्ति से भी इस प्रश्न का उत्तर न देते बनेगा तो मैं भला क्या दूँगा।'

अचला—'अच्छा ताऊजी, यह बताइए कि अगर किसी दिन आपको पता चले कि आज आपने जिसके हाथ का खाना खाया है, वह महापतित है और उस दोष से छुटकारा पाने के लिए शास्त्र में प्रायश्चित्त आदि की भी कोई व्यवस्था नहीं तो फिर आप क्या करेंगे?'

रामचरण बाबू—'फिर तो सब खत्म ही समझो बेटी।'

अचला—'आपको उस समय मेरे प्रति कितनी घृणा होगी?'

रामचरण बाबू—'कब?'

अचला—'जब आप यह जानेंगे कि मेरी कोई जाति तक नहीं।'

रामचरण बाबू ने हुक्का पीना रोक कर अचला की तरफ एकटक देखते हुए कहा—'मैं समझ नहीं सका तुम्हारी बातों को। और तुम्हीं क्यों, खुद मेरा लड़का भी यही कहता है कि इस छुआछूत ने तो देश का नाश कर रक्खा है। इसकी जड़ में घृणा ही मुख्य कारण है और निश्चय ही घृणा से कोई लाभ नहीं।'

अचला को ध्यान भी न था कि ऐसे पवित्र घर में भी इस तरह की बातें हो सकती हैं। रामचरण बाबू के मुँह से ऐसी बात सुनकर वह अचरज में पड़ गई। उसने पूछा—'तो क्या यह सब मिथ्र हैं?'

रामचरण बाबू ने हँसकर उत्तर दिया—'मैं तो शास्त्रानुसार चलता हूँ। मगर मेरे गुरुदेव तो अपने सिवा अपनी लड़की तक के हाथ का बना नहीं खाते। क्या इससे यह समझना ठीक होगा कि वे अपनी लड़की से घृणा करते हैं?'

अचला चुप रही।

रामचरण बाबू हुक्का गुड़गुड़ाकर बोले—'बेटी, मैंने दुनिया देखी है। न जाने कहाँ-कहाँ घूमा-फिरा हूँ, जितनी तरह के आदमी देखे हैं तुमने उतने का नाम भी न सुना होगा। हर एक के अपने-अपने आचार-विचार हैं। कुछ तो खाने-पीने का परहेज मानते हैं और कुछ तो नाम तक भी नहीं जानते कि परहेज किसे कहते हैं। फिर भी वे असभ्य हैं। सभ्यता उनको छू तक नहीं गई।' कहकर हुक्का, जिसकी तम्बाकू जल चुकी थी,

उसके और भी कई कश लगाकर दीवाल के सहारे खड़ा कर दिया। अचला अपनी जगह पूर्ववत् बैठी रही।

रामचरण बाबू थोड़ी देर तक मौन रहकर बोले—'सुरमा बेटी, क्या तुमने कभी इसकी असलियत जानी? तुम लोगों ने साहबों से अपने संस्कार ग्रहण किये हैं, राज उनका है, वे समरथ हैं, अगर उनमें हाथ के बल चलने का रिवाज भी होता तो तुम लोग उसी को उन्नति का साधन मानकर अपनाने लगते।'

बङ्गला के दैनिक पत्रों में अचला ने इस तरह के तर्कों को पढ़ा तभी इस तर्क को सुनकर वह ज़रा हँस पड़ी। रामचरण बाबू ने उसे देखकर भी प्रकट में अनदेखा जता कर कहा—'श्रीधाम—श्रीक्षेत्र में छुआछूत नहीं मानी जाती। मैं वहाँ गया हूँ और अनेकों जाने-अनजाने लोगों से मेरा वास्ता भी पड़ा। भला सोचो अगर मैं सिर्फ इसी कारण उनसे घृणा करता तो क्या वहाँ काम कर सकता था? मैं हर किसी के हाथ का छुआ नहीं खाता, इसके यह मानी हर्गिज़ नहीं कि मैं दीन-दुखियों से घृणा करता हूँ।'

अचला—'क्या मैं यह नहीं जानती कि आप दयावान हैं?'

रामचरण बाबू—'नहीं-नहीं बेटी, दयावान नहीं! मुझे उनसे प्रेम है! मगर वास्तविकता तो यह है कि चाहे कोई आदमी चाहे जिस जाति का ही क्यों न हो, जब वही दीन हो जाता है तो जो सबसे गई गुजरी चीज होती है उस पर वह सारा दोष डालकर अपने हृदय को सन्तोष देता है। और मैं भी इस भावना से अछूता नहीं हूँ। लेकिन इस भावना के जड़ से जो मूल है···।'

बात पूरी न हो पाई थी कि जीने पर जूते की आहट पा रामचरण बाबू ने देखा कि सुरेश आ रहा है। बोले—'सुरेश बाबू! आप तो हिन्दू हैं, जाति-भेद को तो मानते होंगे?'

जिस परिस्थिति से होकर सुरेश और अचला का जीवन व्यतीत हो रहा था, उसके कारण सुरेश का मन बड़ा शक्की हो गया था।

रामचरण बाबू के प्रश्न ने भी उसे असमञ्जस में डाल दिया। वह इस परिस्थिति में कदम खूब सोच-समझकर रखना चाहता था। हर काम आगा-पीछा सोचकर ही करना चाहता था क्योंकि वहाँ हर समय खतरा था। उसे हर समय की सच्चाई की खूब परख करनी पड़ती थी। तभी कुछ भी उत्तर न दे पास पहुँच उसने परिस्थिति जानने के लिए अचला और रामचरण बाबू के चेहरे को खूब गौर से देखा। पर कुछ समझ न सकने के कारण हँसकर बोला—'हम लोगों के सम्बन्ध में तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं रामचरण बाबू!'

रामचरण बाबू—'हाँ, यह तो मैं भी समझता था कि अच्छी तरह जानता हूँ। पर आपकी गृहिणी उसे निर्मूल किये दे रही हैं। उनकी राय में जाति-भेद ही सारे दुख-दैन्य और देश की अवनति के कारण है। उनके पिताजी ने उन्हें म्लेच्छ के हाथ का खा लेने में कोई हानि नहीं है कि शिक्षा दी है। मैंने आज उनके हाथ का बनाया भोजन खाया है। इसी सम्बन्ध में बात चल रही थी कि उनका बनाया खा लेने में मेरी भी जाति का नाश हो गया है, अब क्या उसको बचाने का कोई भी उपाय है अथवा नहीं?'

सुरेश जानता था कि अचला का मन उद्विग्न रहता है और आज इस प्रसङ्ग में वह उद्विग्नता किस रूप में प्रकट हुई होगी, उसे नहीं मालूम था। पर उत्तर देना ही था, न देने से बात और भी बिगड़ती थी अतः अपने को सँभाल कर जबर्दस्ती हँसने की चेष्टा करते हुए बोला—हँसी ने उसके चेहरे को और भी विकृत कर दिया—'यों ही कह रही होंगी आप से!'

रामचरण बाबू ने सिर हिला कर अपना मत दिया और बोले—'मैं इस बात पर आगे बात तो न करता, पर चूँकि एक हिन्दू घर की लड़की ने पति के कल्याण के लिए तुलसी दिये जाने वाले दिन उपवास करने से इनकार कर दिया था तो ··· खैर छोड़ो इस बात को। अच्छा यह तो बताइए सुरेश बाबू, कि आपका विवाह तो हिन्दू रीति से ही हुआ होगा?'

सुरेश—'हाँ!'

रामचरण बाबू—'यह तो पहले ही से जानता था। बेटी, मैं तुमसे बहुत सी बातें कहना चाहता हूँ। तुम्हारे पिता ब्रह्मसमाजी हैं इसका मुझे दुःख नहीं, क्योंकि ऐसे बहुत से ब्रह्मसमाजी भी होते हैं जो समाज में बैठते समय तो उनकी सारी बातें स्वीकार कर लेते हैं, पर विवाह संस्कारादि के समय हिन्दू संस्कारों को नहीं छोड़ते। चलो मेरी एक चिन्ता तो मिटी।'

साथ ही सुरेश की छाती पर से भी एक चिन्ता का भारी बोझ हट गया और वह बोला—'अक्षरशः सत्य कह रहे हैं आप। आजकल ऐसे लोगों की कमी नहीं जो...।'

बीच में अचला ने जोर से अपनी बात शुरू कर सुरेश की बात को वहीं रोक दिया और बोली सुरेश की आँखों में आँखें गड़ाकर—'अपराध पर अपराध करने में तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती। मेरे ही मुँह पर ये सारी बातें कहने की तुम्हारी हिम्मत हो रही है! पिता जी झूठे नहीं सच्चे ब्रह्मसमाजी हैं, इसे तुम अच्छी तरह जानते हो।' कह वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

रामचरण बाबू भी यह सुनकर चकित हो अचला की तरफ आँख फाड़ देखने लगे और सुरेश भी चकरा गया। रामचरण बाबू की तरफ देख थोड़ी देर मौन रह कर बोला—'तुम्हीं सचमुच कहो, क्या तुम्हारे पिताजी हिन्दू घर में तुम्हारा ब्याह करने को राजी नहीं थे?'

अचला मौन रही थोड़ी देर तक, फिर स्वयं को संयत कर बोली—'मुझसे इसका उत्तर क्यों चाहते हो, तुम स्वयं इसका सबसे बड़ा कारण बैठे हो। तुम सब जानते हो कि क्या पिताजी हैं और क्या मैं हूँ? पर मैं नहीं चाहती कि तुमसे इस विषय पर बेकार में बहस करूँ। मुझे तुमसे बहस करने में भी लज्जा आती है। तुम्हारे जी में जो आवे इन्हें बताओ, पर मैं नहीं सुन सकती यह सब।' कह वहाँ से चली गई। और दोनों स्तब्ध मूर्तिवत् बैठे रहे।

रामचरण बाबू ने थोड़ी देर बाद अपने हुक्के की तरफ हाथ बढ़ा कर खाँस-खूँस कर गला ठीक कर कहा--'सुरेश बाबू, अब तबीअत कैसी रहती है आपकी ?'

सुरेश ने सोते से जाग कर कहा—'तबीअत अच्छी ही है। कल से छाती में थोड़ा-थोड़ा दर्द फिर बढ़ गया मालूम होता है।'

रामचरण बाबू—'दर्द होगा क्यों नहीं। इतनी रात गये तक जाड़े में आप घूमते रहते हैं। अभी आपके स्वास्थ्य के लिए यह ठीक है भला ?'

सुरेश—'यों ही घूमने नहीं गया था। उस मकान के लिए आज दो हजार रुपया पेशगी दे आया हूँ।'

रामचरण बाबू को विस्मय हुआ। थोड़ी देर रुक कर बोले—'मकान तो वह अच्छा है, पर मेरी मानते तो मैं तो मना ही करता। सुरमा को बातों ही बातों से उस दिन समझा था कि उसकी यहाँ तबीअत नहीं लगती है।' फिर जरा हँसते हुए बोले—'अपनी मर्जी से सब कुछ कर घर से आये हो या उनकी राय ले ली है ?'

सुरेश ने बात का सही उत्तर न देकर कहा—'ऐसा तो नहीं कि यहाँ तबीअत नहीं लगती। उस मकान के लिए घर-गृहस्थी का सामान मँगाने के लिए मैंने तो कलकत्ते आर्डर भी भेज दिया था। वह तो कल परसों तक आ भी जायगा।'

रामचरण बाबू थोड़ी देर तक तो चुपचाप बैठे अपने मन में न जाने क्या सोचते रहे। सहसा पुकार उठे—'सुरमा बेटी! बेटी सुरमा!'

अचला बोली तो नहीं पर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गई चुपचाप। रामचरण बाबू ने उसके चेहरे पर स्नेहपूरित दृष्टि जमाकर मधुर प्रेम भरे स्वर में कहा—'अब तो तुम हमें छोड़कर कभी नहीं जा सकती। तुम्हारे पति ने तो यहीं पर एक बड़ा-सा मकान भी खरीद लिया है।'

अचला ने कोई उत्तर न दिया।

रामचरण बाबू—'और मकान ही मकान नहीं; बहुत सा सामान और घोड़ागाड़ी भी आ रही है यह सब तुम्हारे लिए ही।' इतना कह

उन्होंने सुरेश पर नजर डाली और फिर अचला पर। यह खबर सुनकर अचला के मुर्झाये चेहरे पर प्रसन्नता की एक रेखा तक न उमड़ी। यह बात रामचरण बाबू की अनुभवी आँखों से रात के झिलमिल प्रकाश में भी न छिपी रह सकी। फिर भी बोले—'इसमें तुम्हारी क्या राय है बेटी?'

अचला—'ताऊजी, ऐसी तो कुछ जरूरत नहीं मेरी राय की।'

रामचरण बाबू—'वाह! यह भी कोई बात रही। सभी तो तुम्हारे ही लिए हो रहा है और उसमें तुम्हारी राय ही तो···।'

अचला सहसा उठ खड़ी हुई और बोली—'मेरी राय से कुछ भी बनने-बिगड़ने का नहीं। आप नहीं समझ सकते इन सब बातों को और न मैं ही समझा सकती हूँ, और किसी काम के लिए मेरी आवश्यकता न हो तो मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।'

रामचरण बाबू और आगे कुछ भी न कह सके, वैसे कुछ कहने योग्य अब रहा भी न था; उसी समय नौकरानी तसले में जलते कोयले लेकर आई। जब तक रामचरण बाबू कुछ पूछें सुरेश ने कहा—'कहा था नौकर से आग लाने को तो वह इस पर हुक्म चला गया। आज फिर दर्द बढ़ रहा है। उसी के लिए···।'

आग किस लिए आई थी, अब समझने में कसर न रही, पर सेंकने के लिए एक दूसरे की भी जरूरत पड़ेगी। इसी विचार से रामचरण बाबू ने अचला की राय जानने के लिए उसकी तरफ देखा। पर वह यह कह कर कि—'जाती हूँ।' मुँह फेर कर अपने कमरे में चली गई और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

रामचरण बाबू भी कुर्सी से उठ खड़े हुए और नौकरानी के हाथ से आग का तसला लेकर बोले—'सुरेश बाबू, चलिए!'

सुरेश—'आप?'

रामचरण बाबू—'क्या बात हुई। मुझे ऐसे काम करने का जीवन में कई बार अवसर आया है!' कह हाथ पकड़ कर सुरेश को कमरे में खींच

ले गये और तसला जमीन पर रख उसके मुर्झाये चेहरे पर नजर जमाकर कोमल स्वर में बोले—'कोई बात जरूर हो गई है सुरेश बाबू वर्ना ऐसा हो नहीं सकता बताइए न ! क्या बात है। जरूरत पड़ी तो फिर···।' कहते-कहते आधी बात खतम कर ही चुप हो गये।

सुरेश के ओठ भी काँप कर बिना कुछ कहे ही रह गये और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

सुरेश एक कोच पर लेट गया और रामचरण बाबू पास ही कुर्सी पर बैठ उसकी छाती सेंक रहे थे तभी अचला दरवाजा खोल कर अन्दर आ गई। बिना किसी हिचकिचाहट या भूमिका के ही उसने कहा—'ताऊजी, रात काफी हो गई है जाकर सो रहिए।'

रामचरण बाबू—'आओ, तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था।' कहते उठकर खड़े हो गये और सुरेश की ओर देखकर बोले—'यह काम हमारे तुम्हारे करने का थोड़े ही है। बेकार में ही इतनी देर कर रहे थे।' फिर अचला की तरह कुर्सी कर बोले—'लो बैठो ! जिसका काम है उसी से होता है ठीक-ठीक, अब मैं तो जाकर आराम कर लूँ।' यह कह कर जँभाई लेते हुए हुक्का उठा कर बाहर से दरवाजा लगा—'कहीं नींद में हाथ नहीं जला यही बहुत समझो।' कहते हुए चले गये।

सुरेश चुप रहा, उसने बन्द आँखों पर जोड़े हुए हाथों को रखकर नमस्कार किया। अचला कुर्सी पर सेंकने के लिए कपड़ा गरम करती हुई बैठकर बोली—'कहाँ हो रहा है दर्द ? कैसे होने लगा फिर से ?'

सुरेश ने वैसे ही आँखें बन्द रख मौन रह छाती के बाईं तरफ संकेत कर दिया। अचला सेंकने लगी। कमरे में ऐसा घोर सन्नाटा छाया कि मालूम हुआ कि वह दूर न होगा। मगर ऐसा नहीं हुआ।

सुरेश ने एकाएक अचला के हाथ को अपनी छाती पर जोर से दबा

लिया। अचला उसके इस आचरण से उद्विग्न न हुई। मानो उसे इसकी आशा ही थी; उसने कहा—'छोड़ो और सेंक दूँ।'

सुरेश ने हाथ तो छोड़ दिया; पर तुरन्त ही झटके से उठकर बैठ गया और अचला को अपने बाहुपाश में जकड़कर छाती से कसकर चिपटा लिया और उसके कोमल शान्त मुख पर उसने मीठे चुम्बन की झड़ी-सी लगा दी। जैसे पहले यह प्रतीत हो रहा था कि इस नीरवता का अन्त नहीं, वैसे ही अब यह जान पड़ने लगा कि इस आवेग और उन्मत्तता का कहीं अन्त नहीं होगा, किसी दिन में, किसी क्षण में भी नहीं।

अचला ने भी उसकी उन्मत्तता का स्वागत किया। उसने सुरेश को एक बार भी रोकने की चेष्टा न की। उसने अपने को उसकी बाहों में सम्पूर्ण रूप से सौंप दिया। केवल उसका चेहरा रक्तहीन निर्जीव मूर्ति-सा हो उठा।

सुरेश मदहोश था। उसकी आँखें अन्धी हो रही थीं। नहीं तो वह भी अपनी इस निर्लज्जता का अनुभव करता। चुम्बनों के आवेग से स्वयं ही चूर होकर जब उसका जोश अपने आप ही अपने से ठण्डा हो गया तो उसके प्रकम्पित ओठ शिथिल पड़ गये और बाहों की कसन भी ढीली हो गई। तब अचला अपने रक्तहीन मुख को उसके शिथिल हाथों से धीरे से मुक्त कर अपनी जगह पर बैठ गई।

थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। फिर उसे भङ्ग करके सुरेश ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—'कब तक इस तरह हमारे दिन कटेंगे?' और अचला के चेहरे की तरफ उत्तर की प्रतीक्षा से उत्सुक दृष्टि से देखने लगा। फिर बोला—'मैं जानता हूँ कि तुम्हें कितनी गहरी व्यथा है, कितना तुमको कष्ट है, पर मेरी भी व्यथा को तो तुम समझो। मैं तो मर रहा हूँ।'

इस बात का कुछ भी उत्तर न दे अचला ने पूछा—'तुमने यहाँ कोई मकान लिया है क्या?'

सुरेश—'वह भी तुम्हारे लिए है अचला।'

अचला ने उसका भी कुछ उत्तर न दिया और पूछा—'साज़-सामान और घोड़ागाड़ी भी मँगाई है ?'

पर बाद में और अधिक पूछना उसने व्यर्थ समझा। उसे इसमें से किसी भी चीज की कामना नहीं थी और उन्हीं चीजों के सम्बन्ध में सुरेश से प्रश्न करना उसे स्वयं ही अपने से व्यङ्ग मालूम पड़ा। थोड़ी देर मौन रहकर बोली—'रामचरण बाबू को क्या तुमने मेरे पिताजी का नाम और ठिकाना बता दिया है ?'

सुरेश—'नहीं !'

अचला—'क्या अभी और सेंकने की आवश्यकता है ?'

सुरेश—'नहीं !'

अचला—'तो अब मैं चली। बड़ी नींद आ रही है।' यह कह अचला आग का तसला एक तरफ रख जाने लगी। वह कमरे से बाहर हो दरवाजा बन्द ही कर रही थी कि सहसा सुरेश ने उठकर बैठते हुए कहा—'अचला, एक बात और बताती जाओ। क्या तुम सचमुच यहाँ से कहीं और जाना चाहती हो ?'

अचला—'कहाँ ?'

सुरेश—'दूर, कहीं बहुत दूर। जहाँ हम दोनों को न कोई जानता हो न पहचानता हो !'

सुरेश का स्वर काँप रहा था। अचला ने साफ ही उसे अनुभव किया और बोली—'यहाँ भी तो हमें कोई नहीं जानता-पहचानता।'

सुरेश ने सहारा पाकर बात आगे चलाई—'पर कहीं बाद में...।'

अचला ने बात काटकर कहा—'बाद में जान जायेंगे ! हो सकता है जान भी जायँ। लेकिन यही बात सभी जगह हो सकती है।'

सुरेश ने प्रसन्नता से कहा—'तो फिर यहीं जमने की तुम्हारी भी राय है। एक बार साफ-साफ अपने मुँह से कह दो, अचला।' तभी उसकी आँखों ने देखा, कानों ने सुना कि अचला तुरन्त ही दरवाजा बन्द कर बाहर चली गई।

कई रोज से आकाश पर बादल छाये हुए थे, जिनसे हर समय आँधी और मेह की आशङ्का बनी रहती थी।

नये घर के लिए प्रायः सारा सामान आ चुका था, पर उसी प्रकार अस्त-व्यस्त पड़ा रहा। किसी ने भी उसको ठीक सजाकर रखने की ओर ध्यान ही नहीं दिया। घोड़ागाड़ी और घोड़े भी आ गये थे पर उनको भी कोचवान के जिम्मे ही छोड़ रखा गया। इस प्रकार अस्त-व्यस्त जीवन के दिन किसी प्रकार बीत रहे थे। एक दिन दोपहर के समय रामचरण बाबू अपना हुक्का गुड़गुड़ाते हुए आ पहुँचे। उनके हाथ में एक नीले रङ्ग के कागज पर लिखी चिट्ठी भी थी। अचला छज्जे पर बेंत के एक कोच पर बैठी अखबार के पन्ने पलट रही थी, रामचरण बाबू को आया देख उठकर सीधी बैठ गई। उन्होंने हाथ की चिट्ठी उसकी तरफ बढ़ाकर कहा—'राक्षसी का पत्र आया है। इतने दिनों से तुम्हें पत्र न लिख सकने के लिए उसने मेरे पत्र में तुमसे क्षमा माँगकर प्रणाम लिखा है। उसे क्षमा कर देना।' और कुर्सी पर बैठ नदी के बहाव की ओर दृष्टि डाल हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

अचला ने पत्र को दो बार पूरा पढ़ा और फिर उनकी तरफ देखकर बोली—'तो परसों ही आ रहे हैं सब लोग। पर ताऊजी, ये बुआजी, उनकी राज पुत्र-वधू, राजपुत्र, गारजियन ट्यूटर कौन-कौन हैं?'

रामचरण बाबू ने हँसते हुए कहा—'बेटी, उसे तो हर बात में हँसी ही सूझती है। इसमें जिनको उसने बुआजी लिखा है, वे तो मेरी विधवा बहिन हैं और राजपुत्र-वधू उनकी लड़की है जिसकी भण्डारपुर के भवानी चौधरी से शादी हुई है। उनका राज-सी ठाट-बाट ही है इसी लिए ये शब्द उसने बना बनाकर लिखे हैं। राजपुत्र है उनका लड़का यही दस साल का होगा। गारजियन ट्यूटर किसको लिखा है सो मैं भी ठीक तरह से नहीं जानता। पर हाँ, कोई लड़के की देख-भाल करने के लिए पढ़ा-लिखा समझदार नौकर होगा जो हरदम साथ रहता होगा। अच्छा है, आयें रहें, खायें पीएँ। मगर चिन्ता केवल इतनी है कि उन सबके लिए

हमारा मकान छोटा होगा और फिर उन सबके राज-सी ठाट-बाट होंगे, नौकर-चाकर होंगे और हमारा मकान उस योग्य होगा नहीं; तभी सोचा कि तुम्हारे ही मकान में ···।'

अचला—'पर ताऊजी, अब यहाँ भी सब ठीक करने का समय कहाँ है ? और फिर यहाँ रहने में लोगों को सुविधा होगी या नहीं ?'

रामचरण बाबू—'समय तो अभी है। अभी सब ठीक करना शुरू कर दिया जाय तो समय से ही सब प्रबन्ध हो जायगा और रही सुविधा की बात, तो जहाँ रहने का प्रबन्ध हो जाय, वहीं सुविधा हो जायगी। तुम्हारी अपनी गाड़ी भी तैयार होकर आ रही होगी और सुरेश बाबू ने जैसे सुना वैसे ही किराये की गाड़ी लेकर चल दिये हैं। तुम्हारी गृहस्थी का प्रबन्ध तो हमारे सबके बस का नहीं बिटिया, अगर जल्दी से तैयार हो सको तो फिर मैं भी जाकर जूता बदल कन्धे पर दुपट्टा डाल आ जाऊँ।'

अचला थोड़ी देर चुप सोचती रही, फिर प्रकट में बोली—'अच्छी बात है। मैं अभी कपड़े बदलकर तैयार हुई, जाती हूँ।' कहकर चली गई।

अचला को रामचरण बाबू का मन्तव्य समझने में कोई कसर न रह गई थी, कि उनके राजपुत्र और राजपुत्र-वधू को ठहरने के लिए उनको यह मकान खाली कर कहीं अन्यत्र जाना होगा बात तो वैसे समझने को आसान थी, पर उसके सारे हृदय को मसोसकर रख दिया।

लोगों के लाख कहने पर भी यह अब तक कभी घर से बाहर नहीं निकली थी। आज जब वह अपनी नित्य की पोशाक बदल नई पोशाक में सजकर बाहर निकली तो उसको बाहर सब संसार अजीब-अजीब सा लगने लगा और यहाँ तक कि वह अपने को भी स्वयं कुछ अजीब सी लगने लगी। बाहर ही गाड़ी खड़ी थी। उसे मालकिन समझ कोचवान ने नमस्कार किया और गाड़ी का दरवाजा खोल दिया। वह बैठ गई और सामने की सीट पर रामचरण बाबू भी। बैठने के बाद अचला को गाड़ी का सब कुछ धन-वैभव से मढ़ा हुआ ही न लगा, बल्कि उसके हर अंग

से किसी का मूक प्रेम व्यक्त हो रहा था।

पत्थर की सड़क पर घोड़ों की टापों की ध्वनि के साथ गाड़ी आगे बढ़ी। अचला का ध्यान कहीं और ही था और सम्भवतः उसी दशा में ही सहसा रामचरण बाबू ने उससे पूछा जिससे वह उस ध्यान से जाग पड़ी। वे बोले—'बेटी! देखो तुम्हारा मकान दिखाई दे रहा है। सारे नौकर-चाकर सब सामान ठीक सजाकर रख रहे हैं, केवल तुम्हारा कमरा मैंने किसी को छूने नहीं दिया। मैंने सुरेश बाबू से पहले ही कह दिया था कि सारा घर चाहे जैसे सजवाइएगा, पर बिटिया के कमरे में अपनी मनमानी कर उसकी मेहनत मत बढ़ाइएगा।' रामचरण बाबू को आशा थी कि अचला प्रसन्न होगी और उसके उस प्रसन्न मुख की आभा देखने के लिए उन्होंने आँखें उठाईं पर वहाँ कुछ और ही बात देखकर आगे के शब्द मुँह में ही रह गये। अचला भी एकाएक उनके इस प्रकार रुक जाने के कारण को समझ गई तभी उसने नये मकान में पहुँचने तक अपने उदास मुर्झाये मुख को उनसे छिपा रखने के लिए ही बाहर की तरफ रक्खा।

गाड़ी की आवाज सुनकर सुरेश बाहर आया। नौकर-नौकरानी भी अपनी मालकिन के दर्शन के लिए इधर-उधर छिपकर खड़े हो गये। पर अचला का मुर्झाया चेहरा देखकर सभी के दिल बैठ से गये।

रामचरण बाबू और अचला गाड़ी से नीचे उतर आये। अचला की आँखें नीची थीं। एक बार उसने सुरेश की ओर देखा और धीरे-धीरे तीनों ही मकान के अन्दर चले गये। अचला के जीवन में आनन्द-रस की एक बूँद भी कहीं किसी को न दिखाई दी।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

एक ने तो सारे धन वैभव के उपकरण जमा कर किसी के आराम सुख के लिए त्याग किया और दूसरा उससे उदासीन रहा। यह बात काम की व्यस्तता के बीच सभी को अखरी। सुरेश और अचला की भी बीच में

आँखें मिलीं, बात भी जरूरत भर हुई। सारा दिन मकान को ठीक करने में चला गया। लौटते समय एक पहर रात बीत गई। तीनों गाड़ी में घर लौटने के लिए आकर बैठे। आकाश में बादल अब भी घुमड़ रहे थे। एकाएक सामने की बदली को हवा के एक जोर के झोंके ने साफ कर आसमान को स्वच्छ कर दिया। केवल दूर नदी के पार घुमड़ते भूरे रङ्ग के बादल कभी अपनी धूमिल छाया से पृथ्वी धूमिल कर देते थे और थोड़ी देर बाद उसके आगे बढ़ जाने से फिर आसमान स्वच्छ हो जाता था। इसकी शोभा का आनन्द लेने के लिए रामचरण बाबू गाड़ी की खिड़की से बाहर की ओर देख रहे थे। पर जिनकी आयु इन आनन्द उपकरणों से आनन्द उठाने की थी वे ही दोनों कोनों में दबे सिर नीचा किये बैठे थे।

अचला के उद्विग्न मानस पट पर बहुत पुरानी स्मृति का एक चित्र साकार हो उठा—जब वह और सुरेश इसी तरह की एक गाड़ी में कलकत्ते की सड़कों पर घूम रहे थे। जब उसका मन महिम की तरफ से भावी जीवन में आनन्द, धन-वैभव के चौंध से फिर चुका था, उस समय उसे अपने को सुरेश के हाथों में सौंप देने में हिचकिचाहट नहीं हुई थी। पर आज उस स्मृति के ताजा होने का क्या कारण था? उसने तो प्रयास कर उसे ताजा किया नहीं! अनायास ही वह ताजी हो उठी। इस विचार से उसका सारा चेहरा लज्जा से आरक्त हो उठा और सारा शरीर सिहर गया।

यह सारा साज-सामान, धन-वैभव, घोड़ा-गाड़ी, आराम के उपकरण, सभी यही जानते हैं कि उसके पति के उसके लिए प्रेमोपहार हैं। लज्जा! लज्जा!! घोर लज्जा है उसके लिए!!! एक दिन सब यह भी जानेंगे कि सुरेश उसका पति न था, तब कहाँ वह अपने लज्जित मुँह को छिपायेगी।

वह सब जानती थी कि यह सारा साज-सामान, यह सारा प्रेम उसी के लिए है। इन सब पर उसका अधिकार भी है।

अचला का हृदय भावों की दो धाराओं का क्षेत्र बन गया। सारे

साज-सामान के लिए सच्चे प्रेम का प्रतिदान और उससे विपरीत लज्जा क्षोभ। दोनों का पलड़ा बराबर ही रहा। पर घर पहुँचकर रामचरण बाबू के पूजादि के लिए चले जाने पर थकान के मारे अपने कमरे में पड़ रहने पर सम्पूर्ण रूप से लज्जा, अपमान, क्षोभ से उसका हृदय अभिभूत हो उठा। पिता, पति, सगे सम्बन्धी सबकी प्रताड़नाजनित लज्जा धिक्कार ने एक बारगी उसके कोमल तन्तुओं को झकझोर डाला और केवल एक ही विचार उसे कचोटने लगा कि जब इस सारी लज्जा और बेहयाई का भण्डा फूटेगा, तब वह अपने इस कलङ्कित मुँह को लेकर कहाँ जायेगी?

पर उसका सारा जीवन वैभव-विलास, सुख और ऐश्वर्य से पला था। त्याग, विरक्ति और कठिन जीवन की शिक्षा उसके घर में तो क्या किसी को भी न मिली थी। उसको कभी परलोक के लिए इहलोक में कठिन नियम से जीवन-यापन की शिक्षा भी न मिली थी। इसी कारण वह आज के इस धन-वैभव और विलास के साज-सामान से उसका हृदय पूर्णरूप से विरक्त हो गया सो भी बात नहीं। उसके सारे संस्कार इन समस्त वस्तुओं को जीवन के लिए जरूरी उपकरण मानते, पर फिर भी उसका सारा मन क्षोभ, ग्लानि, लज्जा से अभिभूत हो जाता। उसके हृदय में इस वैभव और भोग-विलास को त्यागने और अपनाने में भयङ्कर द्वन्द्व चलता रहा।

मनुष्य हर दुख के समय में सुख की खोज करता है और अँधेरे में उजाले की। उसी तरह उसके मन ने भी, सब कुछ भाग्य में बदा था और हो सकता है यही जीवन का सत्य हो और सुरेश ही उसका सही पति और भविष्य में भी हो सकता है। सोच कर दुख से मुक्ति पाने का रास्ता ढूँढ़ा।

उसके संस्कार में विधवा-विवाह दोष नहीं है। उसका मन हिन्दू विधवा की तरह सांसारिक पति को ही जन्म-जन्म का पति मानकर उसकी भक्ति में ही जीवन बिताने के संस्कारों से सर्वथा मुक्त था। एक पति को जीवित रहते दूसरा पति चुन लेने के अपराध और लज्जा से भले ही

उसका अन्तर विदीर्ण हो गया हो और व्यथा की अग्नि से जल रहा हो, पर परलोक, इहलोक और धर्म के बन्धनों के सामने उसके आत्मसमर्पण नहीं किया।

रामचरण बाबू ने बन्द दरवाजे को बाहर से खटखटाकर आवाज देकर पूछा—'बिटिया, बिना खाये-पीये ही सो जाओगी। थकान से तबीअत तो नहीं खराब हो गई?'

अचला विचार-जगत् से सहसा नीचे लुढ़क पड़ी और उसे अर्ध चेतनावस्था में रामचरण बाबू की आवाज ठीक अपने पिता की—उसके इसी तरह बिना खाये सो जाने पर नाराज होकर बुलाने-सी जान पड़ी और उसकी आँखों में आँसू आ गये। जल्दी से उन्हें पोंछ गला साफकर दरवाजा खोल उनके सामने जा खड़ी हुई।

रामचरण बाबू ने इन लोगों से इतना घनिष्ठ होते हुए भी कुछ बातों में अपने को दूर ही रखा था, पर आज उस मकान में उनका अन्तिम दिन था। तभी वह दूरी भी अप्रयास ही दूर हो गई और स्नेह से अपना एक हाथ अचला के कन्धे पर रख दूसरे हाथ से उसकी ठुड्डी को ऊँचा उठा हँसते हुए बोले—'वाह बिटिया, चलते-चलते शरारत सूझी है अपने ताऊ से। तुझे कुछ भी नहीं हुआ है। चल!' और हाथ पकड़ कर बाहर बरामदे में खींचकर कुर्सी पर बैठा दिया।

वहीं दूसरी कुर्सी पर सुरेश भी बैठा था। उसने सुरेश की तरफ आँख उठा कर देखा, पर दूसरे ही क्षण उसकी आँखें अपने आप झुक गईं। इस समय दिन भर जो काम किया गया है, उसी के बारे में बात-चीत करने के विचार से वह बैठा था। रामचरण बाबू ने अचला को कुर्सी पर बैठाकर जरा हँसते हुए कहा—'सुरेश बाबू आपकी पत्नी तो किसी साहब की कन्या हैं। दिन मुहूर्त का विचार ही नहीं करतीं। भाई आप इसे मानें या न मानें, पर मेरे तो यह संस्कार बन गये हैं जो छूटते नहीं। शुभ घड़ी कल डेढ़ पहर दिन के भीतर ही है।'

सुरेश समझ न सका, बोला—'काहे की शुभ घड़ी बता रहे हैं आप ?'

रामचरण बाबू ने उनकी बात पर ध्यान न देकर कहा—'इसके बाद फिर एक सप्ताह तक कोई शुभ घड़ी नहीं है। तभी···।'

अब सुरेश के न समझने योग्य कुछ भी न रहा था। उसने अचला के चेहरे पर एक दृष्टि डाली तो उसे अपने ही पर नजर गड़ाये पाया।

अचला ने मधुर स्वर में कहा—'हम लोग कल सवेरे भी नये मकान में आ सकते हैं।'

सुरेश से एकाएक कुछ भी उत्तर देते न बना। थोड़ी देर में अपने को संयत कर केवल इतना कह पाया—'नया मकान तो अभी पूरी तरह रहने योग्य नहीं हुआ। दीवार कच्ची है, मकान में सीलन है। इस दशा में वहाँ जाकर अचला की कहीं तबीअत न खराब···।'

पर सुरेश की बात बीच में काटकर हँसते हुए अचला ने कहा—'उनकी चिन्ता मत करो। जिन दिनों में कुत्ते और गीदड़ भी अपनी जगह पर ही रहना पसन्द करते हैं उन दिनों में तुम मुझे इस जगह पर निराश्रय स्थान में ले आये फिर कच्ची दीवालों की सीलन से मेरे लिए सोच करने की आवश्यकता नहीं। मुझे उस दिन मौत न आ सकी तो आज भी मर न जाऊँगी।' फिर रामचरण बाबू की तरफ उन्मुख हो बोली—'ताऊ जी, हम कल सवेरे ही उस मकान में जायँगे आप कोई चिन्ता न करें। आपके कृपा-भार से हम जीवन भर मुक्त नहीं हो सकते।' कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वहाँ से उठकर उसने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

रामचरण बाबू शान्त बैठे रहे। उन्होंने सुरेश के झुके मुर्झाये चेहरे पर एक दृष्टि डाली और एक बार उस बन्द किवाड़ पर, और उनकी व्यग्र आँखें बार-बार विफल मूक प्रश्न करने लगीं। आखिर यह सब है क्या ? पर उत्तर कौन दे ?

सैंतीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे से ही आकाश पर बादल छाये हुए थे, जिसकी छाया में सारे वातावरण पर घोर उदासी व्याप्त थी। घोड़ागाड़ी दरवाजे पर आकर खड़ी थी। उस पर सारा सामान, बिस्तर, बक्स आदि लादे जा रहे थे। शुभ घड़ी में अचला भी नीचे उतरी और रामचरण बाबू के चरण स्पर्श कर गाड़ी में बैठने को हुई।

रामचरण बाबू ने चरण स्पर्श करते समय अपने विदाई से दुखित हृदयभार से उदास मुख पर कठिनाई से मुस्कुराहट लाकर कहा—'तुम मील डेढ़ मील की दूरी पर रहने मात्र से ही अपने बूढ़े बाप की सेवा-भार से मुक्त हो जाओगी ऐसा मत समझ लेना बेटी।'

अचला ने आँसुओं से पूरित आँखों को ऊपर उठाकर कहा—'नहीं ताऊ जी, मैं स्वयं भी तो ऐसा नहीं चाहती।'

रामचरण बाबू की पलकें भी गीली हो गईं। सहसा उनका अन्तर विदाई की व्यथा से भर आया और एकाएक जिस अपरिचित लड़की के वे इतने नजदीक आ गये थे, वह उनसे दूर होती नजर आई। करुण स्वर में बोले—'मैं भी समझता हूँ बिटिया। तुम आज पति के घर जा रही हो। मुझे रोना नहीं, खुश होना चाहिए। पर बिदाई में रोना अनायास आ ही जाता है।' वह आँखें पोंछकर बोले—'यहाँ रहती थी रात दिन तङ्ग करता ही रहता था, वहाँ तो अब कर न सकूँगा। पर पीछा किसी तरह भी नहीं छोड़ने का।'

सुरेश भी पीछे खड़ा था। उसने भी रामचरण बाबू के चरण स्पर्श किये। रामचरण बाबू ने उससे भी कहा—'सुरेश बाबू, मेरे यहाँ तुम्हें मनोवांछित सुख मिल न सका, किन्तु मेरी यही कामना है और तुम्हारे लिए यही आशीर्वाद है कि नये घर में जाकर तुम्हारा जीवन सुखी हो।'

सुरेश से इसका उत्तर न देते बना। श्रद्धाभाव से उसने झुककर फिर एक बार उनके चरण स्पर्श किये और गाड़ी पर बैठ गया।

गाड़ी के जाते-जाते रामचरण बाबू ने फिर ऊँचे स्वर में आशीर्वाद दिया और कहा—'हो सकता है मैं भी शाम तक आ पहुँचूँ। इक्का तो बुलाया है' और एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर चुप हो गये।

सुरेश की गाड़ी चली गई। काफी देर चुप रह और मन में सोचने के बाद रामचरण बाबू ने एक शान्त की साँस ली और मन ही मन बोले—इन लोगों का एक तरह से जाना अच्छा ही रहा। एक मेहमानों के लिए इनके रहते जगह की कमी रहती थी पर सबसे अधिक चिन्ता की बात थी उनकी अपनी विधवा बहिन का कौतूहलपूर्ण स्वभाव। वे आते ही जब तक सुरेश और अचला के परिचय से पूरी तरह सन्तुष्ट न हो जातीं पीछा न छोड़तीं, चाहे उनसे भले ही और उलझनें न पैदा होतीं, पर अचला का मन और दुखी हो जाता। अचला के विषय में उनको विशेष जानकारी न थी, पर यह विश्वास हो चला था कि वह एक सुचरित्र एवं सुशील लड़की है। यह अपने किसी स्वार्थ के कारण झूठ बोलने जैसा नीच आचरण नहीं कर सकती। और निश्चय ही वह यह भी न छिपाती कि उसके पिता घोर ब्रह्मसमाजी हैं और यह स्वयं भी देवी-देवताओं पर आस्था नहीं रखती। इसी बात पर ऐसा घोर वितण्डा खड़ा होता कि सँभालना कठिन हो जाता।

रामचरण बाबू अचला को अपनी कन्या की ही भाँति प्यार करते थे। उनकी अपनी पहली सन्तान एक कन्या ही थी, जो यदि अब तक जीवित होती तो अचला की आयु के बराबर होती। उसकी मृत्यु के बाद से इलाज के लिए भटकते पाकर उनका कन्या-प्रेम के लिए विह्वल हृदय एकदम अचला के दुख से विकल हो उठा और वे उसे अपने घर लिवा लाये थे। और उन्हें वह अपनी सन्तान की भाँति ही जान पड़ी और तभी से उसके प्रति उनका प्रेम बढ़ता गया।

अचला के सदैव उदास और चिन्ता-ग्रस्त मुख को देखकर कभी उनके

मन में भी अचला के जीवन-रहस्य के प्रति कौतूहल होता, पर तुरन्त ही उनका पिता-प्रेम कौतूहल को शान्त कर देता—आखिर जो बात नहीं मालूम और जो आँखों के सामने नहीं है उसे जानकर मन को दुःखी करने से क्या लाभ। राक्षसी ने अवश्य उन्हें एक दिन संकेत किया था कि शायद इनके जीवन में कोई घरेलू झगड़ा है और सुरेश बाबू घर पर झगड़ा कर इनको साथ ले आये हैं। एक दिन अचला ने अपने को ब्रह्म-समाजी परिवार की कन्या बताया था। सुरेश के गले में रामचरण बाबू ने जनेऊ देख ही लिया था तुरन्त ही उनके कौतूहल को एक सन्तोषजनक आधार मिल गया। इन दोनों के घर से झगड़ा कर भाग आने की कहानी की सत्यता को मानने के लिए। तभी एक ब्रह्मसमाजी कन्या से विवाह करने के कारण ही घर वालों से झगड़ा हुआ।

रामचरण बाबू के संस्कार कट्टर हिन्दू के थे, पर निष्ठुर वे कभी नहीं हो सके। तभी सुरेश और अचला के प्रति उनकी सहृदयता उमड़ पड़ी थी, और उसने बढ़कर ममता का स्थान ग्रहण कर लिया। रह रह कर दोनों को जब अपने घर में उदास पाते, आपस में रूठ जाते देखते फिर भी एक दूसरे को प्रेम की अदृश्य डोर से एक दूसरे के पास खिंचा चला आता देखकर उनका मन भी प्रसन्नता की गुदगुदी से भर उठता। उन्होंने सोचा था अपने घर के प्रशस्त वातावरण में ये दोनों स्वतन्त्र-हृदय अधिक प्रसन्नता से जीवन बिता सकेंगे।

नहाने जाते समय राह में मन ही मन कहने लगे—सुरमा बेटी ने समझा कि मेहमानों की भीड़-भाड़ के कारण ही मैंने उसे यहाँ से इतनी जल्दी हटा दिया। तभी वह जाते समय कुछ खिन्नमना थी। पर नये घर में जाकर स्वच्छन्दता से पति के स्नेह-आश्रम में जब उसका मन खिल उठेगा तब उससे पूछूँगा कि मुझ बूढ़े पर चलते समय जो क्रोध था अब उसमें कितना अंश और शेष रह गया है।' और इस कल्पना से उनका मुख प्रसन्नता से खिल उठा, और उसमें उन्हें अपने विचार-स्वप्न साकार हो दीख पड़े—अचला, 'अभी आई' कहकर अन्दर गई है और

अन्दर से एक थाली में अनेक मिठाई सजाकर लाई और बोली—'ताऊजी, मेरे हाथ की मिठाई न खाई तो बात बिगड़ जायगी।'

जब वे नहा-धोकर पूजा कर लौटे तब तक पिछली रात में विदाई के क्षोभ से उनके हृदय का भारीपन हलका हो गया।

मेहमानों के कल सवेरे ही पहुँचने का तार आ गया। रामचरण बाबू सन्ध्या होते ही बूँदा-बाँदी के डर से इक्केवाले को जल्दी चलने को कह अचला के नये घर की ओर चल दिये। वहाँ पहुँचते ही बूँदा-बाँदी भी शुरू हो गई।

अचला घर के बाहर निकलकर स्वागत करती हुई बोली—'थोड़ी और देर से आते तो भीग न जाते ताऊजी। भला ऐसे मेह और पानी के समय क्या आवश्यकता पड़ी थी आने की?'

रामचरण बाबू ने अचला के चेहरे की उदासी में तनिक भी अन्तर न पाया और उनका मन दुखी हो उठा। उनकी सारी कल्पना एक क्षण में ही धूलधूसरित हो गई। फिर भी अपने को सँभाल, स्निग्ध हँसी हँस कर बोले—'न आता तो इस तरह विछोह का जीवन कैसे बितता। मेह-पानी तो सहन भी हो सकता है पर वह जीवन तो नहीं।'

रामचरण बाबू अचला के रहस्य को कभी न समझ सके थे। विशेष कर कल रात के उसके व्यवहार ने तो उन्हें चक्कर में ही डाल दिया था। पर आज के व्यवहार से तो वे बिलकुल खो से गये। वे सोच ही रहे थे कि अचला सहसा आवेग में दौड़कर उनकी छाती से लिपटकर फूट-फूटकर रो उठी और बोली—'मुझे इतना क्यों प्यार करते हैं ताऊजी कि मैं स्वयं ही लज्जा से गड़ जाती हूँ।'

रामचरण बाबू काफी देर उसे अपनी छाती से लगाये उसके माथे पर स्नेह से हाथ फेरते रहे और उनके सामने अचला की सारी घटनाएँ जो उनके करीब सच थीं साकार हो उठीं और वह उसी की समवेदना में गोते लगाते रहे। पर वास्तविकता क्या है इसका ज्ञान उनको न हो सका

और न जानने की आवश्यकता का ही सन्देह हुआ।

बहुत देर तक इसी तरह मूक-स्नेह आलिङ्गन में खड़े रहने के पश्चात् रामचरण बाबू बोले—'बेटी, दुखी मत हो! दुख और लज्जा की इसमें आखिर बात ही क्या है? ऐसे तो अनेक सती हैं जो पति के कारण माँ बाप की इच्छा के विरुद्ध उनके साथ चली गई हैं। लेकिन फिर सब मिले, सब एक हुए, उसी तरह निश्चय ही तुम्हारे सभी सम्बन्धी फिर मिलेंगे, सभी एक होंगे। घबराओ मत। मुझ बूढ़े की कामनाएँ व्यर्थ न जायँगी बेटी। तुम मेरी अपनी ही लड़की हो। सच कहता हूँ तुम मेरी गोद में केवल दो दिन खेलकर मुझे बिलखती छोड़कर चली गई थी। पर फिर मिल ही गई। मैं तो देखते ही तुम्हें पहचान गया था।' और अचला को उन्होंने पास की कुर्सी पर बैठा दिया।

और भी न जाने क्या-क्या रामचरण बाबू प्रेमावेश में कहते गये। अचला उनको सुन-सुन कर शर्म से गड़ी जा रही थी। बाहर जोर का पानी पड़ रहा था। उसी समय सुरेश पानी-कीचड़ से सना बाहर से आया। उसे आया देख अचला ने अपनी आँखें पोंछ लीं और व्यथा तथा आँसुओं से विकृत मुख को बरसते पानी से ही धोकर फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गई। वह कुछ कहना ही चाहता था कि रामचरण बाबू स्वयं ही बोल पड़े—'कुछ कहिएगा बाद में। मैं अभी बैठा हूँ। पहले जाकर ये भीगे कपड़े बदल डालिए।'

सुरेश ने हँसकर बात टालकर वहीं कुर्सी पर बैठना चाहा कि अचला ने कहा—'क्यों नहीं ताऊजी की बात मानकर कपड़े बदल डालते। अभी मुझे और कितनी सजा देने का इरादा है, एक महीने की बीमारी से उठकर अब तो बैठ पाये हो।' कह उनकी ओर देखने लगी। अचला की इस चितवन के आदेश को दोनों ने ही देखा। सुरेश चुपचाप कपड़े बदलने चला गया। रामचरण बाबू ने बाहर की तरफ टकटकी लगा ली। बाहर अब भी वर्षा हो रही थी; बल्कि रात की गहनता के साथ-साथ वर्षा भी

तेज होती जा रही थी। धरती प्यासी थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था, कि उसकी सारी प्यास बुझाने को विधाता ने आज ही ठान ली हो।

अचला ने रामचरण बाबू को निर्निमेष वर्षा की तरफ देर तक देखते हुए कहा—'ताऊजी, आज पानी तो बन्द होता नहीं, यदि आज रात को यहीं सो जायँ तो इसमें कोई एतराज तो नहीं है?'

रामचरण बाबू ने हँसकर उत्तर दिया—'हाँ, ऐसे आँधी पानी में तुम लोगों को इस तरह अकेला छोड़कर मैं नहीं जाता, पर कल सवेरे ही सब मेहमान आने वाले हैं, उन सब के लिए तो जाना ही होगा और आशा है घण्टे भर में पानी भी बन्द हो जायगा, तब तक और बैठा हूँ।'

और वार्ता के इसी सिलसिले में न जाने कहाँ-कहाँ की दीन-दुनिया, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य की बात छिड़ गई। और बातों ही बातों में कितना समय बीत गया इसका दोनों में से किसी को पता ही न चला। और उन्हें यह भी पता न चला कि वर्षा बन्द होने की जगह और भी तेज हो गई, अन्धकार बढ़ गया, बिजली की कड़क भयानक हो उठी।

रामचरण बाबू ने बिना किसी सङ्कोच के अपना सारा अनुभव, सारा ज्ञान-कोष अचला के सामने बातों-बातों में ही खोलकर रख दिया। और अचला के समस्त आन्तरिक वातावरण को अपने स्नेहमहाधुर्य से मधुर कर दिया। अचला भी उसकी बातों की मधुरता से विमुग्ध हो गई थी।

उसी समय पीछे से नौकर ने आकर दोनों को चौंका दिया, बोला—'बारह बज रहे हैं बहूजी, आपका खाना पहुँचा दूँ?'

अचला—'क्या बारह बज गये? और बाबूजी ···?'

नौकर—'वे भी अभी-अभी खाना खाकर सोने गये हैं।'

अचला को अब ध्यान आया कि सुरेश तब का गया अब तक लौटा नहीं। वहीं से थोड़ा उचककर देखा तो सुरेश के कमरे की रोशनी अभी तक जल रही थी। रामचरण बाबू भी व्यथित हो गये, बोले—'मैंने इतनी देर तक तुमको रोके रखा उन्होंने ठीक से खाया भी या नहीं यह भी तुम न देख सकी। जबर्दस्त अपराध हो गया मुझसे। अब जाओ

बेटी तुम...।'

अचला ने रामचरण बाबू की बातों का कोई उत्तर न देकर नौकर से पूछा—'कोचवान समय पर गाड़ी क्यों नहीं लाया?'

नौकर—'इस आँधी में हमें नये घोड़े जोत कर ले जाने की हिम्मत नहीं पड़ी।'

अचला—'वह नहीं तो कोई और गाड़ी क्यों नहीं लाया?'

नौकर ने उत्तर नहीं दिया, चुप रह गया। उसके मौन में गलती की स्वीकृति की भावना तो थी नहीं पर यह भावना अवश्य थी कि उससे ऐसा करने को तो कहा नहीं गया था।

रामचरण बाबू ने जल्दी से कहा—'अब कोई आवश्यकता भी नहीं। यहीं सो कर सुबह जल्दी ही उठकर चला जाऊँगा। रात को खाने की भी मुझे आदत नहीं। सोने में भी किसी प्रकार का कष्ट न होगा। अब तुम खा-पीकर जाकर सो रहो, रात काफी हो गई है।' और वही वाक्य कि 'बड़ा अपराध हो गया मुझसे' दुहरा कर अचला को उन्होंने खाने को भेज दिया; और जब पन्द्रह बीस मिनट बाद वह फिर ऊपर पहुँची तो बोले—'यहाँ बैठने की एक मिनट के लिए भी तुम्हारी आवश्यकता नहीं, जाकर सो रहो। मैं तो बैठक में ही किसी कोच पर आराम से सो जाऊँगा।'

अचला का हृदय रामचरण बाबू के कुछ देर स्नेहमय मधुरता से रसमय हो उठा था और बार-बार जाकर सो जाने के स्नेहाग्रह ने उसकी रागात्मक वृत्तियों को जगा दिया। वह आज तक अपने बारे में रामचरण बाबू को पूर्णरूप से धोखे में रखकर ही उसका इतना गहरा स्नेह और विश्वास प्राप्त कर सकी है। आज उस विश्वास और स्नेह ने उसकी प्रवृत्तियों को झकझोर कर जगा दिया था। न जाने क्यों अनायास ही उसका मन सुरेश के लिए कुछ अजीब-अजीब सी गुदगुदी, भय, बेचैनी अनुभव करने लगा और उसके पैर अप्रयास ही उसके कमरे की तरफ उठने को फड़कने लगे। उस समय उसकी याद ताजी हो उठी कि ऐसी

ही भयानक रात ने उसे अपने पति से अलग किया था और उसी तरह की यह भयानक आँधी, मेह की रात उसे उस अन्धकार की ओर घसीट कर ले जा रही है, जिससे उसने अपने को अब तक हर एक कोशिश से बचाये रक्खा था और अब तक सारी व्यथा सहते हुए, दुर्भाग्य के भीषण से भीषण क्षण देखने पर भी जिस गौरव और मर्यादा की उसने रक्षा की थी उससे कल ही वह वञ्चित हो जायगा और उसका अन्तर स्वयं ही ग्लानि से विदीर्ण हो जायगा और वह कल्पना भी न कर सकी कि अपना यह लज्जित मुख कल सुरेश को भी दिन के उजाले में कैसे दिखा सकेगी ? फिर भी उसके कदम बरबस सुरेश के बिस्तर की ओर अप्रयास आप ही बढ़ चले और उसके हृदय में उसके प्रति एक मीठी-छोटी गुदगुदी प्रतीत होने लगी। धीरे-धीरे सोचते सोचते ही उसकी अव्यक्त कामना ने मार्ग प्रशस्त कर उसका निदर्शन किया। मन की गुदगुदी ने उस पर चलने की प्रेरणा दी और कदम बरबस उस पर चल पड़े और वह बिना आगा-पीछा सोचने का अवसर पा सुरेश के कमरे में पहुँच गई।

बाहर का वातावरण इस समय मस्त गुदगुदी का अनुभव कर अल्हड़ उन्माद में मदान्ध हो झूम रहा था और सवेरे तक भीतर बाहर दोनों ही जगह की मस्ती में तनिक भी कमी न आई।

Girls have more passion than the boy
Here see Achla.

बस सवेरे अपने उन्माद-भार से स्वयं ही लजाई, अलसाई उषःवेला में रामचरण बाबू ने उठकर बाहर देखा तो सारा वातावरण शान्त हो चुका था, उन्माद की गुदगुदी का अन्त हो चुका था, वर्षा थम चुकी थी। वहीं बरामदे में ही अचला भी मस्त उन्मादवेश से निर्लिप्त हो लजाई अलसाई, अपने आप पर ही फटकारें मारती, अपनी ग्लानि से ही विदीर्ण एक मेज पर सिर टेके बैठी थी। उसके चेहरे में रक्त का नाम तक शेष न था। जैसे रात ही रात में सारा खून सूख गया हो, सारा जीवन-रस खिंच गया हो। और वह एक शुष्क मांस-पिण्ड मात्र रह गई हो। उसकी आँखों में ग्लानि की कालिमा छाई हुई थी और आँसुओं की अविरल

धार बह रही थी ! रामचरण बाबू ने उसे इस अवस्था में वहाँ बैठा देख विस्मयान्वित हो पूछा—'बेटी सुरमा ! इतना सवेरे ही क्यों उठ बैठी ?'

अचला ने एक बार उनकी ओर आँख उठा कर देखा और उसी तरह मेज पर सिर टेक कर अपने भाग्य पर आँसू बहाती रही।

रामचरण बाबू विस्मय से अभिभूत हो गये और विस्फारित नेत्रों से उसकी अजीब दशा निहारते रहे। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकल सका।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

केदार बाबू ने सवेरे ही सोकर उठकर जरा-सी गरम-गरम मुरडी के साथ चाय पी और सन्तोष की साँस ली। जब मृणाल उन बर्तनों को उठाने के लिए आई तो उससे बोले—'न जाने कौन सी संजीवनी शक्ति और आकर्षण है तुम्हारी इस मुरडी की चाय में, कि मुझे यहाँ आये धीरे-धीरे एक महीने के करीब होने आया, पर हिलने का नाम ही नहीं लेता।'

मृणाल ने केदार बाबू को अचला के नाते से ही बाबू जी कहना शुरू कर दिया था, बोली—'क्यों बाबू जी ! क्या मैं आपकी ठीक से सेवा नहीं कर सकती जो इस तरह जल्दी भागने की बात करते हैं ?'

केदार बाबू भी स्नेहार्द्र स्वर से बोले—'नहीं बेटी, नहीं ! हमें तुम्हारे मिट्टी के घर, तुम्हारे बनाये खाने और चाय को छोड़ कर स्वर्ग में स्थान मिले तो भी जाने की इच्छा न होगी। यहाँ से भागने की बात क्यों कहती हो। बेटी मृणाल जब कभी मैं उस छोटे से जङ्गल के किनारे जाकर बैठ जाता हूँ तो यही सोचता रहता हूँ कि जीवन के जो एक दो साल और बचे हैं उन्हें कलकत्ते के अपने सम्पूर्ण जीवन में मैंने जो कुछ भी गँवाया है उसे यहाँ रहकर पूरा कर परमपिता के सामने जाकर खड़ा होने लायक हो सकूँगा।'

मृणाल के लिए इन शब्दों की मूक व्यथा की गहराई समझने को

कुछ बाकी न रहा था। इन शब्दों मे कलकत्ते के चिरपरिचित भाई-बान्धव, पुश्तैनी मकान, मुहल्ला सब को सदैव के लिए जिस लज्जा और अपमान के कारण वे छोड़ कर इस गाँव के छोटे से मिट्टी के मकान में जीवन बिताने के लिए वे मजबूर हुए थे उसका ही संकेत था उनके उन वाक्यों में। मृणाल ने तभी उनका कुछ उत्तर न दिया और बर्तन उठाकर चुपचाप धीरे से बाहर चली गई।

मृणाल का पत्र पाकर केदार बाबू परिस्थिति न समझ कर व्यग्र हो मृणाल के इस गाँव में जल्दी से भाग आये थे। महिम से बीमारी के समय में मृणाल से उनका प्रथम परिचय सुरेश के घर पर ही हुआ था, पर यहाँ उसके और नजदीक आने का अवसर पा वे पूरी तरह उसके प्रेम-बन्धन में बँध गये। जब से आये तब से लौटकर वापस जा ही न सके।

वे आये तो थे महिम से मिलकर सारी परिस्थिति समझने-बूझने, पर महिम उनके आने का समाचार पाकर तुरन्त ही चला गया था। मृणाल ने भी उसे रोकने की जिद न की थी क्योंकि वह बचपन से उसके दृढ़ निश्चय को जानती थी। वह समझ गई थी कि महिम अचला से नहीं मिलना चाहता, तभी उसने जल्दी से सम्भवतः अचला को साथ लेकर दोनों में मेल कराने की गरज से आने वाले केदार बाबू की भेंट को अस्वीकार कर वह अन्यत्र चला गया।

यह रहस्य ज्यों का त्यों दबा का दबा ही रह गया और तब से दिन संशय और आशङ्का के बीच बुरी तरह बीत रहे थे। इतन आवश्यक समझ लिया था कि जो रहस्य अभी रहस्य बना हुआ है हो सकता है कभी वह प्रकट हो जाय पर उससे सान्त्वना किसी को न होगी। फूटे भाग्य, टूटे दिल फिर न मिलेंगे और जीवन के अन्धकार में अब प्रकाश न होगा।

सुरेश की बुआजी ने भी एक पत्र मृणाल को लिखा था, जिसमें उन्होंने सुरेश के एकाएक गुप्त हो जाने के सम्बन्ध में लिखकर अपनी विकलता प्रकट की थी। वह पत्र केदार बाबू के हाथ लग गया था।

महिम ने भी लिखा था कि वह एक जमींदार के लड़के को शिक्षा देने पर नियुक्त हो गया है। पर अचला के सम्बन्ध में उससे भी कुछ व्यक्त न होता था। दोनों ही पत्र बार-बार एक ही सन्देह की तरफ संकेत कर रहे थे, पर उसको सत्य रूप में प्रकट करने की क्या कल्पना करने का भी साहस उनमें न था।

अचला केदार बाबू की एक-मात्र सन्तान थी और उन्होंने बचपन से ही उसकी माँ की भाँति छाती से लगा कर अपना सारा स्नेह देकर पाल-पोस कर बड़ा किया था, तभी उसके लिए उनके दिल में रह-रह कर विकल हूक उठती रहती और वे धीरे-धीरे चिन्ता में घुलते जा रहे थे।

वे गाँव में रह कर भी सबसे अलग रहते थे, कभी किसी के घर न जाते, गाँव के ही बड़े-बूढ़े कभी-कभी उनसे बात करने के लिए उनके पास आ बैठते। जब कभी मृणाल उनसे कहती तो कहकर टाल देते—'बेटी, मेरे जैसे पापी को सब से दूर ही रहना चाहिए।'

मृणाल कहती—'आप नहीं जायँगे तो फिर वे भी आना बन्द कर देंगे।' और केदार बाबू उसका कोई उत्तर न दे वहाँ से चल पड़ते। किसानों के पास जा उनसे परिचय कर न जाने कहाँ-कहाँ की न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य की तमाम बातें करते रहते। और काफी दिन चढ़े घर लौटते। सवेरे यही उनका नित्य का कार्यक्रम रहता।

केदार बाबू कलकत्ते में ही पैदा हुए थे और उसी की आब-हवा वातावरण में पले और बड़े हुए थे, गाँव से तो उनका नाता कई पीढ़ियों पहले से खत्म हो चुका था और जब से उन्होंने अपना धर्म बदला तब से तो अपने सगे-सम्बन्धियों से भी उनका नाता रिश्ता टूट गया था। शहर में रहते-रहते गाँव के किसानों के प्रति उनकी धारणा बन गई थी कि वे तो निरे असभ्य पशु की तरह होते हैं। शहर के दर्शन तो उनके भाग्य में होते ही नहीं। पर समय ने ऐसा चक्कर दिया कि वे गाँव में आकर रहने लगे और ज्यों-ज्यों वे किसानों के जीवन का परिचय पाते त्यों-त्यों उनकी नजरों में वे ऊँचे उठते जाते और जो समाज अब तक उनकी नजरों में

एक मात्र सभ्य और उन्नत समाज था वह घृणित और नीचा होता गया। और अन्त में उससे उन्हें पूर्णतः घृणा हो उठी। उन्होंने देखा कि गाँव के ये अपढ़ किसान लिखना-पढ़ना न जानते हुए भी असभ्य और पशुवत् हृदयहीन नहीं हैं। हमारी प्रचीन सभ्यता के अंकुर आज भी उनके रक्त में विद्यमान हैं। वे हर धर्म के प्रति सहिष्णु होते हैं, उनके नज़दीक सब का जन्मदाता पालनकर्त्ता वही एक ईश्वर है, फिर उसके बन्दों से चाहे वे किसी भी वेष में क्यों न हों घृणा, द्वेष क्यों किया जाय। वही उनका ज्ञान है जो अपने आप में पूर्ण है और गौरव की वस्तु है।

उनका मन स्वयं ही अपनी पूर्व धारणाओं से लज्जित हो उठा और अब वे मानने लगे कि ये लोग किसी से भी छोटे नहीं हैं और सोच-सोच कर उनका मन विकल हो उठा कि क्यों हमने इनका संसर्ग छोड़ा? क्यों इनको हमने नीच असभ्य समझा?

इन्हीं विचारों में गोते खाते हुए जब वे घर लौटे तो करीब दस बज चुके थे। उनके आने पर मृणाल ने आकर कहा—'आज आप तालाब में नहाने मत जाइएगा। कल ही आप की तबीअत खराब थी। आपके नहाने के लिए मैंने पानी गरम कर दिया है।'

उसके मुँह की तरफ बाल-उत्सुकता से देख कर केदार बाबू बोले—'तो गरम करके रख ही दिया!'

मृणाल नहाने-धोने के बाद पूजा कर रही थी। उनके आने की आहट पा उठकर बाहर आ गई थी। उस समय उसकी भीगी केशराशि उन्मुक्त पीठ पर लहरा रही थी, शरीर पर वह पूजा के वस्त्र धारण किये थी और उसके चेहरे पर शान्तिमय गम्भीर स्निग्धता विराज रही थी। उसके निर्मल शरीर पर दृष्टि जमाकर केदार बाबू बोले—'बेटी, इतनी तकलीफ़ क्यों की? मुझे तो कलकत्ते में रहते-रहते नल के पानी में ही नहाने की आदत है। पर यहाँ तो तुम्हारे तालाब का पानी गँदला है तो क्या उसका भी स्नेह मुझे प्राप्त हुआ है। उसमें नहाकर मैं कभी बीमार नहीं पड़ूँगा। वहीं जाकर नहाऊँगा मैं तो बेटी!'

मृणाल—'कल ही तो तबीअत खराब थी, आज मैं तालाब में नहाने तुम्हें नहीं जाने दूँगी।' आप तब तक तेल लगाइए, मैं अभी पानी लेकर आई।' कह कर वह जाने को हुई तभी केदार बाबू बोल उठे—'वह तो ले आना पर एक बात बताओ मृणाल बेटी, कि इस जरा सी उम्र में ही पर-सेवा करने का भाव तुमने कहाँ से पाया?'

मृणाल शर्मा गई पर थोड़ा हँसकर उसने उत्तर दिया—'पर तुम तो अपने ही हो बाबू जी, कोई दूसरे नहीं।'

केदार बाबू—'मैं कोई दूसरा नहीं यह तो मैं भी जानता हूँ पर मेरी बात का उत्तर तो तुमको देना ही होगा।'

मृणाल ने उसी तरह मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'यह तो जन्म से ही हमको शिक्षा मिलती है। पर आपका पानी जो ठण्डा हो रहा है।'

केदार बाबू—'उसकी परवाह नहीं। मृणाल, मैं उस बात पर काफी समय से विचार कर रहा हूँ। मनुष्य तैरता है जब वह तैरना सीख जाता है पर जिसका जीवन ही पानी में शुरू होता है और वहीं समाप्त होता है उन्हें पैदा होते ही तैरना आ जाता है। कोई नहीं जानता कि कब सीखा उन्होंने तैरना। पर बेटी, बिना परिश्रम फल नहीं मिलता, भगवान् का नियम ही कुछ ऐसा है। सीखने की मेहनत तो उन्हें किसी न किसी रूप में करनी ही होती है और जिस समाज रूपी तालाब में जन्म कर पर-सेवा का गुण पाया है मैं उसी समाज रूपी तालाब की बात सोच रहा हूँ इधर कई दिनों से।'

मृणाल—'पर उधर पानी ठण्डा हुआ जा रहा है।'

केदार बाबू—'परवाह नहीं! पानी ठण्डा हो जायगा तो तालाब तो कहीं नहीं भाग जायगा। छोटे बच्चे की ही तरह तुम्हारा यह बूढ़ा बेटा भी जाने तुमसे क्या-क्या सीखे ले रहा है चुपके ही चुपके, वह तुम्हें सब नहीं मालूम। हालाँकि अभी तक मेरे हृदय में देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न हो पाई है, पर जब तुमको पूजा के वेश में पूजा करते जाते

देखता हूँ तो मन कर उठता है कि मैं भी जनेऊ धारण कर पूजा करने बैठ जाऊँ।'

मृणाल—'पर ये तुम्हारे धर्म के आधार नहीं। क्यों, दूसरों के नियम का पालन करोगे तुम बाबू जी ?'

केदार बाबू—'एक प्रश्न ही इसका है। अब इस बुढ़ापे में अपने धर्म को छोड़ने की सामर्थ्य भी नहीं है मुझमें। अब तो यही जीवन के अन्त तक साथ रहेगा। पर जब मेरी दृष्टि तुम पर पड़ती है—और देखता हूँ कि तुम्हारा इतनी जरा सी ही उम्र ने इतना बड़ा आत्म-त्याग और विशाल हृदय तुम्हारा, कि मृत पति के प्रति अब भी एकनिष्ठ पूजा उनकी माँ को ही माँ समझ उनकी सेवा टहल करना—खैर छोड़ो इन सब बातों को। मैं तो कहूँगा ही कि जिस समाज में मैंने जन्म से लेकर इस बुढ़ापे तक की लम्बी जिन्दगी काटी है अब उस पर मेरी श्रद्धा नहीं रही मृणाल !'

मृणाल—'पर बाबू जी यों तो हर एक में आपको नजदीक से देखने पर कुछ न कुछ गुण-दोष मिलेंगे ही। हमारे समाज में भी जिसे आज आप अच्छा समझते हैं उनसे बुराइयाँ हो सकती हैं और तब आप देखेंगे कि हम लोग भी अपने व्यक्तिगत जीवन के दोषों को समाज पर डालकर उसकी बुराई करने में नहीं चूकते ···।'

केदार बाबू—'हो सकता है बुराइयाँ हों। हमें उनसे काम नहीं। हम तो तुम्हें देखते हैं। तुम जैसा हमारे समाज में ढूँढ़े भी एक न मिलेगा।'

मृणाल शरमा गई, बोली—'बाबूजी, मेरी इस तरफ बड़ाई व्यर्थ में करके मुझे बार बार क्यों शर्मिन्दा कर रहे हैं। अगर आप नहीं मानेंगे तो ऐसी माँगूँगी कि आपके ढूँढ़े भी न मिलने की, हाँ !'

केदार बाबू ने इसका कोई उत्तर न दिया। उसके चेहरे को देखते रहने के बाद बोले—'नहीं बेटी नहीं ! मैं तुम्हे ऐसा कभी नहीं करने दे सकता। बेटी, तुम ही तो मेरी आँखों का तारा हो। मेरी माँ समान हो

जिसका ही एक मात्र मुझे सहारा है। मुझ बेकार बूढ़े के भार से मुक्ति पाने में और अधिक दिन नहीं। पर मैं उसे आँखों से न देख सकूँगा'— कहते-कहते गला रुँध गया और वाक्य वहीं का वहीं रह गया।

आँखों से आँसू पोंछकर बोले—'महिम इस तरह भागा-भागा क्यों फिर रहा है? एक बार उससे मिलकर साफ-साफ बातें करना चाहता था। शायद अब जीवित ही न हो?'

मृणाल उद्विग्न हो बोली—'नहीं-नहीं। ऐसा नहीं कहते बाबू जी! इसमें डरने की क्या बात है?'

'डर!' केदार बाबू ने दीर्घ निःश्वास छोड़ कहा—'बाप के लिए सबसे बड़ा डर अपनी सन्तान की मृत्यु ही नहीं है बेटी!'

उनतालीसवाँ परिच्छेद

केदार बाबू की दुर्गति आज उससे भी बढ़कर हो रही थी जितनी अचला के मर जाने पर होती। मृणाल इस बात को समझ रही थी तभी वहाँ से धीरे से उन्हें अकेला छोड़ चली गई। उसका चला जाना भी उनके हृदय पर एक वेदना पैदा कर गया और वे काफी समय तक चिन्ता में डूबे अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते अकेले उदास बैठे रहे। अन्त में एक दीर्घ निःश्वास छोड़ तेल की कटोरी उठा कर बैठ गये।

वैसे तो सवेरे से आसमान पर बादल न थे पर दोपहर होते-होते बादल हो आये थे। केदार बाबू उस समय पश्चिम तरफ की खिड़की खोल बिस्तर पर पड़े हुए बाहर की तरफ देख रहे थे। उनकी नजर के सामने एक अमरूद का वृक्ष था जिसके फलों पर मधुमक्खियाँ उनका रसपान करती हुई भिनभिना रही थीं। उसके पास ही गाय घास चर रही। गाय को मृणाल अपने हाथ से चारा खिलाती थी तभी उसका सौष्ठव दर्शनीय बना हुआ था और दूर गाँव की पगडण्डी स्पष्ट दीख रही थी।

मृणाल—'बाबू जी, आपके लिए चाय ले आऊँ?'

केदार बाबू—'अभी से!'

मृणाल—'क्यों ? शाम तो होने आई।'

केदार बाबू ने अपने तकिये के नीचे से घड़ी निकाल कर देखते हुए कहा—'वाह ! अभी तो तीन भी नहीं बजे।'

मृणाल ने अपने कोमल स्निग्ध ओठों पर मुस्कराहट लाकर कहा—'न सही ! पर सवेरे से कुछ भी तो नहीं खाया आपने।'

केदार बाबू समझ गये कि मृणाल की बात टाली नहीं जा सकती, बोले—'जैसी तुम्हारी मर्जी।'

मृणाल जरा देर बैठी रहकर बोली—'बाबूजी, आप कहते हैं कि आपको गरम-गरम चिउड़ा खाना बड़ा भाता है !'

केदार बाबू—'हाँ, भाता तो है।'

मृणाल तो गरम-गरम चिउड़ा भी लेती आऊँ न ! थोड़ा सा।'

केदार बाबू—'अच्छी बात है।'

मृणाल चली गई और उनकी आँखें एकान्त पर फिर उसी पूर्व जगह पर डट गईं। एकटक देखते हुए उनकी आँखों में से आँसू की गरम बूँदें टपकने लगीं जिन्हें तुरन्त पोंछ कर वे अपने को संयत रखने के लिए एमर्सन की एक किताब सामने खोलकर उसके पन्नों पर नजर डालने लगे।

पुस्तक में कौन सा वर्णित विषय है इस पर तो उनकी दृष्टि जैसी थी वैसी थी ही, पर वे इस दृष्टि की अद्भुतता तथा अमेयता पर मन ही मन आश्चर्य में डूब गये। सारा जीवन जब अनुभव की कसौटी पर कसने के बाद आप समाप्त प्रायः है तभी यह मालूम हुआ कि यह सारा अनुभव व्यर्थ है नये सिरे से सारी बातें फिर से जाननी आवश्यक है। और अब तक का सारा जीवन जैसे व्यर्थ ही गया हो ऐसा जान पड़ने लगा। उन्हें यह भी समझने में बाकी न रहा कि जो कभी कसर रही थी जीवन में वह इस एक महीने के यहाँ के आवास में ही पूरी होती नजर आ रही है।

मृणाल हाथ में चाय और गरम चिउड़ा लेकर आ रही थी। उसके पैरों की आहट से चौंककर केदार बाबू ने उसकी तरफ मुड़कर देखा और बोले—'मुझे अब खटक रहा है बिटिया कि सवेरे मैं काफी भूखा रह गया

था। लेकिन बेटी सुनो···।'

मृणाल—'आपकी बातें शुरू होने पर तो यह सब योंहीं रक्खा रक्खा ही ठण्डा हो जायगा।'

केदार बाबू ने बिना कुछ कहे-सुने चाय पीना शुरू कर दिया और समाप्त कर प्याला नीचे रख दिया और तब दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोले—'बेटी मृणाल, मैं परमात्मा से यही दुआ माँगता रहता हूँ कि तुम अगले जन्म में सचमुच में मेरी ही बेटी हो। मैं ने खूब सीखा है कैसे पाल-पोस कर बड़ा करना होता है तभी इच्छा है कि अगली जिन्दगी भर उस अनुभव को काम में लाऊँ।'

केदार बाबू का स्वर स्पन्दित हो उठा। मृणाल जानती थी कि इस तरह की भावुक बातों से केदार बाबू का चित्त ठिकाने नहीं रहता तभी ओठों पर हँसी ला चट से बोली—'हाँ, मैं भी आपके अनेक बच्चों में एक हो जाऊँगी तो ठीक ही रहेगा।'

पर केशर बाबू ने दृढ़ता से कहा—'बहुत से नहीं! बस तुम! मेरी एक मात्र सन्तान मेरे समस्त हृदय की अधिकारिणी। इस जन्म में तुमसे मैंने जो कुछ पाया है उस सारे अनुभव के आधार पर तुम्हें पाल-पोसकर सिखा कर तुम्हारे इस जन्म के भार से मुक्ति पाकर अगले जन्म में सुख से मर सकूँगा।'

मृणाल ने शर्माते हुए कहा—'बाबू जी, आप तो व्यर्थ में तारीफ कर शर्मिन्दा करते हैं। मुझे आता ही क्या है?'

केदार बाबू—'यही कि मैं स्वयं नहीं जानता था कि मेरा पेट पूरा नहीं भरा है पर तुम जानती थीं।'

मृणाल—'जिसके भी आँखें होंगी वही जानेगी इसे तो। यह भी कोई बड़ी बात है।'

केशर बाबू—'ऐसी आँखें ही तो सबको नहीं होतीं बेटी। फिर जरा रुक कर बोले—'भगवान् की माया कहाँ, कब, कैसे अपने आत्मीयजनों से भेंट करा देती है सो कभी किसी को नहीं मालूम रहता और जब अपने

को पा जाते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि न जाने कैसे इसके अभाव में जीवन कटा होगा इतने दिनों तक ?'

मृणाल—'यही तो भगवान की लीला है बाबूजी। नहीं तो क्या इस वीराने देश में आप मेरी खबर लेने आते।'

केदार बाबू—'बिना भगवान् की मर्जी के कुछ नहीं होता बेटी। अब उनकी मर्जी हो गई तो फिर कहीं कोई रुकावट न रही, अपने आप ही मेरे चरण मुझे यहाँ ले आये। रहते तो एक महीने ही हुआ है पर न जाने कितने दिनों युगों के जन्मों का परिचय मालूम होता है तुमसे।'

केदार बाबू जरा रुक गये। मृणाल भी तभी कुछ कहना चाहती थी पर उनके चेहरे की तरफ देखते ही सहसा रुक गई। उनके चेहरे से उसे ऐसा जान पड़ा मानो न जाने कितने वर्षों से उनकी अन्तर व्यथा की आग जल रही थी और अब बुझने के करीब है तभी अन्तिम निर्मल लौ में सारा अन्तर करुणा से ओत-प्रोत हो रहा है।

काफी देर तक दोनों के दोनों ही मौन रहे। अन्त में केदार बाबू ने ही मौन भाव तोड़कर कहा—'बेटी, बाहर वालों के समाज की मुझे चिन्ता नहीं। मैंने एक धर्म छोड़ दूसरा धर्म अपनाया है जिसके लिए मैं अपने शरीर से स्वयं उसके प्रति उत्तरदायी हूँ इसका मुझे खयाल रहा है अब तक, पर अब देखता हूँ कि न रख सकूँगा। अब बात स्पष्ट हो रही है कि···।'

मृणाल ने तभी आँखें उठाकर उनकी तरफ देखा, केदार बाबू ने भी देखा और बोले—'नहीं-नहीं, तुम्हारे डरने की कोई बात नहीं। पर यह तो वास्तव में अब मुझे बिलकुल स्पष्ट हो गया है कि बहसा-बहसी, वाद-विवाद, झगड़ों-टण्टों में सच्चे धर्म की प्राप्ति नहीं और चाहे जो भी मिल जाय।'

मृणाल—'मगर बाबूजी, धर्म को अच्छा समझकर मानने के लिए वाद-विवाद और झगड़ा-टण्टा करना ऐसा तो जरूरी नहीं ?'

केदार बाबू—'ठीक है। मुझे तो कभी जरूरत नहीं प्रतीत हुई। पर

किसी न किसी रूप में वह सामने आ जाता है। एक बार मनुष्य जिस चीज को त्याग देता है उसके प्रति उसके मन में अनेक धारणाएँ बन जाती हैं और वह उसे दिल में हेय मानने लगता है और कोशिश करने पर भी उसका वह भाव नहीं निकल पाता। तभी तो मैं आज बड़े पेंच में पड़ गया हूँ बेटी, पर तुमने जो चीज जन्म से पाई है उसी पर सम्पूर्ण श्रद्धा, विश्वास अर्पण कर जीवन बिता रही हो सम्पूर्ण सन्तोष के साथ। यही उसमें अन्तर है।'

मृणाल निरुत्तर रही। केदार बाबू ही आगे बोले—'आज तो जीवन के भूले दिन फिर याद आ रहे हैं। अनेकों बातें जो भूल चुका हूँ उनकी याद भी ताज़ी हो रही है। अब तक इनकी याद ने क्यों नहीं सताया सो नहीं जानता।'

मृणाल—'कैसी बातें याद आ रही हैं?'

केदार बाबू—'अपने ही जीवन की। बेटी, मैं एक साधारण आदमी रहा हूँ। बड़ा आदमी बनने की न कभी शक्ति रही और न बुद्धि ही और न हो ही सका। समाज में जो ऊँचे रहे हैं, मान्य रहे हैं हमेशा उनके ही उपदेश श्रद्धा भक्ति से आँखें नीची कर सिर चढ़ाता आया हूँ। वे सभी बातें मुझे याद रही हैं। हाँ बेटी, तुमने अभी कहा था न कि धर्म के मानने न मानने में यह झगड़ा-टण्टा कैसा? जो अच्छा लगे उसे मान लो। मैं भी यही मानता रहा हूँ। पर आज समझ रहा हूँ कि हिन्दू हमारे बारे में जो शिकायत करते रहे हैं वह योंहीं नहीं कि ईसाइयों से भी बढ़कर देश-विदेश में हमने हिन्दुत्व की नाक नीची की है। वास्तव में हमने विभीषण का ही कार्य किया है।'

मृणाल का मन भी व्यथित हो उठा पर उस पर केदार बाबू का ध्यान ही नहीं गया, अपने ध्यान में ही मस्त बोलते गये—'यदि एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति द्वेष नहीं तो क्यों भला अपने-अपने धर्म की वेदी पर खड़े होकर उस धर्म के आचार्य लोग समाज के आदर्श पुरुषों को कुनाम से याद करते हैं, राम को रमवा, हरी को हरिया, नारायण को नारायना।

और दूसरे धर्म को कोसते हुए चिल्लाते हैं कि अगर सही तरह मुक्ति पानी है तो हमारे धर्म को अपनाओ। बेटी, मैं आज समझ गया कि भले ही उनके उपदेश सुन कर उस समय धर्म के लिए भक्तिभाव उमड़ पड़ता हो, उसकी रक्षा के लिए खून भी उबाल खाने लगता हो, पर उनमें सच्चे मानव-धर्म का लेशमात्र भी नहीं होता था।'

मृणाल ने व्यग्र हो कहा—'पर मेरे लिए तो सभी पूज्य हैं। आप क्यों कह रहे हैं यह सब बातें?' और मृणाल ने नतमस्तक हो सब धर्मों के प्रति श्रद्धा से नमस्कार किया।

केदार बाबू इस रमणी का यह विशाल हृदय देखकर स्थिर दृष्टि से भक्ति के साथ उसकी ओर देखते रहे। तभी नौकरानी मृणाल को किसी काम से वहाँ से बुलाकर अन्दर ले गई, पर वे उसी तरह टकटकी बाँधे जिधर देख रहे थे उसी तरफ शून्य में देखते रहे।

मृणाल लौट कर वापस आ गई और उसने बताया कि सासजी ने किस काम से बुलाया था। सुनकर गहरी साँस खींचकर वे फिर बोले—'बेटी, क्या मैं जीवन भर इसी तरह दूसरों के दोषों की आलोचना भर ही करता रहूँगा?'

मृणाल—'बाबूजी, जरा उधर सरक जाओ तो मैं मसहरी का यह फटा कोना सी दूँ।' कह कर उसने बक्स में से सिलाई की छोटी सी डिबिया निकाल ली। केदार बाबू ने बिस्तर छोड़ कर कुर्सी पर आसन जमाया और सीने में लगी मृणाल की तरफ देखते रहे। मृणाल सीती रही। बैठे ही बैठे अपने आप केदार बाबू की आँखों से पानी बहने लगा और वे उसे बार-बार धोती से पोंछते जाते थे और पानी बहता जाता था।

सीने का काम खतम करने के बाद मृणाल ने सिलाई का सामान फिर जहाँ का तहाँ रख दिया और केदार बाबू के पास आकर पूछा—'रात को क्या खाइएगा?'

केदार बाबू ने सहसा तन्द्रा से चौंककर ओठों पर हँसी लाकर कहा—'वह चिन्ता तो अपने समय पर पूरी हो जायगी; पर जरा पहले तुम स्थिर

होकर मेरे पास बैठ जाओ। अब आज से मैं किसी की बुराई न करूँगा बेटी। पर तुम गुस्सा न होना मुझ पर। तुम गुस्सा हो इसलिए तो मैंने बात नहीं छेड़ी थी।'

मृणाल उनके करुणा भरे स्वर को सुनकर चौंक गई, बोली—'यह कहते क्या हैं आप? भला मैं कभी आपसे गुस्सा हो सकती हूँ?'

केदार बाबू ने दृढ़ता से कहा—'कभी नहीं! सो कभी नहीं! तुम तो मेरी माँ हो। भला इस अपने बेटे के दोषों पर नाराज क्यों होगी। पर अपने अन्तर के रक्त के बदले इतने दिन बाद मैंने जो अनुभव पाया है उसे ही स्पष्ट तुमसे कह देना चाहता था। मेरा उद्देश्य दूसरों की निन्दा नहीं था। मैंने आज अच्छी तरह समझ लिया है कि धर्म दलबन्दी से बाँधने की चीज नहीं। उस तरह उसे पाया भी नहीं जा सकता। उसे तो उसका होकर ही पाया जा सकता है। मनुष्य की असीम वेदना के समय ही उसकी छाती पर उसके दुख की मूर्ति साकार हो उठती है, तब तो मनुष्य को उसे पहचानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। पर मैं अपने बड़े से बड़े शत्रु के लिए भी इसकी बात नहीं सोच सकता।'

मृणाल नहीं चाहती थी कि यह प्रसङ्ग छिड़े पर केदार बाबू के मुँह से ही उसके उस सङ्कोच का उद्‌घाटन होने पर वह कहीं छिप भी न सकी मौन बैठी सब सुनती रही।

केदार बाबू उसके इस भाव को न ताड़ सके और बोलते ही गये—तुम्हारे सिवा मेरा इस संसार में न कोई था और न कोई है। यह बात मैं बार बार कह चुकने पर भी बिना कहे नहीं रह सकता। तभी तो तुम्हारे ऊपर मेरे जीवन का सारा बोझ आकर स्थिर हो गया है। यह भी भगवान की ही माया है, उन्हीं की कहानी है। जब मैं शुरू-शुरू में आया था तब तो जरूर मुझे व्यर्थ ही तुम्हारे गले में अपना बोझ डालने में सङ्कोच होता था, पर अब वह सारा सङ्कोच खतम हो गया है।

मृणाल के ओठों पर जरा सी हँसी थिरक गई। केदार बाबू थोड़ी देर मौन रहकर फिर बोले—'पर न जाने क्यों फिर भी अजीब सङ्कोच सा हो

रहा है कहने में।'

मृणाल—'तो अभी मत कहो बाबूजी, कोई हर्ज की बात भी नहीं।'

केदार बाबू—'कहूँगा तो अभी ही। बिना कहे रहा भी नहीं जाता। मेरी समझ में वह निश्चय ही सुरेश से साथ···।'

मृणाल ने कई बार इसी तरह की बात सोची थी और आज इसी प्रकार का संशय केदार बाबू के मुँह से सुनकर वह कुछ बोल न सकी। सिर नीचे किये बैठी रही। थोड़ी देर तक मौन रहने पर केदार बाबू ने मौन भङ्ग करते हुए कहा—'मृणाल, एक बार महिम से सारी बात सुनना चाहता हूँ। सारी बात न जानने के कारण एक अजीब सी बेचैनी रहती है। पर मैं तो अकेला जाकर महिम के सामने खड़ा भी नहीं हो सकता।'

मृणाल ने केदार बाबू के व्यथित और लज्जित चेहरे पर नजर डाली और बोली—'मैं भी जो साथ चलूँगी।'

केदार बाबू—सचमुच चलोगी बेटी ?'

मृणाल—'सचमुच बाबू जी। मैं आपको भला अकेले कैसे छोड़ सकती हूँ। जहाँ कभी भी जाओगे मैं साथ चलूँगी। और तो मुझे कोई अपने साथ ले नहीं जाते; इसीलिए कभी यहाँ से निकलना भी नहीं होता।'

फिर वह मौन होकर उनके सिरहाने बैठी रही। केदार बाबू का अन्तर अपनी एक मात्र कन्या की घृणित दशा से विदीर्ण हो रहा था। उसे सान्त्वना देने योग्य उनके पास कुछ भी शब्द न थे।

काफी देर तक वे इसी अवस्था में बैठे रहे तब केदार बाबू ने एक गहरी साँस खींच कर कहा—'बिटिया !'

उनके मुँह की तरफ देखकर मृणाल को रोना आ रहा था पर पूरी कोशिश से अपने को संयत करके वह बोली—'बाबू जी, क्या है ?'

केदार बाबू ने करुणा भरे स्वर में कहा—'बिटिया, सोचा भी न था कि संसार में इतनी बड़ी व्यथा का विस्तार भी इतना बड़ा हो सकता है इससे मुक्ति पाने का क्या कोई भी चारा नहीं ? कोई भी रास्ता नहीं

बता सकती ?'

मृणाल ने व्यग्र परन्तु शान्त स्वर से कहा—'मनुष्य मृत्यु तक की व्यथा को भी सह लेते हैं बाबू जी !'

केदार बाबू—'तुम्हारे कहने का मतलब यही है न कि मैं समझ लूँ कि मेरे लिए अब वह जिन्दा ही न रही। सोचता तो मैं कई बार ऐसा ही हूँ। और वास्तव में मृत्यु के शोक के समान ही उसके बाद की शान्ति उतनी ही बड़ी है पर मेरे लिए तो उसकी भी गुञ्जायश नहीं है। उसके कारण मुझे जो लज्जा और ग्लानि हो रही है उससे अन्तर एक क्षण भी विश्राम नहीं पाता।' कहकर उन्होंने आँखें बन्द कर अपनी छाती पर हाथ रक्खा और थोड़ी देर मौन रह कर बोले—'मृत्यु के शोक को तो हम सह लेते हैं हृदय को सान्त्वना देकर कि ईश्वर की लीला है लेकिन हम ···।'

मृणाल ने बीच ही में बात काटकर कहा—'बाबू जी, इसी प्रकार जिसका कार्य-कारण हमसे अदृश्य है उन्हें हम क्षमा नहीं कर सकते तो न सही पर बिना जाने बूझे ही उन्हें दोषी तो नहीं ठहराना चाहिए।'

केदार बाबू सहसा अचकचा कर मृणाल पर दृष्टि स्थिर कर देखते रहे।

मृणाल अत्यन्त कोमल स्वर में आगे बोली—'बाबूजी, दादा के मुँह से भी मैंने कई बार सुना है कि संसार मे ऐसे अपराध कम ही हैं जिन्हें मनुष्य चाह कर भी क्षमा नहीं कर सकता।'

केदार बाबू ही आवेग में बोले—'मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता, हर्गिज नहीं कर सकता। और न उसका अपराध ही क्षम्य है।'

मृणाल क्षम्य है अथवा नहीं यह तो विचारणीय बात है और फिर जिसे क्षमा किया जाता है उसका फल सिर्फ उसी को तो नहीं मिलता, जो क्षमा करता है उसे भी तो मिलता है।

केदार बाबू एकाएक खो से गये। कुछ देर तक मौन स्थिर बैठे रहने के बाद सहसा बोले—'यह मैंने तुमसे एक नया ज्ञान पाया मृणाल! मैंने इस समस्या को इस ढङ्ग से कभी सोचा भी नहीं। ठीक ही तो है, फल तो

दोनों को ही मिलता है। तुम्हारा उपदेश सिर माथे पर रख कर मैं क्षमा करूँगा—अवश्य करूँगा।'

मृणाल—'ऐसी बातें कर आप मेरे अपराध में वृद्धि क्यों कर रहे हैं बाबू जी ?'

केदार बाबू—'तुम और अपराध ! कहीं संसार में उसका स्थान ?'

तभी मृणाल ने उठते हुए कहा—'मालूम होता है माँ जी बुला रही हैं। अभी आई सुनकर।' कहकर वह चली गई।

चालीसवाँ परिच्छेद

मृणाल तो चली गई पर केदार बाबू का कहना बन्द न हुआ मानो अपने को ही सुना कर कहने लगे—'वास्तव में क्षमा करने का विचार तो उठा ही नहीं था मेरे दिल में। अगर कभी भूले-भटके सोच भी बैठा तो पूरी शक्ति से उसी क्षण उसे कुचल भी दिया कि जिस लड़की ने इतना बड़ा दुष्कार्य कर डाला उसे मैं पिता होकर भी क्षमा नहीं कर सकता। कभी नहीं कर सकता। और अपने ही विचारों में आप जलता रहा। कभी शान्ति न मिल पाई मुझे। पर तुमने मृणाल बिटिया, बचा लिया मुझे। इस जलन से बचने के लिए मुझे जब मौत के सिवा कोई और मार्ग न सूझ पड़ रहा था तब क्षमा का यह शान्ति मार्ग तुम्हीं ने बताकर मुझे शान्ति प्रदान की। अपने अन्धेपन में मुझे इतनी सी बात नहीं सूझ रही थी कि क्षमा के बाद सारा फल तो तेरे को ही मिल जायगा। कितना बड़ा सत्य छिपा है मृणाल बिटिया के कथन में।' और अपनी आँखें खोल वे शून्य आकाश की तरफ निर्निमेष दृष्टि से देख जोर-जोर से कहने लगे, 'आज मैंने सब को क्षमा किया। अचला को भी और सुरेश को भी और सबको। आज से किसी के प्रति मेरा गुस्सा नहीं, किसी से कोई शिकायत नहीं। आज मुझे परम शान्ति है।' कहते-कहते मानो परम शान्ति में ही अभिभूत हो उनकी आँखें बन्द हो गईं और आवेश में उठे दोनों हाथ अपनी गोद में लाकर विश्राम करने लगे और चेहरे पर शान्ति की आभा

सिक गई। उनकी बन्द आँखों से पितृ-स्नेह तथा शान्ति के आँसू बहने लगे और काँपते ओठों से बोले—'बिटिया! मैं ही तेरा जन्मदाता हूँ, पाल-पोस कर बड़ा किया है। बस एक बार तू फिर लौट आ। अपने सारे अपराधों-लांछनों को लिये ही आ जा। मैं तुझे फिर से अपनाऊँगा और अपने में ही शान्ति के साथ जीवन बितायँगे तू और मैं। सबसे अलग।'

मृणाल—'बाबू जी!'

केदार बाबू ने मृणाल की तरफ देखा और प्रयत्न भी किया कि अपने आवेश को सँभाल लें पर न सँभाल सके और दूसरे ही क्षण जमीन पर बालकों की तरह बिलख-बिलख कर रो उठे। बोले—'मेरा कलेजा मुँह को आता है। सभी ने तुमको न जाने क्या-क्या कष्ट पहुँचाये हैं और अब भी तुम उनके कष्ट भुगत रही हो, पर अब यह सब नहीं सहा जाता मुझसे।'

मृणाल से भी कुछ बोला न गया। वह उन्हीं के पास जमीन पर बैठ कर उनका सिर अपनी गोद में रखकर स्नेह से उस पर हाथ फेरने लगी। उसकी भी आँखों से पानी बह रहा था।

सहसा केदार बाबू उठकर बैठ गये और बोले—'क्यों मृणाल, महिम को पत्र लिखा जाय तो क्या वह उत्तर नहीं देगा?'

मृणाल—'देंगे क्यों नहीं। और मुझे तो आशा है दो-एक दिन में उत्तर आने वाला है।'

केदार बाबू—'तो क्या तुमने कुछ लिखा है उसे?'

मृणाल—'जी हाँ।'

केदार बाबू मारे सङ्कोच के यह न पूछ सके कि पत्र में लिखा क्या है उसे। थोड़ा रुक कर बाहर घूमने जाने को कहा और छड़ी हाथ में लेकर चलने को हुए; पर एक-दो कदम जाने के बाद ही ठहर कर बोले—'बिटिया देखो!'

मृणाल—'क्या है बाबू जी?'

केदार बाबू—'मुझे कुछ डर सा,''' नहीं ठीक-ठीक डर सा भी नहीं,

मगर कुछ ऐसा सोचता हूँ कि ···।'

मृणाल—'क्या ?'

केदार बाबू—'यह कि क्या महिम आपत्ति करेगा अगर हम लोग आना चाहें तो ?'

ऐसी ही आशङ्का मृणाल को भी थी तभी उसने पहले से भी काफी सोचा था, परन्तु बोली—'उसकी चिन्ता अभी से क्या करनी, जैसे ही उनका पता हमको चलेगा हम लोग चल देंगे। वहाँ पहुँचने पर दादा जब मुझे बुलायेंगे तब जितनी जानने की बातें हैं सब जानी जा चुकी होंगी। फिर जानने को कुछ शेष भी न रह जायगा।'

केदार बाबू थोड़ी देर तक तो मौन रहे, फिर बोले—'तो तुम सचमुच ही चलोगी मेरे साथ ?'

मृणाल—'और नहीं क्या झूठमूठ ही। पर नहीं !—हाँ ! मैं नहीं जाऊँगी तुम्हारे साथ ! मेरे साथ तुमको चलना होगा।'

फिर आगे कुछ और भी केदार बाबू कहना चाहते थे पर थोड़ी देर मौन खड़े रहकर बाहर चले गये।

ठीक इसी तरह, इसी बङ्गाल के एक सुदूर प्रदेश में दो जने और अपनी बीती पर आप आँसू बहा रहे थे। सुरेश और अचला।

सुरेश ने एक बड़ा सील मुहर बन्द लिफाफा अचला के हाथ में देकर कहा—'इसे देना तो बहुत पहले से ही चाहता था पर साहस न कर सका। अब दे दिया क्योंकि अब बिना दिये निबाह नहीं होने का।'

अचला ने लिफाफा तो हाथ में ले लिया और व्यग्र स्वर में पूछा—'पर इसका मतलब ?'

सुरेश के ओठों पर मुसकुराहट थिरक गई, बोला—'तुम शायद आश्चर्य कर रही हो कि क्या ऐसी भी कोई चीज हो सकती है जिसे करने में मेरी हिम्मत भी काम न दे ! इसका मतलब एक दिन तो साफ होगा ही पर अचला, जिस तरह आज तक तुमने बिना कारण और मतलब जाने मेरे कारण इतना अपमान और लांछना सही है उसी तरह इसका क्या

मतलब है कि उत्सुकता को भी बिना मतलब जाने ही सह लो।'

अचला—'पर इसके अन्दर है क्या?'

सुरेश—'अचला! मैंने आज तक तुमसे हर चीज पाई नहीं छीनी है डकैत की तरह पर आज एक भीख माँगता हूँ, कि यह न पूछो कि इसके अन्दर क्या है?'

अचला चुप हो गई, आगे क्या पूछे समझ ही नहीं पा रही थी।

तभी बाहर से नौकर ने आकर कहा—'बाबूजी देर करने से रात हो जायगी पहुँचते-पहुँचते। हो सकता है कि पानी भी बरसने लगे रास्ते में।'

अचला जैसे सोते से जाग पड़ी हो, बोली—'अब कहाँ जाने का इरादा है इस समय?'

सुरेश ने हँस कर कहा—'कहीं नहीं! बस मझौली। वहाँ प्लेग फैला है, डॉक्टर मिल नहीं रहे हैं। एक के बाद एक गाँव वीरान होता जा रहा है। शायद अब की पाँच-सात दिन बाद लौटना हो सके और शायद नहीं भी!' कहकर जरा सूखी सी हँसी हँस दी।

अचला एकटक उसके चेहरे की तरफ देख रही थी। वह सब जान सुन तो चुकी थी, पास ही में प्लेग फैला है, गाँव के गाँव वीरान होते जा रहे हैं, डॉक्टर मिलते नहीं। सुरेश चुपके-चुपके बहुत से रुपयों की दवा-दारू चारो तरफ गाँवों में भेजता रहा है और स्वयं भी रोज सवेरा होते ही चला जाता है और दिन भर न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिर कर शाम को लौटता है और कभी-कभी तो काफी रात में! परसों तो रात को भी नहीं आया था। पर अचला ने इतना न सोचा था कि वह उसे इस तरह वीराने में अकेला छोड़ कर इतने दिनों के लिए अपने जीवन को खतरे में डाल कर वहाँ रहने के लिए जायगा। तभी सुन कर सुन्न हो उसकी तरफ देखती रह गई। अचला का मन जो सदैव ही इस पापात्मा—जिसके लिए भगवान् का अस्तित्व नहीं, पाप-पुण्य नाम की कोई चीज नहीं, और जिसने बिना किसी हिचक के अपने मित्र की पत्नी

के जीवन का ही सर्वनाश कर डाला, के लिए विरक्त रहा है आज उसकी तरफ अजीब विस्मय से भर उठा। वह इस समय भी मुस्कुरा रहा था जिसमें अचला को संसार के प्रति एक व्यङ्ग-रेखा दीख पड़ी। उसका चेहरा शान्त निश्चल था। मौत के बीच रहने का उसने संकल्प किया था पर किसी प्रकार के भय अथवा चिन्ता की रेखाएँ उसके चेहरे पर न थीं। तो क्या जिसके जीवन में कामना-भोग ही सबसे बड़ी चीज रही है वह भी आज अपने जीवन को इतना तुच्छ समझने लगा है कि जान-बूझकर मौत के मुँह में जा रहा है सारा भोग उपलब्ध होते हुए भी और उसे भी छोड़कर जिसके लिए उसने अपने को बरबाद किया। अचला को यह बात हँसी में कही नहीं जान पड़ी वरन् उसने जाना इसमें कुछ गम्भीरता है और वह उद्विग्न हो उठी, सारा बदन काँप उठा और वह व्यग्र हो बोली—'तो फिर क्या इस लिफाफे में तुम्हारा वसीयतनामा है?'

सुरेश—'अचला, अभी-अभी तुम मुझे यह बात न पूछने की भीख दे चुकी हो। क्या भूल गई उसे?'

अचला थोड़ी देर मौन रह कर बोली—'न बताओ पर किसी भी हालत में मैं तुमको जाने नहीं दे सकती।'

सुरेश—'क्यों?'

अचला ने जरा इधर-उधर कर कहा—'तुमने भले ही मेरे साथ कैसा भी बरताव किया हो, पर मेरे कारण तुम जान दो यह मैं नहीं होने दे सकती।'

सुरेश मौन रहा। अचला स्वय अपनी ही बात से शर्मा गई, बोली—'तुम कह सकते हो कि मैं तुम्हारे लिए नहीं उन गरीब बीमारों के लिए प्राण देने जा रहा हूँ, पर मैं उनके लिए भी प्राण देने तुमको नहीं जाने दे सकती।' अचला की बात सुनकर सुरेश को महिम की बात का ख्याल हो आया और अनायास ही एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। वह जानता था कि महिम आज भी उसका साक्षी मौजूद है कि उसके लिए जीवन का मोह कोई भी मूल्य नहीं रखता और यदि आज का उसका जाना

ही अन्त होगा उसका; तो वह यह समझ ही सकेगा कि उसने किसी स्वार्थ से नहीं, दुख और क्षोभ से नहीं और न किसी अन्य आशा से ही प्राण दिये हैं वरन् सम्भवतः उसकी मौत ही वास्तव में आ गई थी।

उसकी आँखों में आँसू आने ही वाले थे पर किसी तरह अपने को सँभाल कर अपना मुँह ज़रा सा ऊपर उठा कर सूखी हँसी हँसते हुए उसने कहा—'मुझे अब चुपचाप बेकार बैठे रहना नहीं सुहाता तभी जा रहा हूँ। मैं न किसी के लिए मरना चाहता हूँ और न मरूँगा ही, अचला।'

अचला—'तो यह वसीयतनामा फिर किस लिए है?'

सुरेश—'पर यह तो पक्का नहीं है कि यह वसीयतनामा ही है।'

अचला—'न सही! पर इस तरह मुझे अकेली छोड़ चले जाओगे?'

सुरेश—'आकर लौटूँगा ही नहीं; ऐसा तो नहीं है।'

अचला—'न सही! पर इस वीराने देश में मुझे एकदम अकेला बिना किसी आश्रय के···।' कहते-कहते अचला रोने लगी।

सुरेश बैठ गया। उसका मन उद्विग्न हो रहा था और आवेश में अभिभूत होकर पर उसे शान्त कर अपने को संयत कर बोला—'अचला, आज भी तो तुम अकेली ही हो। मैं तुम्हारा तो साथी नहीं और अगर मैं मर जाऊँगा तो भी इससे अधिक निराश्रय तो न होगी तुम।'

अचला रो रही थी। रोते हुए ही उसने सुरेश की तरफ देखा। ओठ काँप रहे थे उसके। काँपते ओठों को दाँतों से दबा कर चीख को रोकने का प्रयास किया उसने पर वह न रोक सकी और फूट-फूट कर रो उठी, बोली—'और इससे अधिक देने को है ही क्या मेरे पास। सब कुछ तो दे दिया। अब और क्या चाहते हो? कहते-कहते मुँह को कपड़े से लपेट रोती हुई वह वहाँ से भाग गई।

तभी नौकर ने आकर फिर कहा—'इक्के वाला···।'

थोड़ी देर बाद कोचवान ने आकर कहा—'बहुत देर से गाड़ी तैयार खड़ी है।'

सुरेश—'गाड़ी किस लिए ?'

कोचवान ने कहा कि बहू जी ने उस घर जाने के लिए गाड़ी तैयार करने को कहा था, मगर नौकरानी से पता चला कि बहू जी के कमरे का दरवाजा बन्द है, बुलाने पर भी किसी ने उत्तर नहीं दिया है। अब घोड़े खोल दिये जायँ ?

सुरेश—'नहीं ! ठहरो जरा !'

और वह उसी कमरे में से खुले दरवाजे में से होकर सोने वाले कमरे में गया। अब यही उसका और अचला का कमरा था। चुपके से एक कुर्सी खींच कर उसके पास बैठ गया। और दिनों की तरह अचला को अकेली शय्या पर पड़ा देखकर वह आवेश में न आया पर उसका अन्तर आहत हो उठा। अचला न जान सकी कि वह कब आया, वह पड़ी रोती रही और सुरेश उसी की तरफ निर्निमेष देखता सोचता रहा।

अब कुछ दिनों से उसने अपनी भूल महसूस की थी, अचला की असीम वेदना और मुर्झाये चेहरे ने झकझोर कर मानो उसे जता दिया था कि ठीक वैसे ही जैसे सूर्य की उषा कालीन प्रथम किरणें ओस को मसोस कर चूस लेती हैं वह भी अपने निष्ठुर हाथों से उस निरपराध नारी के सौन्दर्य को चूस रहा है। वह नास्तिक है तभी उसने समझा था कि जो अनन्त सौन्दर्य उसके मन को अभिभूत किये हुए है उसी को पाना ही स्थूल शरीर की सम्पूर्णता है। पर आज जैसे आसमान से लुढ़क कर अपनी असलियत पहचान अपनी भूल समझ ली। उसने समझा कि जो जिसका है उसे उसके अनधिकार चेष्टा से छुड़ा कर अपना बना, अपना समझना, अपने का उसको और संसार को बहुत बड़ा धोखा देना है। और जिसकी ग्लानि से दोनों में से एक भी छुटकारा पाकर अपना जीवन सुख और शान्ति का नहीं बिता सकते। जीवन भर व्यथा, ग्लानि, क्षोभ अपने अन्तर की ही स्वयं पर दी फटकार से जलते रहेंगे।

यही सत्य अचला की ओर देखते देखते उसके सामने मूर्तिमान हो उठा। जिसका जहाँ अपना स्थान है वहाँ से ला कर ऐश्वर्य के अगाध-

सागर में रख कर भी चैन नहीं दिया जा सकता। और उसकी आँखों से भी आँसू की बूँदें टपकने लगीं। उन्हें पोंछ उसने पुकारा—'अचला!'

अचला एक बार तो सिहर गई पर उसी तरह पड़ी रही। सुरेश बोला—'तुमने रामचरण बाबू के घर जाने को गाड़ी तैयार कराई थी न! सो वह तैयार खड़ी है।'

अचला ने कोई भी उत्तर न दिया। सुरेश यह कह कर—'न जाना चाहो तो घोड़े खुलवा दूँ? और आज मैं भी न जाता। जाकर इक्का लौटा आने को कह दूँ।' कहकर वह बाहर चला गया।

दस-पन्द्रह मिनट के बाद वह खड़ा न जाने क्या सोच रहा था कि अचला को साड़ी पहन कर तैयार खड़ी देख दङ्ग रह गया। अचला बोली—'रामचरण बाबू के घर एक बार आज जाना जरूरी सा ही है।'

अचला पूरी तरह सज-धज कर आई थी। उसकी सज-धज ने सुरेश को अभिभूत कर दिया था। पर वह जानता था कि यह सज-धज उसके लिए नहीं वरन वहाँ आये मेहमानों को दिखाने के लिए है। उसने विस्मयान्वित स्वर में पूछा—'जाना जरूरी सा ही क्यों है?'

अचला—'राक्षसी भी कलकत्ते से बुखार में आई है और कल से सुना है ताऊजी को भी बुखार आ गया है।'

सुरेश—'तो क्या उन लोगों के आने से एक बार भी तुम वहाँ गई नहीं?'

अचला—'नहीं!'

सुरेश—'और वहाँ से भी कोई नहीं आया?'

अचला—'नहीं।'

सुरेश—'रामचरण बाबू भी नहीं?'

अचला—'नहीं।'

जब से सुरेश नये मकान में आया है तब से उसने अपने को प्लेग के कार्य में इतना व्यस्त कर रक्खा है कि घर में क्या होता है क्या नहीं उसे मालूम ही नहीं। तभी यह बातें जान कर उसे अचम्भा हुआ,

बोला—'ताज्जुब है कि न तो तुम गईं और न वहाँ से ही कोई आया! अच्छा जाओ हो आओ।'

अचला—'गलती हमारी ही है। वहाँ एक तो बेचारी बुखार में ही पड़ी थी और ताऊ जी जब तक खड़े रहे मेहमानों में ही लगे रहे होंगे। जाना तो हम लोगों को ही चाहिए था।'

सुरेश—'हाँ तो हो आओ। मगर ज़रा जल्दी लौट कर आना।'

थोड़ी देर चुप रह कर अचला बोली—'तुम भी साथ चलो।'

सुरेश—'मैं क्यों चलूँ?'

अचला को गुस्सा आ गया, बोली—'तुम्हें यदि यह याद नहीं रहा कि तुम भी उनके यहाँ बीमार पड़े थे कभी, पर कम से कम इसीलिए चलो कि तुम डॉक्टर हो।'

सुरेश—'अच्छी बात है।' कह कर कमरे में कपड़े बदलने के लिए वह चला गया।

जब दोनों ही तैयार होकर नीचे उतरे तो उस समय भी बेचारा इक्के वाला कोई जवाब न पाकर खड़ा था। अचला उसे देखकर गुस्सा हो पड़ी और तुरन्त ही उसका किराया अदाकर उसे विदा करने का हुक्म दिया। सुरेश की तरफ देखते हुए सहमते सहमते पूछा—'फिर कल...।'

अचला ने उसी तरह गुस्से में जवाब दिया—'कल भी नहीं। बाबू अब नहीं जायँगे।'

गाड़ी पर सुरेश सामने की सीट पर बैठने को था कि कोट खींचकर अचला ने उसे अपने बगल में बैठा लिया। गाड़ी चल दी। दोनों ही जने चुपचाप अपनी अपनी तरफ की खिड़की से बाहर की तरफ देखने लगे।

जब गाड़ी बाग का फाटक पार कर सड़क पर आ गई तब सुरेश ने धीरे से पुकारा—'अचला...!'

अचला—'क्या है?'

सुरेश—'जानती हो मैं आज कल क्या सोचता रहता हूँ?'

अचला—'क्या?'

सुरेश—'उससे बिलकुल विपरीत, जो अब तक सोचता समझता आया हूँ। तब तो सोचता था किस तरकीब से तुम्हें पाऊँ और अब ठीक उससे उलटा सोचता हूँ कि कैसे तुम्हें छुट्टी दूँ। अब तुम्हारा भार मुझसे मानो सहा नहीं जाता।'

अचला पर यह सत्य एक आघात की तरह लगा पर आहिस्ते से बोली—'यह मैं जानती हूँ। पर यह तो तुम्हारी ही...।'

सुरेश—'भूल है।' मैंने पहले यह नहीं सोचा था कि बिना मन पाये देह का बोझ ढोना कितना भारी होता है।'

अचला ने सुरेश पर आँख गड़ाकर कहा—'तो क्या मुझे छोड़कर तुम चले जाओगे?'

सुरेश—'यही समझ लो।'

अचला उत्तर से बिलबिला उठी और चारो ओर से यही सुन पड़ने लगा—'यह वही सुरेश है क्या? उसके ही लिए आज वह बोझा बन गई है। वह उसे छोड़कर चला जायगा और छोड़कर जाना चाहता है। यह स्वीकार करने में भी उसको हिचक नहीं हुई। जरा सी भी नहीं। उसका सारा जीवन उसी के कारण केवल बरबाद हो गया। अपने भोग के लिए ही उसने उसके समूचे जीवन की होली जला दी।

गाड़ी निर्जन पथ पर धड़धड़ाती चली जा रही थी। आसमान में बादल अब भी मँडरा रहे थे। सुरेश के मन में क्या विचार उठ रहे थे उन्हें तो वही जाने पर जो बात उसने प्रकट कर दी थी उसके भयङ्कर परिणाम की कल्पना मात्र से ही अचला का सारा बदन मारे भय के काँप उठा। उसके सामने उसका भविष्य नाच उठा जब वह अकेली है सुरेश भी छोड़कर चला गया है और उसकी भाग्य-नौका निऋति के निष्ठुर थपेड़ों से डूबती उतराती मृत्यु, लज्जायुक्त और अपमानित मृत्यु के भयङ्कर घाट पहुँच रही है।—सोचते-सोचते उसके शरीर का स्पन्दन रुकता सा नजर आया। तभी अनायास ही उसका निर्जीव हाथ सुरेश की गोद में जा गिरा और उसने आहत पक्षी की तरह डबडबाई आँखों से उसकी तरफ देखकर भरे

गले से पूछा—'क्या तुम्हें अब मुझसे प्रेम नहीं रहा ?'

सुरेश ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'अचला, मैं तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दूँ, दुविधा में हूँ। आज मैं बिना दुविधा के इसका उत्तर नहीं दे सकता ऐसा ही जान पड़ता है कि मैं—जाने दो उसे! पर इतना तो कह ही सकता हूँ कि अब मुझ में शक्ति नहीं रही इस भूत को और अधिक ढोने की।'

अचला चुप रही। थोड़ी देर बाद करुणा भरे स्वर में बोली—'चलो कहीं और चलें हम लोग।'

सुरेश—'जहाँ एक भी बङ्गाली न हो!'

अचला—'जहाँ मैं हरदम लज्जा की आग से जलती न रहूँ।'

सुरेश—'तो क्या सचमुच तुम वहाँ मुझसे प्यार कर सकोगी?' कहते-कहते उसने अचला का सिर अपनी छाती पर चिपटा कर उसके करुणा से ठिठुरे ओठों को चूम लिया। उस समय मारे क्षोभ और लज्जा के उसके कपोल आरक्त हो गये और उसके ओठ जल उठे, बोली—'हाँ! मैं तुम्हें प्यार करती थी कभी। छोड़ो—नहीं-नहीं, कोई देख लेगा।' कह अपने को उसके आलिङ्गन से छुड़ाकर वह सीधी बैठ गई पर उसका हाथ सुरेश के साथ में ही रहा। उसे स्नेह से सहलाकर उसने मसोसी हुई दीर्घ साँस छोड़ी।

गाड़ी रामचरण बाबू के मकान के सहन में शोर मचाती हुई पहुँच-कर रुक गई। नौकर ने गाड़ी का दरवाजा खोला। सुरेश ने हाथ पकड़कर अचला को उतारा। सामने बरामदे पर अन्य स्त्रियों के साथ राक्सी भी बिस्तर से उठकर आ गई थी। दोनों सखियों की आँखों की नजर कितने अर्से के बाद मिली थी और आँखों में ही उन दोनों ने अपनी प्रसन्नता का सन्देश पहुँचा दिया। रामचरण बाबू शाल ओढ़कर बाहर निकल आये थे और हँसते हुए बोले—'आओ मेरी बिटिया···!'

अचला की आँख ऊपर बरामदे पर से हटकर नीचे आई और रामचरण बाबू पर पड़ी और साथ ही उनके बगल में खड़े एक अन्य व्यक्ति पर जो

महिम था। महिम अचला को देखते ही संज्ञाहीन पत्थर की मूर्ति सा निर्जीव बन गया। दोनों की आँखें आपस में टकराईं और वैसे ही देर तक टकराती रहीं। अचला चमकीले वस्त्राभूषणों से आभूषित थी, उनकी चमक तो रही पर उनके बीच खिला कमल मुर्झा गया।

रामचरण बाबू ने सहसा उसके मुर्झाये चेहरे से समझा कि इस प्रकार एक अपरिचित आदमी को उसके सामने खड़ा कर देने से ही सहमकर उसकी यह दशा हो गई है, बोले—'बेटी, तुम सीधी ऊपर जाओ, अब पैर-वैर छूने की जरूरत नहीं।'

जब अचला चुपचाप लड़खड़ाती चली गई तब सुरेश से महिम का परिचय देने की गरज से रामचरण बाबू बोले—'सुरेश बाबू! ये ···।'

बीच ही में सुरेश बोल उठा—'अरे हम दोनों तो साथ पढ़े हैं, बचपन से ही हम दोनों ···।' और बीच में बात पूरी होने के पहले बर-बस हँसी से उसका सारा चेहरा विकृत हो उठा, बोला—'महिम, तुम अचानक यहाँ ···!'

महिम बात पूरी सुने बिना ही मुँह फेरकर अन्दर चला गया।

रामचरण बाबू संशय में रह गये। सुरेश ने फिर एक बार फूटी हँसी हँसने की जबरदस्ती कोशिश की।

तभी ऊपर की सीढ़ियों पर से किसी चीज के गिरने के शब्द ने दोनों को चौंका दिया। दौड़कर जाकर देखा तो अचला दो-तीन सीढ़ी ही चढ़ने के बाद बेहोश होकर नीचे लुढ़क पड़ी थी।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

लौटते समय गाड़ी के एक कोने में सिकुड़ी बैठी अचला यही सोच रही थी कि मूर्च्छा जीवन-पर्यन्त के लिए आ जाती तो अच्छा रहता। अपने हाथ से अपना जीवन अन्त करने की कठोरता से वह सिहर जाती रही है। पर इस तरह अनायास ही मर जाना मूर्च्छा में ही कितना अच्छा होता। वह यही मनाने भी लगी कि उसे इसी तरह की मृत्यु मिले।

सुरेश ने उसे छुआ और कहा—'तुम कहीं और जाने की बात चला रही थी, चलोगी?'

अचला—'हाँ, चलो।'

सुरेश—'कल से तो अब यहाँ मुँह नहीं दिखाया जा सकता।'

अचला—'पर वे तो कोई भी बात किसी से नहीं कहेंगे।'

सुरेश ने एक गहरी साँस छोड़ी और कहा—'हाँ! मैं महिम को जानता हूँ। मारे घृणा के हमारी बात भी वह अपने मुँह पर नहीं लावेगा।'

सुरेश ने यह सत्य बात कहने को ही सहज भाव से कही थी पर उसे सुनकर अचला का सारा शरीर सहसा सिहर उठा। बाकी रास्ते भर दोनों ही मौन रहे। उसके बाद से सुरेश ने अचला को होशियारी से उतारा और बोला—'अचला, अब तुम जरा कोशिश करो सोने की तब तक मैं कुछ जरूरी पत्र लिखते हैं उनको लिख डालता हूँ।' और वह अपने काम करने के कमरे में चला गया।

अचला जाकर बिस्तर पर पड़ी रही। विचार आ आकर उमड़ने-घुमड़ने लगे उसके सूने मस्तिष्क में—'मैंने अपनी इस इक्कीस वर्ष की छोटी सी आयु में किसका इतना बड़ा उपकार किया है कि उसके फलस्वरूप मुझे यह दुर्दिन और दुर्गति भुगतनी पड़ रही है।' यह प्रश्न अपने से अचला ने कोई आज नया नहीं किया था। पहले भी वह कर चुकी थी और बचपन से अब तक सारी घटनाओं को एक के बाद एक याद करके उनका लेखा-जोखा करती कि किस पाप का यह परिणाम उसे भोगना पड़ रहा है। आज उसे एक दिन की मृणाल की बात याद आ गई। और उसी बात को धुरी बनाकर सारी घटना की आलोचना करने लगी। उसका पति से विरोध ही रहा केवल जब बीमार थे तब ही वह उन्हें अपना बना सकी थी और उस समय अपने जीवन को परमानन्द समझकर उसे दूसरों की व्यथा दुखित करती थी। तभी उसने कप दिन मृणाल के एकांकी जीवन से व्यथित होकर करुणा से उसे गले से चिपटा कर कहा था—'मृणाल जीजी क्या करूँ यदि तुम हमारे समाज की मानने वाली

होती तो तुम्हारा यह सोना सा निखरा जीवन मैं हर्गिज़ इस तरह से बरबाद न होने देती।'

मृणाल ने कहा था--'तो क्या करती ! मेरा ब्याह कराती ?'

और उसने कहा था—'ज़रूर ही पर नहीं नहीं—बस रहने दो अपने शास्त्रों की दुहाई, उनको सुनते-सुनते तो कान पक गये ! अनेक बार वाक्‌युद्ध हो ही चुका है अब तो उनका खयाल करके ही डर मालूम होता है।'

मृणाल ने उसी तरह निर्लिप्त भाव से कहा था—'भाभी, एक बात सोचो कि युद्ध तो उनका पेशा है जो ताकतवर होते हैं और हार-जीत का प्रभाव भी उन्हीं को होता है हम से तो न जीतने वाला ही और न हारने वाला ही किसी तरह की बात पूछता है।'

और अचला ने कहा था कि कोई पूछता है या नहीं इससे किसी का बनता-बिगड़ता ही क्या है।'

बहन अगर मैं तुम्हारी ही तरह सोचती तो हो सकता है अब तक जरूर कहीं-न-कहीं मुझसे भी व्याह करने को कोई न कोई राजी हो जाता मृणाल ने कहा था और कह कर हँस पड़ी थी।

उसकी हँसी में यह उत्तर अचला को अखर गया था और वह ज़रा गुस्से में बोली थी। जब कभी हमारे समाज की बात होती तो तुम्हारा उसके प्रति अवज्ञा का व्यवहार होता है पर क्या और भी जो बहुत से इस सम्बन्ध में विवाद करते हैं वे सब केवल विवाद इसीलिए करते हैं कि ऐसा करने की उनकी आदत हो गई। किसी के दिल में सच्ची भावना नहीं होती ?

तब मृणाल ने कहा था कि वह तो कल जा रही है तभी चलते-चलते मजाक भर कर रही थी अब न जाने कब मिलना हो सकेगा और सचमुच ही उसकी आँखों में आँसू भर आये थे और तुरन्त ही अपने को संयत कर उसने कहा था कि उसके समाज में विवाह तो एक मानव धर्म का सम्बन्ध है, धर्म तभी पति को जीवन का ही नहीं जन्म-जन्मान्तरों का

साथी मान कर ही अपनाता है। तुम्हारे समाज में तो वह एक सामाजिक बन्धन मात्र है तभी अच्छे-बुरे का तर्क उसके लिए करना तुम उचित समझती हो।'

तब अचला ने उसके तर्क पर आश्चर्य कर कहा था कि धर्म भी तो बदलते रह सकते हैं। मृणाल ने इसका उत्तर सहज स्वाभाविक रूप में दिया था। धर्म का ऊपरी स्वरूप तो बदल सकता है पर उसका मूल जो सभी धर्मों में सदैव एक ही रहता है बदलता नहीं। आज भी वह मूल सभी जातियों में ऊपरी भिन्नता होते हुए भी बना हुआ है। पर यह नहीं कि पति की अच्छाई-बुराई के सम्बन्ध में हम अपने विचार न रखती हों, वे तो होते ही हैं परन्तु हमारा उनका सम्बन्ध नहीं बदलता, जीवन में भी नहीं और मृत्यु के बाद उस जीवन में भी।

तब अचला ने कहा था कि यदि जो तुम्हारे विचार हैं वे ही सत्य हैं तो फिर इतने बड़े-बड़े अनाचार होते हैं सो क्यों?'

'जब तक धर्म है तब तक वह भी रहेगा ही। पर कुत्ते-बिल्लियों में तो हमें वह नहीं देखने को मिलता।'

अचला को कोई उत्तर न सूझा, सोच कर थोड़ी देर बाद बोली—'पर यह नहीं समझ में आता कि जब तुम्हारे समाज में इतना उच्च आदर्श है तो फिर इतने बन्धनों की क्या आवश्यकता है? बिना बन्धनों के सतीत्व की कसौटी पर कोई खरा उतरता है?'

मृणाल को अचला की इस बात पर आश्चर्य हुआ था पर उसका भी उसने सहज भाव से ही उत्तर दिया था कि माँ-बाप जो भी सिखा बता देते हैं हम तो उसी को सच समझकर उसी पर चलती रहती हैं। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मेरे पास नहीं, उन्हीं बुजुर्गों के पास है जो समाज का नियमन करते हैं। हम तो उसे धर्म के रूप में स्वीकार करती हैं और बहन हमने पति को जब एक बार धर्म-रूप में स्वीकार कर लिया तो फिर सदैव के लिए कर लिया चाहे फिर बन्धन में रखो तो और मुक्त कर दो तो। और आगे भी थोड़ा रुकने से बाद उसने कहा था। मेरे पति वृद्ध थे गरीब

थे, रूप गुण भी विशेष नहीं था। तुमने तो देखा है अच्छी तरह से! पर वे ही जैसे थे वैसे ही मेरे इस लोक और परलोक दोनों के ही पति हैं। और तभी वह आँख मूँद कर क्षण भर को मौन रह गई थीं, सम्भवतः उन्हीं की पावन याद में। और फिर आगे उसने ही कहा था—'एक बाप का लड़का चाहे वह लङ्गड़ा हो या काना, उसे प्यारा होता है। हो सकता अपने से अधिक सुन्दर लड़का एक टीस पैदा कर दे वह दूसरी बात है पर उससे अपने पुत्र पर जो स्नेह है वह जरा भी कम नहीं होता। यही उसका पितृ धर्म है। वह मिसाल शायद ठीक तरह समझी न होगी भाभी। पर फिर भी इतना कहती हूँ, कि मेरी यह बात गाँठ बाँध लेना भाभी कि जिस स्त्री ने अपने पति को अपने हृदय में धर्म-रूप में नहीं ग्रहण किया वह चाहे स्वतन्त्र हो या पति सामाजिक नियमों से और चाहे अपने सतीत्व पर उसे कितना भी विश्वास हो परीक्षा के समय उसे डिगना पड़ेगा चाहे परदे में अथवा बाहर।'

अचला इन्हीं पुरानी बातों के विचार में डूब-उतरा रही थी। मृणाल का यह अन्तिम वाक्य आज उसी के जीवन के साथ सत्य प्रमाणित हो गया और वह उस बतलाये दल-दल में ही बुरी तरह फँस गई है, ऐसी कि जितना निकलने का प्रयास करती है उतना ही और धँसती जाती है। अचला उन बातों को तरह-तरह से मिसाल देकर समझाने का मृणाल का मतलब अब अच्छी तरह से समझ रही थी। उसने स्वच्छन्द जीवन बिताया है बचपन से ही। सारे अनुभव भी स्वतन्त्र ढङ्ग से ही किये हैं, अपना जीवन-सङ्गी भी उसने आप ही चुना था, मगर उसकी विपत्ति आई उसकी खुली आँखों में ही धूल झोंकती और अपने मित्र सुरेश के वेष में और ताऊजी द्वारा जब एक रात को जब आँधी पानी आफत ढो रही थी उनके अनेक बार आग्रह पर वह उस दिन अपने को रोक न सकी थी और उस दिन तक इतना पतित हो जाने पर भी अपने सतीत्व की रक्षा किये जा रही थी, पर सुरेश के हाथों में वह उस अपनी एक मात्र निधि को भी सौंप कर फिर कङ्गाल बन पाई। आज वह समझ गई

कि मृणाल ने उस दिन जीवन के इसी सङ्कट की ओर उसे सचेत किया था। पर तब वह न समझ पाई थी। तब तो उसके दिमाग में घुसा था कि हृदय से जन्म-जन्मान्तर तक जिसको जैसा मिले उसमें ही सन्तोष कर रहो, वह तो गुलामी सरासर अन्याय है। पर तब वह इस आचार में आन्तरिक लगाव की अनुभूति को न समझ सकी थी जिसकी कसौटी पर मृणाल वृद्ध पति को पाकर अपने सतीत्व की रक्षा कर जीवन में सफल हो सकी और अचला उसके विपरीत मन चाहा पति पाकर भी फिसल कर खंदक में गिर कर जीवन रहते ही नरक की सी दुर्गति भुगत रही है। हमेशा उसने अपनी पोथी की शिक्षा के संस्कार की कसौटी पर—यह सोच कर कि इसने मेरे साथ वह व्यवहार किया है और यदि यह दो इससे बन भी गया हो तो कोई बात नहीं, थोथी आमक भद्रता के सङ्कोच में अपने को धीरे-धीरे और फिर सम्पूर्णतः उसके हाथों में सौंप दिया और उसी सङ्कोच के वशीभूत वह ताऊ जी से भी सत्य को छिपाती रही और उनके पवित्र स्नेह को उनको धोखे में रख कर ही ग्रहण करती रही।

आज बिस्तर पर पड़े-पड़े यही विचार उसके हृदय में व्यथा की अग्नि प्रज्वलित करते रहे और महिम की तीक्ष्ण दृष्टि उसके अन्तर के आर-पार हो रही थी।

इसी दशा में आधी रात बीत चली और न जाने कब उसके आँसुओं के कोने सूख गये और वह संज्ञाहीन हो, सो गई।

जब वह सो कर उठी तब काफी दिन चढ़ चुका था। सुरेश आया था नहीं उसे नहीं मालूम गोकि उसके आने के लिए दरवाजा खुला था। निकल कर नौकर से पूछा तो उसने कहा—'वे तो सवेरा होते ही इक्का मँगाकर मझौली चले गये।'

अचला—'और कोई भी साथ गया है?'

नौकर—'अकेले ही गये हैं। मैंने तो कहा था साथ चलने को पर मुझसे कहा प्लेग में चलकर मरना हो तो चलो।'

अचला—'और तभी तुम गये नहीं, इक्का ला दिया। मुझे क्यों नहीं जगाया ?' नौकर ने उत्तर नहीं दिया।

अचला ने थोड़ी देर बाद पूछा—'इक्का लेने कौन गया था, तुम ?'

नौकर—'बाबूजी ने आज ही सवेरे आने को कह दिया था।'

अचला ने समझा कि उसने जाने का इरादा छोड़ा नहीं था केवल स्थगित कर दिया था और कल रात की घटना से भी उसका सम्बन्ध नहीं है। वह घटना न भी होती तो भी जाता ही।

अचला—'लौटने को कुछ कह गये हैं ?'

नौकर—'परसों नहीं तो उसके एक दिन बाद तो जरूर आ जायँगे।'

कल के गिरने के कारण उस समय बेहोशी में और बाद में विचारों की उत्तेजना में उसे पता नहीं चला था कि चोट कहाँ और कितनी लगी है पर अब उसे वह अनुरोध हो रही थी। साथ ही इस चिन्ता से भी कहीं रामचरण बाबू खबर लेने न आ जायँ, दरवाजे पर ही टकटकी लगाये रही। उसे यह तो विश्वास था सुरेश से भी अधिक कि महिम किसी से कोई बात कहेगा नहीं। दरवाजे पर आँखें बिछाये बैठे-बैठे सारा दिन बीत गया। रात होने पर यह समझ कर कि अब वे नहीं आयेंगे निश्चिन्त हो बिस्तर पर पड़ रही और एक औषधालय का सूची-पत्र पढ़ती-पढ़ती सो गई।

बयालीसवाँ परिच्छेद

रामचरण बाबू उस दिन भी नहीं आये। अगले तीन दिनों तक भी नहीं। वह हर समय उद्विग्न भयभीत निगाहों से उनके आने की आशङ्का में डूबी रही, पर न आने के पीछे भी क्या रहस्य है इसकी कल्पना करके तो वह भी निर्जीव सी होने लगी। पर उसने यह सोचा हो कि रामचरण बाबू के न आने का कारण उनकी बीमारी हो सकती है सो नहीं। उसका दिमाग तो अपनी बात ही सोचने से खाली नहीं था और हर बात को वह अपने पर ही घटा कर सोचती रही। आज उनका नौकर आया था और नीचे से ही कुछ पाँड़े जी से बातें करके चला गया

था। अचला को यह भी पूछने का साहस न हुआ कि वह क्यों आया था क्या पूछ गया। उसके मन में तो हो रहा था कि वह इस घर के नौकर चाकर सभी कुछ को छोड़ कर कहीं भाग जाय।

उसने नौकर को बुलाया और उससे पूछा कि वह तो वहीं रहने वाला है जानता होगा मझौली कितनी दूर है?

नौकर—'काफी दिन हुए तब एक बारात में गया था। बस!'

अचला—'यह बता सकते हो कि नहीं कि कितनी दूर है?'

नौकर रघुवीर तो रहने वाला वहीं का था पर काफी दिनों से अकालियों के यहाँ काम करते रहने से काफी होशियार हो गया था। तभी जरा सोचकर अन्दाज से बताया कि यही छः सात कोस होगा।'

अचला—'तो तुम मेरे साथ चल सकते तो वहाँ? आज ही।'

रघुवीर—'बहूजी, आप जाइएगा ऐसे प्लेग में?'

अचला—'तुम्हारी जाने की हिम्मत न हो तो किसी और को तैयार कर दो, जो माँगेगा दूँगी।'

रघुवीर—'यह भी क्या बात रही कि आप तो जा सकती हैं और मैं नहीं जा सकता! हर गाड़ी से तो वहाँ जाना हो नहीं सकता! इक्का या डोली ही से जाया जा सकता है। पर आप कैसे जायँगी?'

अचला—'मैं चली चलूँगी, जो भी मिले जाकर जल्दी ले आओ।'

रघुवीर तुरन्त ही एक डोली लेकर आ गया और स्वयं भी एक लाठी में कम्बल लोटा लटका कर डोली के साथ चलने को तैयार हो गया। अचला भी तैयार होकर, घर की रखवाली का भार चौकीदार तथा दूसरे नौकरों पर छोड़कर डोली में बैठकर चल दी केवल सुरेश के लिए ही कभी उसे इस तरह निकलना पड़ेगा यह उसने कभी सोचा भी नहीं था। पर यह तो संसार है क्या होगा कोई नहीं जानता।

गाँव की पगडण्डी से होकर जो कभी मैदानों में होकर गुजरती कभी गाँव के मध्य से तो कभी गाँव किनारा छोड़ नदी के किनारे-किनारे होकर आती। थोड़ी दूर तक तो अचला उसको कौतूहल से निहारती रही, पर

रास्ते में शव को जाते देख उसने अपने मन्तव्य स्थान का सही रास्ता पहचान सन्तोष की साँस ली, पर एक बार को भावी आशङ्का से उसका सारा बदन काँप उठा। उसके मन में हुआ कि वह पूछे कि मुर्दा कौन है! कौन-कौन है उसके घर में। पर वह तो सारा दृश्य रात की अँधियारी, गाँव में रोना, आदि देखकर संज्ञाहीन सी हो गई थी। उसे प्यास लगी तो एक घाट पड़ने पर डोली रुकवा कर नदी में पानी पीने को उतरी तो देखा कि दो अधजले शव पानी में किनारे से ही लगे हिलकोरे खा रहे हैं। पर उस वीभत्स दृश्य ने उस समय उसको भयभीत नहीं किया। हाथ-मुँह धो पानी पी फिर डोली में आकर बैठ गई और डोली चल दी।

आगे जो भी गाँव पड़े सभी वीरान हो चुके थे। कहीं कोई भूला भटका हिम्मत वाला रह गया हो शेष सब भाग गये या फिर महामारी के शिकार हो गये थे। घोर नीरवता, निरजनता, निस्तब्धता व्याप्त थी। चारों ओर मौत का सन्नाटा छाया हुआ था। गावों के बीच में होकर डोली वाले और रघुवीर भी भयभीत हो रहे थे जो उनके भयभीत कदमों से साफ जाहिर हो रहा था। जिनकी कल्पना करके अचला भी उनके हर कदम की ध्वनि से आपत्ति की ध्वनि प्रतिध्वनित होती सुनती पर वह असल में ध्यान में मग्न बैठी थी। भय उसको नहीं लग रहा था।

इस तरह मझौली पहुँचते-पहुँचते शाम हो चुकी थी। अचला ने अपने मन में वहाँ का दृश्य कल्पित कर रक्खा था कि डाक्टर सुरेश वहाँ लोगों की सेवा में लगे होंगे। उसके पहुँचने की खबर पाकर औरत-मर्द उसे घेर लेंगे और फिर सुरेश के पास सम्मान के साथ ले जायेंगे। इस कल्पना मात्र से ही उसका मन कब तक खुशी से उसे साहस दे रहा था। पर मझौली पहुँच कर उसका कल्पित महल एक ही झोंके से गिर पड़ा। वहाँ भी नीरव, निर्जनता का राज्य था। यह पता लगाना भी मुश्किल था कि सुरेश रहता किस मुहल्ले में है।

इस गाँव में आज ही के दिन बाजार लगा करता था। आज भी लगा था पर लगभग तीसरे पहर तक सौदा-सुलफ ले-लिवाकर चले

गये थे। केवल बाजार के स्थान पर बाजार लगने के कुछ चिन्ह अवश्य थे। रघुवीर के काफी तलाश करने पर एक दूकान दार मिला, वह भी उस समय अपनी दूकान बन्द कर रहा था। उसने अपने सारे बाल-बच्चे तो सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिये थे, रह गये थे, वह और उसकी बुढ़िया अपनी दूकान की लालच में। उससे सुरेश के सम्बन्ध में सिर्फ इतना पता लगा कि वह नन्दू पाँड़े के मकान में नीमतल्ला में रहते थे। पर अब भी वहीं हैं या महमूदपुर चले गये सो उसे नहीं मालूम।

अचला ने पुछवाया—'महमूदपूर कहाँ है?'

दूकानदार—'दो कोस और दक्षिण में।'

अचला ने फिर पुछवाया—'और नन्दू पाँड़े का मकान?'

दूकानदार ने बाहर आकर इशारे से एक बड़ा सा नीम का पेड़ दिखा कर कहा—'वहाँ से पता चल जायगा।'

कहारों ने डोली ले जाकर नीम के नीचे रख दी। उस समय तक सूर्य का आसमान पर निशान भी शेष न रहा था। मकान काफी बड़ा था, खपरैल अधिक थी केवल दो एक ही ईंट के मकान नजर पड़े। मकान की हैसियत से तो मकान मालिक गरीब नहीं जचते थे। बाहर एक भी आदमी निकलकर न आया। सामने के चौके में भूखा प्यासा एक टट्टू बँधा था उसने ही इन्हें देखकर हिनहिना कर अपनी दीनता प्रकट कर इनका स्वागत किया था। सामने का दरवाजा खुला था, किसी को भी बाहर आता न देख रघुवीर ने साहस कर अन्दर झाँका तो सुरेश को एक बूढ़ी स्त्री को बैठा पाया, जो ऊँघ रही थी।

रघुवीर ने पुकारा—'बाबू जी!'

सुरेश ने आँखें खोलीं और कुहनी के सहारे उठकर गौर से देखकर पहचान कर कहा—'कौन? रघुवीर?'

रघुवीर अब भीतर पहुँचकर सलाम कर खड़ा हो गया। सुरेश की आँखें लाल सुर्ख हो रही थीं जिन्हें देखकर वह कुछ सिहर गया।

सुरेश ने विस्मय के स्वर में पूछा—'तू यहाँ कैसे?'

रघुवीर अब भी केवल बाहर की तरफ संकेत कर केवल —'बहूजी।' भर कह सका।

सुरेश ने पूछा—'क्या उन्होंने तुझे यहाँ भेजा है?'

रघुवीर—'जी नहीं, वे तो खुद ही आई हैं।'

सुरेश स्तब्ध हो उसकी तरफ देखता रहा, फिर धीरे से लेट गया कुछ बोले बिना ही और जब अचला चुपचाप आकर उसके पास बैठ गई तब भी वह आँखें बन्द किये मौन ही पड़ा रहा।

बचपन से ही वह भावुक रहा है और भाव वेग का गुलाम पर जिस दिन महिम ने मृणाल से उसकी तरफ से मुँह फेर लिया था और बिना बात किये ही अन्दर चला गया था तब से उसने अपमान की वह लात खाकर समय का पाठ पढ़ा था और उस दिन अपने संस्कार पर विजय पाने से जैसा अपने में ही उसको द्वन्द्व करना पड़ा था वैसा ही इस समय भी उसको करना पड़ रहा था पर सिवा उसके उसे कोई भी न जान सका।

इसी तरह मौनावस्था कब तक बनी रहती कहा नहीं जा सकता। पर वह तो कहारों ने आवाज देकर मौन समाधि को भङ्ग कर दिया। उनकी आवाज सुनकर रघुवीर बाहर चला गया तब उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं, बोला—'क्या मेरी चिट्ठी मिली थी तुम्हें?'

अचला—'नहीं।'

सुरेश—'चिट्ठी नहीं मिली और तुम चली आई, आश्चर्य! चलो ठीक ही हुआ। अन्त समय भेंट तो हो सकी।' क्षण भर रुककर बोला—'अचला, मेरे कारण तुमने बड़े-बड़े दुख भोगे हैं और जीवन रहते तुम्हें उनसे छुटकारा भी न मिलेगा। मगर मैं यह नहीं समझ पाया था कि महिम से तुमको इतना प्यार है और शायद तुम स्वयं भी नहीं जानती थी कि तुम उसे कितना चाहती हो!'

अचला ने कोई उत्तर न दिया। सुरेश ने फिर कहना शुरू किया—'मैंने दूसरी भूल की यह कि सोचा कि आदमी के दिल पर न सही शरीर पर किसी तरह कब्जा कर उस पर अपना अधिकार समझा जा सकता

है। प्रेम को भी मैंने शरीर की प्राप्ति ही समझा था। समझा था तुम्हारे पर अधिकार कर सकने के बाद तुम्हारे दिल पर अधिकार कर सकूँगा, हो सकता है कभी सफल भी हो सकता। पर अब उस अदृश्य भविष्य तिथि की प्रतीक्षा करने का मुझमें साहस नहीं और न अब समय ही है।' इतना कह उसने फिर कुहनी के सहारे अपने को थोड़ा उठाकर अचला के चेहरे पर एक आहत दृष्टि डाली और चुप हो रहा।

अचला भी कुछ देर तक तो अचल उसकी ओर टकटकी बाँधे रही पर तुरन्त अपनी शर्माई आँखें नीची कर बोली—'अब लौट चलो यहाँ से अब तो शायद यहाँ कोई काम भी नहीं। चल कर डेहरी में तो रहना हो नहीं सकता। हम लोग कहीं अन्यत्र दूर निकल चलकर रहेंगे।'

सुरेश ने एक आहत साँस ले कहा—'मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ।' और तकिये पर पड़ा रहा उसका सिर। थोड़ी देर मौन रहकर धीरे-धीरे बोला—'मैंने आज ही सवेरे दो पत्र लिखे हैं बड़े कष्ट के बाद एक तुम्हें और दूसरा महिम को। अगर वह यहीं है तो अवश्य आवेगा।'

अचला ने विस्मय से चौंककर पूछा—'उन्हें किसलिए लिखा है?'

सुरेश—'जीवन में अनेक उलझनें पैदा हुई हैं और उन्हें जब-जब उन उलझनों के सुलझाने की आवश्यकता पड़ी है, तभी-तभी महिम ही काम आया है और जीवन की सबसे बड़ी और विकट गुत्थी को सुलझाने के लिए भी अब इस समय मुझे उसकी, बस उसी की सबसे अधिक आवश्यकता है।'

अचला का मन चञ्चल और उद्विग्न हो उठा पर संयत रखकर नीची निगाह किये बैठी रही। सुरेश कहता गया—'उस दिन जो मैंने लिफाफा तुमको दिया था वह मेरा वसीयतनामा है, उसमें से तुम बहुत कुछ चाहो तो ले भी सकती हो। मैंने पत्र में सब बातें भी स्पष्ट लिख दी हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम न लो। मेरे जीते जी जैसे मैं अपना सब कुछ गरीबों को दे रहा था मेरे मरने पर सब कुछ उन्हीं के काम आये यही मैं चाहता हूँ और तुम अपने को अब मुझसे बिलकुल अलग रक्खो, मेरी

हर चीज से अलग रक्खो और इसी तरह शेष जीवन के कष्टों को तुम सह सकोगी। मेरी यही अन्तिम चाह है कि मैंने तुम्हें जो-जो दुख दिये हैं उसे सहने की तुम में शक्ति हो।'

अचला एक तो जब से आई थी तभी से सुरेश की ऐसी बातें सुन सुन कर अत्यन्त भयभीत हो रही थी। पर इस बात ने उसे और भी भयभीत कर भावी आशङ्का से कँपा दिया। बोली—'क्यों नाहक में ऐसी बातें करते हो! हम लोग अभी यहाँ से चलें, कुछ ऐसी तरकीब करो।'

अचला का उसने कुछ भी उत्तर न दिया। जो बुढ़िया एक ओर बैठी ऊँघ रही थी, सजग होकर बोली—'बाबूजी यहीं दीया ला दूँ या अन्दर चलिएगा?' उसका भी सुरेश ने उत्तर नहीं दिया मानो उसे बेहोशी हो गई हो। अचला सोच ही रही थी कि उसे हिला डुला कर अपना प्रश्न फिर दुहराये तभी सुरेश ने आँखें खोलकर सहज स्वाभाविक स्वर में कहा—'अचला, सच बात तो यह है कि अब मेरा अन्त समय आ गया है। मेरे लौट जाने की अब कोई उम्मीद न रक्खो।'

अचला के मुँह से एक अस्फुट आह भर निकली और उसके बाद वह कुछ बोल न सकी।

सुरेश ने ही कहा—'हालाँकि वसीयत मैंने पहले से ही कर दी थी, इससे कोई यह समझे कि मैं जान-बूझ कर मर रहा हूँ तो ऐसा सोचना मेरे साथ अन्याय करना होगा। और मुझे इससे अत्यन्त दुख होगा मरने से भी अधिक। मैंने पूरी होशियारी कर ली अपने बारे में पर मौत से बस न चली। सबसे यही तुम कहना भी, पूछने पर कि मेरी स्वाभाविक ही मौत हुई है। किसी कारण नहीं।'

अचला बिलकुल संज्ञाहीन हो बैठी सुनती रही। सुरेश ने ही फिर कहा—'मैं तुमसे बिना कहे ही उस दिन सवेरे चला आया क्योंकि अपने को रोक न सका। जब यहाँ आया तो देखा कि सारा गाँव सूना हो चुका था। इसी घर में एक नौकर मर गया उसकी अन्त्येष्टि किये बिना ही घर वाले भागे जा रहे थे। वे भाग भी गये। किसी तरह शव का दाह भी तो

करा दिया। दाह से लौटकर सोचा कि घर लौट चलूँ पर दोपहर को होनी का मारा एक लड़का रोता हुआ आया और बोला···।'

डॉक्टर साहब, मेरी माँ बीमार है। उसका आपरेशन किया। आपरेशन करते समय मुझे खयाल ही न रहा कि मेरी अँगुली में इक्के की घिसट का घाव है! बाद में जब हाथ धो रहा था तब उस पर नजर पड़ी। लौटकर सब कोशिश की पर नाकामयाब रहा। कल शाम को ही बुखार ने आ दबाया। अचला, मैं लौट आता अगर आ सकने का साधन होता पर मैं लाचार था। बड़ी कठिनाई के बाद तो एक आदमी को तुम दोनों के पास पत्र देकर भेजा है।'

अचला का गला आँसुओं से रुँध गया था, विकल हो बोली—'अभी मेरी डोली में बैठकर चलो। एक मिनट की भी देरी करने की जरूरत नहीं।'

सुरेश—'तुम?'

अचला—'मैं पैदल भी चल सकूँगी, मेरी फिक्र मत करो।'

सुरेश—'इतना लम्बा रास्ता पैदल तय करोगी?'

अचला—'अब न रोको, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।' कहते-कहते अचला रो पड़ी।

सुरेश थोड़ी देर बाद बोला—'वैसे तो अब उसकी जरूरत रही नहीं पर जैसी तुम्हारी मर्जी वैसा ही सही।'

अचला तुरन्त उठकर बाहर आई तो देखा कि रघुवीर नीम के नीचे बैठा चना चबा रहा है। उससे बोला—'बाबूजी बहुत सख्त बीमार हैं रघुवीर! डोली वालों से कहो, अभी ले चलें उन्हें, जितना रुपया मांगेंगे दिया जायगा। जल्दी करो देर करने का काम नहीं है।'

अचला का स्वर विकल था। उसे सुन रघुवीर हड़बड़ा कर उठ बैठा, बोला—'पर दो को तो वे ले नहीं जा सकेंगे।'

अचला—'अरे भाई दो नहीं एक ही को ले जाना है। मैं तो पैदल चली चलूँगी अब देर मत करो। जाकर तलाश करो उन्हें गये कहाँ हैं?'

रघुवीर—'दूकान पर कुछ खाने-पीने गये हैं अभी लाया बुलाकर।'

और धोती के छोर में चनों को बाँधता हुआ भाग गया। अचला सुरेश के पास लौटकर आ गई और सिरहाने बैठ गई। माथे पर हाथ धरते ही उसकी गरमी से एकदम व्यग्र हो उठी। मुनिया की माँ एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जला कर रख गई थी जिसके धुएँ से सारा कमरा भर रहा था। उसे उठाकर अन्यत्र रखने को उठने पर उसकी निगाह एक शीशी पर पड़ी जो सुरेश की दवा थी, बोली—'क्या यह तुम्हारी दवा है?'

सुरेश—'हाँ! खुद ही बनाई थी कल, पर पी नहीं सका। लाओ दे दो।'

'पी नहीं सका' से अचला को गहरी व्यथा पहुँची, बिलबिला उठी पर क्यों नहीं पी, इस पर उसने बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। दवा पिला कर फिर सिरहाने आकर बैठ गई। सुरेश को चुप हुए काफी देर हो गई थी। चुपचाप वह कितनी भयङ्कर वेदना सह रहा है सोचकर अचला का कलेजा मुँह को आने लगा।

रात काफी चढ़ चुकी थी। मुनिया की माँ बैठी-बैठी गहरी नींद में सो गई थी। तभी रघुवीर ने आकर सूचना दी कि डोली वाले तो चले गये कहीं भी पता न चला उनका।

अचला एकदम व्यग्र हो पूछने लगी—'कहाँ गये? किस रास्ते से चले गये? क्या अपना सब कुछ देकर भी उसको एक डोली नहीं मिल सकती?'

रघुवीर अपनी भरसक कोशिश करने के बाद ही लौटा था। खड़ा-खड़ा उस अनर्थ को सुनता रहा।

मगर सुरेश उस सूचना से तनिक भी व्यग्र न हुआ, जब रघुवीर बाहर चला गया तब धीरे से बोला—'अचला, अब इतनी व्यग्र क्यों होती हो, उससे कोई लाभ नहीं।'

अचला से कुछ भी कहते नहीं बना, केवल अपने उस अन्तिम, हर तरह से अन्तिम मेहमान के माथे पर हाथ रक्खे बैठी रही।

चारो तरफ मौन का साम्राज्य था, घोर सन्नाटा व्यापा था। रात और

भी भयानक होती जा रही थी जिसे देख-देख उसका मन और भी भयाकुल होने लगा। वह व्यग्र हो सोचने लगी क्या सुरेश का सारा जीवन, उसकी सारी व्यथा, ज्वाला इस रात की तरह ही इसके साथ ही खतम हो जायगी? पर क्या यह भी सृष्टि की एक जरूरत है कि जीवन स्पन्दन समाप्त हो उसका जीवन स्वयं एक श्मशान बन जाय?

यह सब हुआ क्यों? कौन है इसका कारण? क्या यही अन्तिम पथ का राही एक मात्र कारण है अपने सगे सम्बन्धी सम्पूर्ण वैभव को लात मार कर? इसके अलावा क्या और कोई दोषी नहीं है इसका?

परन्तु सहसा वह संयत होकर बैठ गई किसी अव्यक्त शक्ति के आदेश से और तभी सुरेश ने पानी माँगा। अचला ने उसके मुँह में पानी डाला, पानी डाल कर फिर सीधी बैठ गई। थकान के निशान तक न थे उसके चेहरे पर और न आँखों में नींद ही थी। एकटक सूर्य की तरफ देखती रही। काफी दिन पहले जिस महाकाण्ड को उसने सयत्न रोका था आज उसी की अन्तिम परिणति उसके सामने स्वयं अन्त के रूप में विद्यमान थी। उसे सारा श्मशानवत् नजर आने लगा। चारो तरफ खून ही खून जाने-अनजाने अनेकों मरे-कटे पड़े हैं, उनके शव धू-धू कर जल रहे हैं।

इसी बीच में सम्भवतः सुरेश की आँख लग गई थी पर अचला ने यह भी न जाना कि कैसे रात ढली और प्रभात पास आने लगा। वह तो अपने विचारों में मस्त अपलक शून्य की तरफ देखती बैठी रही। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह रही थी, जो सुरेश के तकिये को भिगो रही थी। मन में वह मना रही थी—ईश्वर तू इन्हें जीवन प्रदान कर मुझे इस दुखमय जीवन से मुक्त कर दे। अब तो तिल बराबर जगह नहीं है जहाँ पैर टिका सकूँ, अब तो बस मुझे मौत दे दे।

तभी सवेरे रघुवीर ने पुकारा—'बहू जी!'

अचला ने सजग होकर देखा सवेरा हो चुका है और रघुवीर दरवाजा खोलकर किसी के आने की सूचना देने आया है। उसने पूछा—'क्या है रघुवीर?' तभी उसकी आँख महिम पर पड़ी और वह सिहर उठी एक

बार। महिम जहाँ का तहाँ ठिठक गया। उसे यह खयाल भी नहीं था कि यहाँ भी इस तरह अचला से भेंट हो जायगी। अपने को संयत कर धीरे-धीरे उसके पास आकर खड़ा होकर बोला—'कैसा है अब सुरेश?'

अचला मुँह न उठा सकी, सिर के संकेत से प्रकट किया कि वह भी कुछ नहीं जानती। थोड़ी देर के बाद महिम ने सुरेश के माथे पर हाथ रक्खा तो सुरेश ने आँखें खोल दीं। उन लाल सुर्ख मुर्झाई आँखों को देख महिम की जुबान जकड़ गई। थोड़ी देर स्तब्ध रहकर बोला—'कैसे हो सुरेश?'

सुरेश—'तुम आओगे, यही मुझे आशा थी। आओ, पास बैठ जाओ मेरे। अब मेरा अन्त आ गया महिम।'

महिम सुरेश के पास बैठते हुए बोला—'मेरे इक्के में किसी तरह चल सको तो डेहरी में···।'

सुरेश—'महिम, सब बेकार है। सारी मेहनत भी बेकार हो जायगी। अब तो मुझे शान्ति से इस संसार को छोड़कर जाने दो।'

महिम—'पर अभी तो तुम···।'

सुरेश—'होश में हूँ। हाँ, हूँ। पर बेहोशी आ जाती है बीच-बीच में। मरते समय क्षमा माँगने का ड्रामा करने की मुझे इच्छा नहीं महिम! तुमको बुलाया है कि जीवन रहते तो गरीबों की सेवा न कर सका, समय आने पर मेरा धन उन्हीं के काम में आये इसीलिए।'

महिम मौन रहा, सुरेश ने ही आगे कहा—एक दिन की क्षमा माँगने से न कुछ होता ही है और न उस पर मेरा लोभ ही है और न विश्वास ही, मैंने अपनी सम्पत्ति का वसीयतनामा कर दिया है। अचला को उसमें मैंने कुछ भी नहीं दिया है, साहस नहीं हुआ उसको और अधिक अपमानित करने का; तुम जरूरत समझो तो दे सकते हो।'

महिम व्यग्र हो बोला—'अब मुझे क्यों लपेट रहे हो इसमें?'

सुरेश—'तुम्हें लपेट ही रहा हूँ, ठीक ऐसी ही बात नहीं है।' अचला की तरफ उन्मुख होकर बोला—'अचला, रात भर से सोई

नहीं तुम, जाकर हाथ-मुँह धो डालो। मुनिया की माँ सब कुछ बता देगी।'

अचला के चले जाने पर सुरेश ने फिर कहना शुरू किया—'महिम, मुझे एक बात का दुख सबसे अधिक है कि मैं, तुम और वह खुद भी न समझ सके कि वह तुम्हें कितना अधिक प्यार करती है। तुम्हारा गरीबी का साथ उसका प्रेम—छोड़ें भी इन बातों को। मैंने मिट्टी में मिला दिया उस फूल को, न तुम्हें ही पाने दिया और न खुद ही पा सका। जरा बुआ जी का खयाल रखना।'

तभी मुनिया की माँ दवा लेकर आई तो उसने कहा—'अब नहीं चाहिए मुझे दवा-दारू। हाँ पानी दो जरा। महिम, मैंने एक नाटक लिखना शुरू किया था, मेरी मेज़ की दराज में है। निकाल कर पढ़ना पढ़ सको तो···।'

महिम से नहीं देखा जा रहा था सुरेश के चेहरे की तरफ, तभी उसकी सारी बातें आँखें नीची कर सुन रहा था। अब उसने कुछ कहना चाहा था तो सुरेश ने ताड़ कर उसे रोक कर कहा—'नहीं महिम, अब कुछ नहीं। मुझे नींद लगी है जरा शान्ति से सो जाने दो। खाना तो तुम लोगों का यहाँ आयेगा नहीं, वैसे सब प्रबन्ध मौजूद है।' और उसने आँखें मींच लीं।

महिम मौन रहा। क्षण भर बाद सानुरोध स्वर में बोला—'सुरेश, अन्त समय में मेरी एक बात मानोगे ?'

सुरेश—'क्या ?'

महिम—'भगवान के विषय में तुमने कभी कुछ नहीं सोचा। अब क्या···?'

सुरेश—'उसकी मुझे इच्छा नहीं होती।' कह कर उसने करवट बदल ली और सो गया। महिम अपनी आह को अपने हृदय में ही दबाकर चुप हो गया।

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

रामचरण बाबू बक्सर गये थे। लौट कर आने पर महिम का पत्र पाकर ही मझौली चल पड़े। रास्ते भर घोड़े को मार-मार कर भगाते हुए अधमरा कर दिया, तब तक कहीं शाम होते-होते मझौली पहुँच सके। दूकानदार ने उन्हें पुलिस का थानेदार समझा और स्वयं ही साथ जाकर नन्दू पाँड़े के मकान तक पहुँचा गया। इसी से उन्हें यह भी पता चल गया था कि अचला भी आ गई है। जब घर के भीतर पहुँचे तब दो घण्टे पहले ही सारा मामला खत्म हो चुका था और सुरेश का शव चारपाई पर ढँका पड़ा था, पास में अचला चुपचाप बैठी थी।

रामचरण बाबू से भी देखा न गया और वे भी रो पड़े।

महिम उस समय घर के भीतर लकड़ियाँ ढूँढ़ रहा था। रोना सुन कर बाहर आ गया, बोला—'रामचरण बाबू, अभी कुछ देर हुए सुरेश इस संसार से चला गया। आप न आते तो यहाँ बड़ी मुश्किल होती।' रामचरण बाबू ने आँखें पोंछ लीं। पर कुछ भी समझ न पा रहे थे कि क्या करें? कैसे अचला को सान्त्वना दें।

महिम—'रघुवीर के हाथ कुछ लकड़ी तो घाट पर भेज चुका हूँ। कुछ और मिल गई हैं उन्हें भी भेजता हूँ। नदी दूर नहीं है, तीनों मिलकर शव को वहाँ तक ले चल सकेंगे। गाँव में तो और कोई है भी नहीं, होता भी तो बङ्गाली के शव को छूता भी नहीं।'

अचला न सुन ले इसलिए काफी धीरे से रामचरण बाबू ने पूछा—'तीसरा कौन?'

महिम—'रघुवीर! वह मदद कर सकता है।'

रामचरण बाबू—'नहीं-नहीं! यह नहीं हो सकता। ब्राह्मण के शव को कोई दूसरा हाथ नहीं लगा सकता। जैसे होगा हमीं ले चलेंगे।'

महिम—'अच्छी बात है।' कह कर महिम फिर अन्दर जा कर लकड़ी तलाश करने में लग गया और रामचरण बाबू वहीं एक तरफ बैठ गये।

रामचरण बाबू ने काफी जमाना देखा था, अनेक मौतें भी देखी थीं, दुख भी देखे थे। उम्र भी उनकी काफी थी पर इस शोक-दृश्य ने उनको बुरी तरह झकझोर डाला। वह दृश्य उन्हें याद था जब एक दिन यही सुरमा उनकी छाती से बिलख कर चिपट गई थी। उनका निर्मल पितृ-स्नेह अन्दर ही अन्दर उनको विदीर्ण किये दे रहा था। उनके पास इस समय उसके लिए सान्त्वना देने योग्य कोई शब्द भी न थे। बार-बार ही दिल में उनके हूक उठती कि उसको छाती से लगा कर कहें कि मैं जिन्दा हूँ, चिन्ता की जरूरत नहीं।

पर दोनों ही शान्त नीरव बैठे रहे।

उन्होंने इन लोगों के घोर वेदना के दिन देखे थे, उनका रहस्य कभी-कभी रामचरण बाबू को भी दुख पहुँचाता था पर उससे उनकी सहानुभूति में, स्नेह में किसी तरह का भी अन्तर न आया था। पर आज अचला का निष्ठुर धैर्य उन्हें किसी रहस्य की सूचना देकर उनके समस्त निर्मल स्नेह को विस्मय कर रहा था।

शाम को सब कामों से निश्चिन्त होकर महिम ने उनके पास आ कर कहा—'अब सब ठीक हो गया है, शाम भी हो गई। ले चलो शव को।' फिर अचला से कहा—'तब तक तुम मुनिया की माँ के पास जाकर बैठो। हम लोग ज़ल्दी ही लौटेंगे।'

अचला चुप रही। रामचरण बाबू ने खड़े होकर अपने को संयत कर गले को साफ कर कहा—'बेटी, कैसे कहूँ। कहते-कहते छाती फटती है। पर कहना ही होगा कि स्त्री के नाते सुरेश की अन्तिम क्रिया तो तुम्हीं को सम्पन्न · · ·।' कहते-कहते फूट कर रोने लगे।

अचला ने अपनी मुर्झाई आँखों से उनकी तरफ देखा और कहा—'इसका हिन्दू धर्म में कोई विशेष फल हो और जरूरत ही हो तो संस्कार मैं सम्पन्न कर सकती हूँ, नहीं तो बेकार मैं नहीं करना चाहती। मैं इनकी पत्नी नहीं हूँ!'

रामचरण बाबू पर सहसा पहाड़ टूट पड़ा। उनकी आँखें फटी की

फटी रह गईं, उन्होंने पूछा—'तुम पत्नी नहीं हो सुरेश की?'

अचला—'नहीं!'

क्षण भर में ही सारी घटनाएँ रामचरण बाबू की आँखों के सामने नाच उठीं—उनके घर उन दोनों के आने से लेकर उस दिन बेहोश होने तक की। तरह-तरह के विचार उठने लगे उनके मन में—वेश्या हो सकती है। उन्होंने उसे बिटिया कहा है, उसके हाथ का छुआ खाया है, बेटी तक कहा है उसको, सोच-सोच कर सारा शरीर मारे घृणा के जल उठा।

महिम भी स्तब्ध की सी दशा में खड़ा था। थोड़ी देर मौन रहकर बोला—'जब वे नहीं चलतीं तो फिर हमीं चलकर सब कुछ कर डालेंगे, करना तो है ही, फिर देर क्यों की जाय?'

रामचरण बाबू 'चलिए' कहकर साथ चल दिये। सारी चिन्ताओं से अधिक इस समय उनको सबसे अधिक जो चिन्ता व्यथित कर रही थी वह थी कि उसके कारण उनकी जाति गई, धर्म भ्रष्ट हुआ और सारा जीवन का जप-तप, नियम धर्म बेकार हो गया।

सुरेश के शव का दाह-संस्कार करने में अधिक समय न लगा। रामचरण बाबू आरम्भ से अन्त तक चुप रहे। घाट से आते ही उन्होंने हुक्का तैयार करने को कहा।

महिम—'तो क्या आप अभी ही चले जा रहे हैं?'

रामचरण बाबू—'मुझे तो अब सवेरे ही काशी जाना होगा।'

महिम समझ गया कि प्रायश्चित्त के लिए ही काशी जा रहे हैं। सकुचाते हुए बोला—'मेरा तो यह परदेश ही है। अगर आप कृपा कर इनके जाने का···।'

बीच में ही बात काटकर रामचरण बाबू मारे घृणा के तपाक से बोले—'आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया महिम बाबू?'

महिम ने उनकी बात काटी नहीं और भी नम्र निवेदन कर बोला—'इस निर्जन श्मशानवत् स्थान पर छोड़कर जाना और फिर उन्होंने दो-तीन दिन से खाया भी नहीं होगा···।'

इस बार भी बीच में ही बात काटकर उसी घृणा के वेग से रामचरण बाबू ने कहा—'मैं यह तो भूल ही गया था कि आप भी तो ब्रह्मसमाजी हैं? तभी! आपको कितना भी ज्ञान क्यों न हो, पर आप नहीं समझ सकते कि इस कलमुहीं के कारण मेरा जीवन मिट्टी में मिल गया। समझते तो दया माया की बात न करते।' कहकर अपने इक्के पर जा बैठे और चलते समय बोले—'आप चलना चाहें तो चलें।'

महिम ने न तो रामचरण बाबू का जीवन मिट्टी में मिल जाने पर ही कुछ कहा और न अपने चलने के निमन्त्रण को ही स्वीकार किया। मौन रहते हुए ही हाथ जोड़कर नमस्कार कर लिया।

अचला भीतर थी। इक्का जाने के शब्द से ही उसने समझ लिया वे चले गये और मिले भी नहीं, इसका कारण भी उससे छिपा न रहा। सुरेश भी अब नहीं रहा। वह है और महिम, पर कैसे मुँह खोलेगी वह। पास आकर खड़ा हो गया तब कैसे पास बनी रह सकेगी। यह लज्जा अनुभव करने में भी अपने विषय में सोचने में भी उसे घृणा होने लगी।

महिम अन्दर आया तब अचला ढिबरी के सामने मौन मूर्तिवत् अपने ही विचारों से अपनी ही करनी से आहत बैठी थी। महिम ने आकर कहा—'अब क्या करोगी तुम अचला?'

अचला ने—'मैं!' कहकर उनकी तरफ नजर उठाई और नजर उठाने के साथ ही न जाने क्या-क्या उथल-पुथल मचने लगी उसके दिल और दिमाग में। बोली—'मैं तो अपने लिए कुछ भी सोच नहीं पा रही हूँ। तुम जो भी करने को कहोगे करूँगी।'

महिम को आशा न थी यह वाक्य सुनने की। तभी सुनकर दङ्ग रह गया। आज की-सी उसकी निर्मल और स्वच्छ चितवन महिम ने पहले कभी नहीं देखी थी। उसकी चितवन ने उसका अन्तर महिम के सामने काफी हद तक स्पष्ट कर दिया। महिम ने साफ देखा, समझा उसके सामने निविड़ अन्धकार है जिसमें न तो सोचने की गुञ्जाइश है न चिन्ता की ही। सर्वत्र अमूर्त शून्य ही उसे अचला के भविष्य में नजर आ रहा था।

महिम का मन भारी हो उठा, सारा अन्तर व्यथा से विदीर्ण पर उसका तो स्वभाव रहा है अपनी व्यथा से आप ही जलना, दूसरे को उसका आभास तक न होने देना। तभी उसने अपने आवेश को बरबस रोक रखा कि कहीं अचला तक भी उसकी गन्ध न पहुँच जाय और दूसरी ओर मुँह करके उसने सहज सरल स्वर में कहा—'तू मेरा क्यों कहना मानेगी और फिर मुझे भी क्या अधिकार है तुम पर ?'

अचला ने महिम की तरफ आहत दृष्टि से अपलक देखते हुए कहा—'और है भी कौन अब तुम्हारे सिवा मेरा ?'

महिम—'क्या तुम्हें मुझसे यही आशा है ?'

अचला अपनी बात के सिलसिले में ही आगे बोली—महिम की बात शायद उसके कानों तक पहुँची ही नहीं—'मैं क्या करूँ समझ में नहीं आता। तुम्हारा साथ छूट जाने के बाद से भगवान् से भी अनेकों बार कहा—मुझे अपने पास बुला लें, उसने भी नहीं सुना और अब तुम भी नहीं सुनना चाहते।'

महिम असमञ्जस में पड़ गया। बिना कुछ उत्तर दिये बाहर चला गया और उसी पर सोचता रहा। उसे अपना बोझ ही भारी हो रहा था, चलते-चलते सुरेश और अपनी साध पूरी करने का बोझ डाल गया। क्या करे कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

रघुवीर ने आकर सूचना दी कि काफी दौड़-धूप से पता चला है कि टेहरी के रास्ते में तीन कोस चलकर एक गाँव में कल बाजार लगेगा। हो सकता है बाजार में कोई बैलगाड़ी वगैरह मिल जाय।

महिम चिन्तित हो उठा। रघुवीर ने उसे चिन्तित होते देख कहा—'वहाँ तक जाने को तो मैं अभी जा सकता हूँ, लेकिन डर के मारे वहाँ से कोई भी आदमी यहाँ आने को तैयार न होगा। अगर बहूजी वहाँ तक···।'

अचला ने उसकी बात बीच में ही पकड़कर पूरी की—'हाँ, मैं चल

सकती हूँ, और तुरन्त उठकर खड़ी हो गई, पर कमज़ोरी के मारे पैर डगमगाने लगे तो महिम ने तुरन्त अपना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया जिसको मज़बूती से पकड़ कर सँभल गई, पर उसके हाथ पकड़ते ही महिम का सारा बदन मारे शर्म के सकुचा उठा और अपना हाथ उसके हाथ से छुड़ाने का प्रयास करते हुए बोला—'न हो तो कल ही चलना।'

अचला—'अभी क्यों नहीं? अभी तो तुम्हीं कह रहे थे कि यहाँ अब और टिकना ठीक नहीं और अगर डेहरी से गाड़ी मँगवाई गई तो फिर कल भी यहीं बिताना होगा।'

महिम—'पर तुम कमज़ोर हो रही हो।'

महिम का हाथ अब भी अचला के ही हाथ में था, बोली—'तुम्हारा हाथ पकड़कर जहाँ तक कहो चल सकती हूँ। तुम्हारे सहारे मैं बिलकुल कमजोर नहीं।'

महिम ने फिर अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की, कहा—'चलो।' और रघुबीर आगे-आगे और उसके पीछे अचला महिम के हाथ पकड़े अगल-बगल में चल पड़ी। बार-बार महिम अपने मन से प्रश्न करता रहा—कहाँ है सीमा इस यात्री की?

चवालीसवाँ परिच्छेद

जब महिम और अचला डेहरी पहुँच गये तो अचला ने पहुँचते ही सुरेश का वसीयतनामा वाला लिफाफा महिम को सौंप दिया।

महिम को वसीयतनामा लेते ही याद आया कि उसके नाम सुरेश का एक पत्र भी है। उसकी उत्कण्ठा प्रबल हो उठी पर ऊपरी भाव से कोई उत्कण्ठा प्रकट न कर लिफाफा जेब में रख लिया।

अचला—'क्या आज ही डेहरी से तुम्हारा चला जाना तय है?'

महिम—'अब मैं रह नहीं सकता, इसलिए आज ही चला जाऊँगा।'

अचला—'क्या मुझे जीवन भर यहीं पड़ा रहना होगा?'

महिम ने कहा—'क्या कहीं और जाना चाहती हो?'

अचला—'इसी सोच में मैं भी हूँ कल से। कहीं विलायत की तरफ मुझ जैसी ही अभागिनों के लिए आश्रम वगैरह हैं सुना ही सुना है वहाँ होता क्या है सो तो मैं जानती नहीं पर क्या अपने देश में कहीं ऐसा···।' आँसुओं की धार ने बीच में ही उसका गला अवरुद्ध कर दिया।

महिम का हृदय भी करुणा से भर उठा। उसने कहा—'मालूम तो मुझे भी नहीं, पर पता लगा सकता हूँ।'

अचला—'मेरे पत्रों का उत्तर दोगे यदि कभी-कभी लिखूँ तो?'

महिम—'हाँ, अगर जरूरी हुआ तो। अब मैं चला। चलकर जल्दी सामान ठीक कर स्टेशन जाना है।'

आज इतने दिन बाद अचला को महिम के चरणरज लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उसने उसके चरणों पर अपना माथा टेक दिया और जब वह चला गया तो चौखट पर खड़ी राह की तरफ एकटक देखती रही।

रास्ते में महिम सोच रहा था—रामचरण बाबू के घर अब तो जरा देर भी ठहरा जा नहीं सकता और दूसरी जगह भी कहीं दो एक दिन ठहरना नहीं हो सकता, तो फिर आज ही यहाँ से चल देना होगा और फिर उसका मन किसी एकान्त स्थान के लिए छटपटाने लगा, जहाँ क्षण भर स्थिर हो बैठकर अपने को समझ सके, अपनी स्थिति निश्चित कर सके और पढ़ सके कि लिफाफे में क्या है।

उसने अपने मस्तिष्क में अचला को प्यार करने के पूर्व का इतिहास बरबस धुँधला कर दिया था। अचला उसके जीवन की अनेक मुख्यतम घटनाओं बल्कि जब से वह मिला है तब से तो समस्त जीवन के क्रम की धुरी ही बनी रही है। पर परमात्मा ने उसमें सहिष्णुता की शक्ति इतनी अधिक प्रदान की है कि अपना घर, जीवन, भीतर-बाहर सर्वत्र जल जाने पर भी उसने किसी से शिकवा न किया, उसकी अग्नि से स्वयं ही भस्मीभूत हो गया, जिसकी किसी को कानों-कान खबर भी न मिली। पर अब तक जीवन के एक ही पहलू की क्षति हो गई है और इतनी क्षति को आज उसे जरूरत महसूस हो रही है अपनी जिन्दगी का लेखा-जोखा मिलाने की, और जीवन में सामञ्जस्य स्थापित कर उसे नये सिरे से

चलाने की। तभी वह कहीं एकान्त में जाकर बैठना चाहता है।

घर पहुँच कर उसने अपना सारा सामान झटपट ठीक कर डाला और शाम को पाँच बजे की गाड़ी से जाने का निश्चय कर लिया। रामचरण बाबू वास्तव में काशी प्रायश्चित्त के ही लिए गये हैं, जब तक प्रायश्चित्त पूरा न होगा खाना-पीना नहीं हो सकता उनका इसलिए उनसे भेंट होना भी सम्भव नहीं था। उनके नाम पत्र लिखने को सोच कर लिखने बैठा भी, पर दो चार पंक्तियाँ ही लिख पाया होगा कि उसे उनके अन्तिम क्रुद्ध वाक्य याद हो आये और साथ ही अचला का प्रलाप भी। अब तक उसकी अवस्था अर्धचेतना की थी पर रामचरण बाबू के अन्तिम वाक्यों की याद ने उसे चैतन्य कर दिया।

रामचरण बाबू से महिम का परिचय अभी थोड़े ही दिन का था, परन्तु इतने दिनों मे ही उसने उनकी दया, धर्मपरायणता और अचला से उनकी बेटी के सम्बन्ध में अनेक बातें सुन ली थीं। उसने यह भी उन्हीं के मुँह से सुना था कि उन्होंने केवल अचला के ही पर-गोत्रीय के हाथ का भोजन किया है। उसको वे बेटी की तरह प्यार करते हैं, माँ की तरह उसकी श्रद्धा। ये बातें स्वयं ही उन्होंने महिम से बड़े स्नेह के साथ कही थीं पर आज जब उनको रहस्य का पता चला तो पता चलते ही उनका सारा धर्म नष्ट हो गया, जीवन मिट्टी में मिल गया।

यह सोचकर कि कैसा है उनका धर्म जो एक लड़की के कारण छुई-मुई की तरह खतम हो गया? जो अपने मानने वाले को क्या, अपनी रक्षा नहीं कर सकता, बात-बात में किसी छू देने मात्र से ही, परछाईं मात्र से ही किसी का खा लेने भर से ही आदि मामूली-मामूली बातों में भी नष्ट हो जाया करता है वह क्या है? क्या शक्ति है उसमें किसी को ऊँचा उठाने की? मनुष्य को सदैव अपने धर्म की रक्षा करने के लिए उलटे अपनी समस्त इन्द्रियों को पहरे पर चौकस रखना पड़ता है! ऐसे धर्म की क्या आवश्यकता मानव-जीवन में, जो स्वयं मानव के लिए एक बोझ बन जाता है।'

और यह धर्म कितना निष्ठुर है कि इतने स्नेह के बन्धन पलक मारते

तोड़ डाले, निर्लज्ज निःसहाय नारी को मौत के मुँह में अकेला छोड़ने में भी हिचक न की और जो अपने मानव रूप में इतना स्नेह है उसके निर्मल स्नेह को भी धर्म की कसौटी ने प्रतिहिंसा के भाव से कलुषित कर अत्यन्त निष्ठुर बना दिया। कैसी विडम्बना है धर्म की !

सहसा उसे खयाल आया कि रामचरण बाबू के पीछे इस तरह जाना तो भागकर जाना होगा पर दूसरे ही क्षण उसने इस भावना को बरबर दबा दिया और जबरदस्ती हाथों को चला कर पूरा करने लगा। और सब सामान ले स्टेशन चल दिया।

स्टेशन पर गाड़ी के जिस डिब्बे में दरवाजा खोल कर वह चढ़ने को उद्यत खड़ा था उसी में से केदार बाबू मृणाल का हाथ पकड़ उतर पड़े।

केदार बाबू की नजर महिम पर पड़ी चौंककर बोले—'महिम तुम यहाँ ?'

मृणाल ने तभी महिम के पैरों पर सिर रखकर चरण-रज माथे से लगा कर कहा—'कहाँ जा रहे हो दादा ?'

महिम—'कलकत्ते। किसी इक्के वाले से कहिएगा वहीं सुरेश बाबू के मकान पर पहुँचा दो, कहने भर से ठीक जगह पहुँचा देगा। अचला वहीं है।'

केदार बाबू स्तम्भित विस्फारित नेत्रों से उसकी तरफ देखते रहे।

महिम—'सुरेश की मृत्यु हो गई। मृणाल, अचला ने मुझसे किसी आश्रम के सम्बन्ध में पूछा था, मैं तो उसे कोई सन्तोषजनक उत्तर दे न सका। हो सकता है तुम कुछ बता सको उसके लिए।'

मृणाल ने सुन कर सहज स्वाभाविक स्वर में कहा—'बता क्यों नहीं सकती। मैंने सब कुछ तुम्हीं से सीखा पढ़ा है दादा। मैं उसे अच्छी तरह बता सकती हूँ कि वह कहाँ पर है। फिर उसे तुम आश्रम कहना चाहे आश्रय, तुम्हारी मर्जी। लेकिन वह भी तुम्हारा ही होगा दादा।'

महिम ने मृणाल की तीव्र आँखों से बचने के लिए अपना मुँह फेर लिया। मृणाल की बात का उसने कुछ जवाब न दिया।

गाड़ी सीटी देकर चल दी तथा मृणाल ने स्तब्ध खड़े केदार बाबू का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—'बाबूजी चलिए। हम लोग भी चलें।'

❀ समाप्त ❀